श्रमण भगवान महावीर का जन्मस्थान

क्षत्रियकुंड (मगधजनपद)
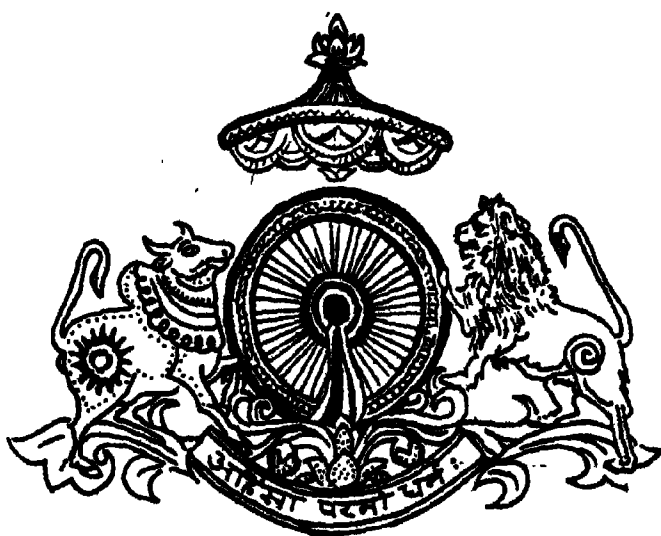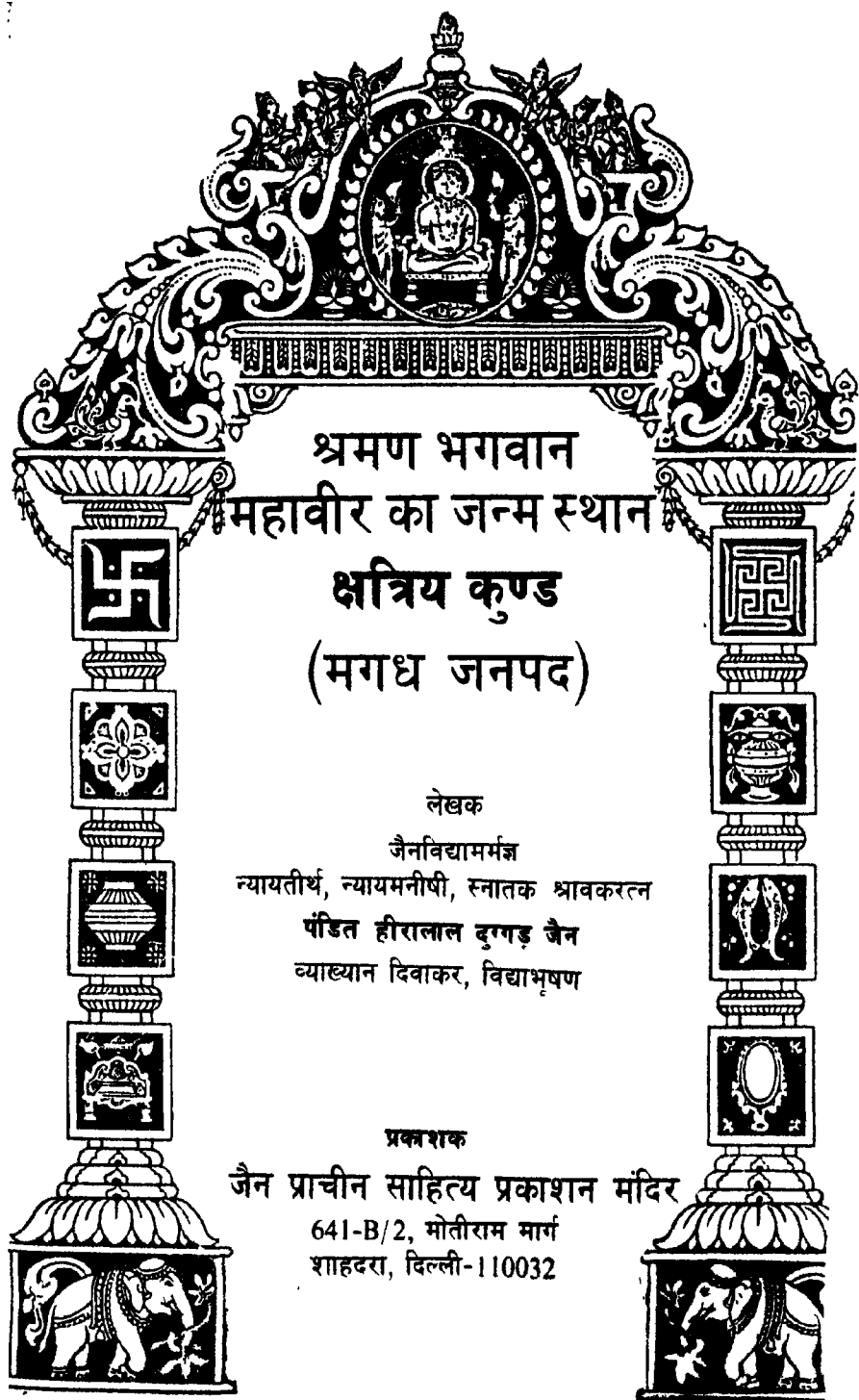
श्रमण भगवान महावीर का जन्म स्थान क्षत्रिय कुण्ड (मगध जनपद)

लेखक

जैनविद्यामर्मज्ञ

न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक श्रावकरत्न

पंडित हीरालाल दुग्गड़ जैन

व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण

प्रकाशक

जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मंदिर

641-B/2, मोतीराम मार्ग

शाहदरा, दिल्ली-110032

भगवान महावीरकी जन्मभूमि
क्षत्रियकुंड (मगध जनपद)

प्रथम प्रकाशन
ईस्वीसन-1989

पत्र व्यवहार तथा
मनिआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्ट भेजने का पता
Hirlal Duggar
६४१/B/२ मोतीराम मार्ग
शाहदरा—दिल्ली ११००३२

मूल्य = 35 - रुपये

मुद्रक—
Phototypesetting by:—
Chitragupta Printing Press
539, Kucha Pati Ram, Delhi-110006 Ph. 731555

प्रस्तावना

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने जैनधर्म के चतुर्विध संघ को व्यवस्थित कर विश्वधर्मों में उसे गौरवान्वित किया है। उन्होंने अर्धमागधी (तत्कालीन लोक भाषा) के माध्यम से जैनागमों पर प्रवचन दिया। उनकी देशना इतनी व्यापक थी कि जैनसमाज के बाहर भी उनकी कीर्ति कौमुदी से सारे संसार ने शीतल प्रकाश प्राप्त किया। उनके महत्कार्यों और व्यापक प्रवचनों से एक भ्रांति भी फैली कि जैन धर्म के प्रवर्तक श्री महावीर स्वामी हैं। बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध महावीर स्वामी के समकालीन थे, इसलिए भी उन्हें जैन धर्म का प्रवर्त्तक माना गया। साधारण जनता ही इस भ्रम से भ्रमित नहीं हुई इतिहास कारों को भी तथ्य का पता न होने से इस भ्रम का समर्थन करना पड़ा है। इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में भी यह भ्रम दुहराया जाता है कि महावीर स्वामी जैनधर्म के प्रवर्त्तक थे, जब कि तथ्य यह है कि भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ तक उनके पूर्ववर्ती तेईस तीर्थंकर हो चुके हैं। भगवान् ऋषभ देव से पूर्व भी जैन धर्म अस्तित्व में था, इसका प्रमाण ऋग्वेदादिक प्राचीनतम वैदिक ग्रंथों से लेकर परवर्ती वैदिक पुराणों में भी पाया जाता है। वैदिक ग्रंथों की यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि हिरण्यक गर्भ ब्रह्मा ने अपने सनक, सनन्दनादि मानस पुत्रों से प्रजा धर्म चलाने का आदेश दिया किन्तु उन्होंने इसे पशु कर्म कह कर त्याज्य माना और वनवासी बनकर श्रमण धर्म अपनाया। सनकादि बड़े ज्ञानी पुरुष थे। एक बार तो जब उनकी शंकाओं का समाधान उनके पिता ब्रह्मा जी नहीं कर सके तो परमात्मा ने हंसावतार लेकर उनका समाधान किया। वैष्णवों का निम्बार्क संप्रदाय हंसावतार को ही अपना आदि पुरुष मानता है।

अतः वैदिक ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो भी यह आसानी से सिद्ध होता है कि वैदिक और श्रमण दोनों संस्कृतियां एक साथ उत्पन्न हो कर विकसित हुई और आज तक समानान्तर चली आ रही हैं। अतः यह भी कहना आधारहीन है कि वैदिकों के हिंसात्मक यज्ञों की प्रतिक्रिया के रूप में श्रमणधर्म अर्थात् जैन धर्म की उत्पत्ति हुई है।

जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आगम में कल्पसूत्र का बड़ा महत्व है। इसमें कुछ अन्य तीर्थंकरों के संक्षिप्त जीवन चरित्र तो हैं ही भगवान् महावीर स्वामी का जीवन अपेक्षाकृत विस्तार से दिया गया है। कुंडग्राम के दो भाग थे, ब्राह्मणकुंड और क्षत्रियकुंड भगवान् महावीर स्वामी का च्यवन ब्राह्मण कुंड में रहने वाली ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में हुआ था, बाद में शिशु महावीर को क्षत्रिय कुंड में रहने वाले राजा सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशलादेवी के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। इस दृष्टि से भगवान् महावीर स्वामी की जन्मस्थली ब्राह्मण कुंड और क्षत्रियकुंड दोनों हैं। परन्तु वे त्रिशला के गर्भ से प्रसूत होकर क्षत्रियकुंड में अवतरित हुए इसलिए उनकी जन्मभूमि क्षत्रियकुंड ही मानी जाती है।

हम विदेशी विद्वानो के इस बात के लिए कृतज्ञ हैं कि उन्होंने भारतीय विद्वानों को आधुनिक शोध की दृष्टि से भारतीय विषयों का अनुसंधान किया। अनुसंधान के फलस्वरूप उन्होंने अपनी मान्यताएं विद्वत् समाज के सम्मुख प्रस्तुत की हैं। यह बात दूसरी है कि उनकी अधिकांश स्थापनाएं भ्रम की भीत पर स्थिर हैं। फिर भी हम उनके परिश्रम की सराहना तो करते ही हैं। प्रारंभ में अंग्रेजी भरमार के चकाचौंध के कारण भारतीय अनुसंधित्सुओं के अनुसंधान का आधार विदेशी स्थापनाएं हुआ करती थीं, इसीलिए उनके द्वारा भी कुछ भ्रम अस्तित्व में आ जाया करते थे।

भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कल्पसूत्र में निश्चित होने के बावजूद देशी-विदेशी विद्वानों ने वैशालिक नाम के आधार पर क्षत्रियकुंड जन्मभूमि मानने से इन्कार कर दिया और अनुमान तर्क आदि के आधार पर क्लिष्ट कल्पना कर वैशाली को जन्मभूमि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। फलतः इस प्रश्न को जानबूझकर विवाद का विषय बना दिया।

हर्ष की बात है कि पंडित हीरालाल शास्त्री दुग्गड़ ने महावीर स्वामी की जन्मभूमि संबंधी सभी मतों का विस्तार से खंडन कर 'कल्पसूत्र के पक्ष की अर्थात् महावीर स्वामी की जन्मभूमि क्षत्रियकुंड प्रस्तुत पुस्तक में सिद्ध कर दिया है। इस सम्बन्ध में आपने वैज्ञानिक दृष्टि तर्क युक्त पांडित्य और आगमों का सहारा लेकर सत्यता का जोरदार प्रतिपादन किया है। इस संबंध में शास्त्री जी ने अब किसी प्रकार की शंका के लिए गुंजाइश नहीं रखी है।

विदेशी विद्वानों ने विशेषकर जकोबी ने जन्मभूमि पर ही प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया था बल्कि कल्पसूत्र की अनेक मान्यताओं का भी खंडन किया है। वह सिद्धार्थ को राजा और त्रिशला को रानी नहीं मानता है। कुंडग्राम को वह वैशाली का एक मोहल्ला कहता है। भगवान् महावीर को वह वैशाली का निवासी सिद्ध करता है। इन सभी भ्रांतियों का श्री दुग्गड़ जी ने भली भाँति निराकरण किया है।

इस शोध ग्रंथ में विदेशी विद्वानों के मतों का ही खंडन नहीं है, बल्कि भारतीय विद्वानों की भ्रान्त धारणाओं का भी खंडन किया गया है। यही नहीं जिन जैन मुनियों ने पाश्चात्य धारणा के अनुसार या अन्य किन्हीं कारणों से वैशाली को महावीर स्वामी की जन्मस्थली माना है, उनका भी इस शोध ग्रंथ में निराकरण हुआ है।

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भगवान् महावीर स्वामी का जन्मस्थान 'क्षत्रियकुंड' सिद्ध करना है, तथापि इस निमित्त से भगवान् महावीर के जीवन संबंधी अनेक ज्ञातव्य विषयों, महावीर स्वामी के परिवार और नजदीकी रिश्तेदारों का भी परिचय दिया गया है।

भगवान् महावीर की जन्म कुंडली प्रस्तुत की गई है। ज्यौतिष शास्त्र के अनुसार कुंडली के सभी ग्रहों का फल देकर उनका मिलान भगवान् महावीर स्वामी के जीवन में घटने वाली घटनाओं से किया गया है और दोनों की समानता सिद्ध की गई है। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी बातें इस शोधग्रंथ में लिखी गई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व है। भारतीय इतिहास अधिकतर विदेशियों द्वारा लिखा गया है। भारतीय इतिहासकारों ने उसका अन्धानुसरण किया है। इस दिशा में पं० जयचन्द्र विद्यालंकार ने भारतीय दृष्टि से इतिहास लिखा है। पुरातत्व से भी इतिहास लेखन में अच्छी सहायता मिलती, पुरातत्व की खुदाई से कभी कभी प्रचलित इतिहास का रूप और उसकी मान्यताएं बदल जाती हैं। श्री दुग्गड़ जी ने प्रस्तुत पुस्तक में इस ओर भी संकेत किया है। इतिहास का महत्व समझने के लिए उनका उद्धृत निम्नलिखित श्लोक कितना महत्वपूर्ण है।

स्व जाति पूर्वज़ानां यो न जानाति संभवम्
स भवेत् पुंश्चलीपुत्र सदृशः पितृवेदकः

पुस्तक के परिशिष्ट रूप में शास्त्री जी ने जैन धर्मके संबंध में अच्छी जानकारी दी है। जिस प्रकार आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) ने अपने कथन के समर्थन में वेदार्य ग्रंथों का उद्धरण दिया है, वैसे ही शास्त्री जी ने अपने समर्थन में ऋग्वेद अथर्ववेद आदि वैदिक साहित्य से लेकर विभिन्न पुराणों के स्थान-स्थान पर उद्धरण दिए हैं।

इस प्रकार शोधग्रंथ के लिए जिन जिन श्रोतों का ज्ञान अपेक्षित है, उन सबका उपयोग प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है। इस पुस्तक को लिखकर पंडित हीरालाल शास्त्री दुग्गड़ ने जैन-जगत् पर महान उपकार किया है, जैनेतरों के लिए भी इतिहास और शोध की दृष्टि से यह ग्रंथ उपादेय है। किन्तु मुख्य रूप से जिस समाज के हित के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, वह व्यापारी समाज है, उस समाज में जो ज्ञान है वह आधुनिक है जिसे भारतीय दृष्टि से ज्ञान कहने में संकोच होता है।

फिर भी यदि उस समाज को इस ग्रंथ से प्रेरणा मिली, कोई शोधछात्र उत्पन्न हुआ, तो शास्त्री जी का श्रम सफल समझा जायेगा। निःसन्देह श्री दुग्गड जी यह ग्रंथ लिखकर अपने अर्द्धशतक ग्रंथों में एक और संख्या बढ़ाकर जिज्ञासुओं का महान् उपकार किया है।

२/८८ रूपनगर, दिल्ली
पौष पूर्णिमा सं० २०४५

विद्वज्जनकिंकर
अवधनारायणधर द्विवेदी

लेखक परिचय

कर्मयोगी शास्त्री हीरालाल जी दुग्गड़

मैं जिस व्यक्ति की चर्चा कर रहा हूं वे इस शोधग्रंथ के रचयिता परम आदरणीय शास्त्री जी स्वनामधन्य हीरालाल दुग्गड़ हैं। जन्मसे लेकर अबतक का आपका जीवन एक संघर्षमय जीवन की गाथा है। आपका जन्म पंजाब के गुजरांवाला नगर में जो अब पाकिस्तान में है ई. स. १९०४ में हुआ। आपके पिता चौधरी लाला दीनानाथ जी प्रख्यात समाजसेवक तथा ज्योतिष के अच्छे विद्वान थे। मातृस्नेह से आप सदैव वंचित रहे। जब आप केवल ९ दिन के थे तो आपकी माता सुश्री धनदेवी जी का देहांत हो गया। पश्चात् आपकी सगी मौसी सुश्री माइयांदेवी आपकी दूसरी माता हुई। परन्तु जब आप दसवर्ष के थे तब उनका भी देहांत हो गया। इनकी मृत्यु के बाद आप माता के प्यार से सदैव केलिये वंचित हो गए। ई. स. १९७५ में आपके पिता जी का तीसरा विवाह हुआ।

१६ वर्ष की आयु में मैट्रिक पास करके आप अपने पिताजी के साथ धातु के बरतनों का व्यवसाय करने लगे। परन्तु आपके मनपर आपके पितामह सर्वश्री मथुरादास जी के बड़े भाई शास्त्री कर्मचंद जी और अपने पिता श्री दीनानाथ जी के संस्कार थे। आपके मन में धर्म के प्रति जिज्ञासा थी। व्यवसाय में आपका मन न लगा। अत: आपने गुजरांवाला में आचार्य श्री मद्विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज द्वारा स्थापित श्री आत्मानन्द जैनगुरुकुल पंजाब के कालेज सेक्शन (साहित्यमंदिर) में प्रवेश लेलिया। पांचवर्षों में जैनन्याय, दर्शनशास्त्र, काव्य, साहित्य, व्याकरण, प्रकरण एवं आगम आदि एवं प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, बंगाली, गुंजराती, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अभ्यास कर गुरुकुल की स्नातक परीक्षा अच्छे अंकों में उत्तीर्ण की और "**विद्याभूषण**" की उपाधि से विभूषित हुए। उससमय जब कि मैट्रिक तक की शिक्षा ही पर्याप्त समझी जाती थी आपने उच्चशिक्षा प्राप्तकर समाज को एक नई दिशा दी। इसके एक वर्ष पश्चात् आपने संस्कृत एसोसिएशन कलकत्ता यूनिवर्सिटी रेकोगनाईज्ड की संस्कृत में जैनन्याय, तर्क-दर्शन-शास्त्र में "**न्यायतीर्थ**" परीक्षा उत्तीर्ण की। दूसरे वर्ष गायकवाड़ सरकार द्वारा स्थापित सैंट्रल लायब्रेरी बड़ौदा से "**लायब्रेरी केटेलागिंग तथा कार्ड एकार्डर**" की सनद प्राप्त की।

अगले ही वर्ष अजमेर में व्याख्यान प्रातियोगिता में बैठे। उसमें उत्तम प्रकार से सफलता प्राप्त करने पर भारतवर्ष विद्वद् परिषद अजमेर ने आपको "**व्याख्यान दिवाकर**" की उपाधि से अलंकृत किया। सन् १९३५ में आपने अजमेर-निवासी नरोतीलाल पल्लिवाल दिगम्बर जैनधर्मानुयायी द्वारा पूछे गये श्री श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैनधर्म के विरुद्ध ४० प्रश्नों का समाधान अजमेर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र "**जैन ध्वज**" में प्रकाशित करवाकर संचोट् युक्तिपुरस्सर ऐतिहासिक, तार्किक एवं भारतीय-वाङ्मय के आधार से किया। जो छ: मास में समाप्त हुआ। इससे आपकी विद्वता से प्रभावित होकर अयोध्या-संस्कृत कार्यालय के मनीषिमंडल ने जिसमें हिन्दू धर्मानुयायी जगद्गुरु आदि भी सम्मिलित थे आप श्री को "**न्यायमनीषी**" पदवी से सम्मानित किया।

लेखक

जैन विद्यासमंज श्रावकरत्न
पं० हीरालाल दुग्गड़ जैन

आप समाज के वयोवृद्ध कार्यकर्ता हैं। वयोवृद्ध होते हुए भी आपका उत्साह और पुरुषार्थ युवा जैसों को भी मात देता है। सच कहा जाय तो आप को बुढ़ापे ने नहीं जीता परन्तु आपने बुढ़ापे पर विजय प्राप्त की है। सादा जीवन, कर्मठ वृत्ति श्रमनिष्ठा के साक्षात् प्रतीक हैं। दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, धर्मश्रद्धालु, व जैनधर्म के प्रचारकों के प्रेरणास्रोत होने से जैनसमाज के सभी संप्रदायों के कई आचार्यों, मुनियों और प्रतिष्ठित श्रावक-श्राविकाओं से आपका अच्छा परिचय है।

आपकी शास्त्र प्रवचनपद्धति अत्यन्त रोचक और प्रभावोत्पादक है। शिक्षण देने की शैली अत्यन्त प्रशंसनीय है। वक्तृत्वकला आकर्षक है। शंका समाधान करने की कला आकर्षक चमत्कारी एवं अलौकिक है। १९७९ ई. में कांगड़ा में हुए श्री समुद्र सूरि जैन दर्शनशिविर में अपनी इस कला से विद्यार्थियों को मंत्रमुग्ध कर दिया था। जैनसंप्रदायों और जैनेतर वाङ्मयका गहन-गंभीर चिंतनशील-अभ्यास किया है। पर्युषण तथा दसलाक्षणी आदि पर्वों में आपके शास्त्रप्रवचनों से लाभान्वित होने केलिये श्वेतांबर और दिगम्बर जैनसंघ समानरूप से सदा निमंत्रण देते हैं। लेखनशैली में गंभीरता, प्रौढ़ता और सरलतारूप गंगा, जमुना, सरस्वती त्रिवेणी का संगम है। जैनदर्शन और इतिहास के प्रति आप की सच्ची-आस्था और अनुराग अत्यंत प्रशंसनीय है। जो कि आप के द्वारा लिखे हुए ग्रंथों से प्रत्यक्षरूप से दृष्टिगोचर होती है।

आपकी अपनी लेखनी द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनेक उत्तम पुस्तकों का सृजन तथा अन्य भाषाओं से भाषांतार भी प्रकाशित हुए हैं। लगभग ५० प्रकाशित एवं लगभग १० तैयार अप्रकशित पुस्तकों का यह लेखक अभिनन्दनीय है। कई पुस्तकों की दो-तीन-चार आवृत्तियां भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी अधिकांश पुस्तकें अभी अप्राप्य हैं। आप की पुस्तक "**निग्गंठ नायपुत्त श्रमण भगवान महावीर तथा मांसाहार परिहार**" मैंने आद्योपांत पढ़ी है। इस पुस्तक के द्वारा आपकी अनुपम-प्रतिभा की झलक मिलती है। इस एक पुस्तक द्वारा यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आपकी अन्य पुस्तकें भी कितनी उच्चकोटि की होंगी। इस पुस्तक केलिये आपको श्री आत्मानंद जैनमहासभा उत्तरीभारत ने वि. सं. २०२२ को अक्षयतृतीया के दिन श्री हस्तिनापुर में वर्षीयतप-पारणा महोत्सव पर समस्त-भारत के सम्मिलित चतुर्विध संघ के समक्ष पुरस्कृत कर बहुमान-पूर्वक सम्मानित किया गया। इसी महत्वपूर्ण पुस्तक में जैन-निर्ग्रंथ-मुनियों तथा श्रमण भगवान महावीर पर लगाये गये मांसाहार के आरोपों का वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषद, त्रिपिटक, कोष, जैनागम, तर्क, चिकित्सा-शास्त्र, निघण्टु तथा जैन-आचार-विचार, सिद्धान्त आदि के दृष्टिकोणों को लेकर प्रतिकार किया है।

धर्म पर अटूट-दृढ़ श्रद्धा होते हुए भी आप रूढ़िवादी नहीं है। २७ वर्ष की आयु में आपने अन्तर्जातीय, अन्तर-प्रांतीय और अन्तर-संप्रदाय में विवाह बिना दहेज लिये, बिना किसी आडंबर और दिखावे के आठ व्यक्तियों की बारात लेकर कन्या पक्ष के नगर में उन के घर पर जैन-विवाह-विधि से बड़े आदर्श रूप से किया। आप श्वेतांबरजैन है तो आपकी पत्नी सुश्री कलावती दिगम्बरजैन संप्रदाय की थीं। आप पंजाब के और आप की पत्नी उत्तरप्रदेश की, आप ओसवाल हैं और आप की पत्नी पद्मावती पोरवाल।

सन् ईस्वी १९६६ (वि. २०२३) में आगरा में आप की पत्नी का देहांत हो गया। आप अपने पीछे पांच पुत्र और दो पुत्रियां भरापूरा परिवार छोड़ गई। आपकी पत्नी का देहांत हो जाने के पश्चात् दिल्ली में शांतिमूर्ति, जिनशासनरत्न, राष्ट्रसंत आचार्य श्री

विजयसमुद्र सूरि जी से चतुर्विधसंघ समक्ष संपूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया। सन् ईस्वी १९३९ में अपने विवाह से पहले अविवाहित अवस्था में ही आपने बड़ोदा में न्यायतीर्थ, न्याय विशारद मुनि न्यायविजय जी (काशीवाले आचार्य श्री विजयधर्म सूरि जी के शिष्य) से विधिसहित सम्यक्त्वमूल बारहव्रत ग्रहण किये थे। भक्ष्य अनंतकाय का भी त्याग, रात्रि को तिविहार पच्छक्खाण, प्रातःकाल नवकारसी-पोरिसी का पच्चक्खाण, प्रतिदिन सामयिक, प्रतिक्रमण, देवदर्शन-पूजन, जाप करने को प्रतिज्ञाबद्ध हैं। आपपर द्वादशांग (गणिपिटक) की अधिष्टातृदेवी का महान् वरदान और न्यायांभोनिधि श्रीमद् विजयानन्द सूरि (आत्माराम) जी का सर्वदा आशीर्वाद प्राप्त रहता है।

अजमेर, बीजापुर, राजकोट, आजिमगंज (मुर्शिदाबाद), कलकत्ता, गुजरांवाला, मद्रास, अंबाला, दिल्ली आदि अनेक स्थानों के अनेक व्यक्ति एवं साधु-साध्वियां आप के ज्ञान व शिक्षा से लाभ उठा चुके हैं। धर्मसंबंधी शंकाओं का समाधान करने की आगम और तर्क युक्त समन्वय की शैली जिज्ञासुओं को मंत्रमुग्ध किये बिना नहीं रह सकती। जैनसमाज का गौरव है कि उसे ऐसे सच्चरित्र-ज्ञान-सम्यग्दृष्टि सम्पन्न विद्वान की उपलब्धि हुई है। कृषगात्र और साधारण सी वेषभूषा में आप की प्रतिभा और विद्वत्ता को पहचान पाना साधारण व्यक्ति केलिये आपके संपर्क में आये बिना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

शास्त्री जी जब अपने जीवन की बीती घटनाओं का वर्णन करते है तो लगता है कि मानो वे उनके सामने चलचित्र की भांति उभर रही हों। आपकी अद्भुत स्मरणशक्ति को देखकर आश्चर्य होता है। परन्तु इतनी प्रतिभाओं का धनी यह व्यक्ति, सदैव अभाव का जीवन ही जीता रहा है। मुन्शी प्रेमचद हिन्दी और उर्दू के महान साहित्यकार हुए हैं परन्तु उनका जीवन अभाव और कष्ट में बीता। इसी प्रकार शास्त्री जी का जीवन भी अभाव और संघर्ष की गाथा है। धर्माराधना में कठोर पर परदुःख-कातर, अन्दर से कोमल और व्यथा से भरे हृदय को व्यक्ति उनके सम्पर्क में आकर ही जान सकता है।

ईस्वी सन् १९८० में मद्रास में आपको श्रावक रत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया एवं वि.स. २०४५ वैसाखमास में आप श्री का श्री हस्तिनापुर जैनतीर्थ में आचार्य श्री विजयेंद्रदिन्नत सूरि की निश्रामें समस्त भारत से पधारे हुए श्री चतुर्विध संघ की उपस्थिति में श्री आत्मानन्द जैन महासभा (उत्तर भारत) ने भत्वमीन सम्मान ४०० ग्राम चांदी की प्लेट गरमशाल, ज़री के हार से किया और आप श्री को **जैनविद्यामर्मज्ञ** की पदवी से विभूषित किया जिसे उस चांदी की प्लेट में अंकित किया गया है।

केवल जैनसमाज ही नहीं अपितु सभी समाजों की वृत्ति रही है कि वह व्यक्ति को कम से कम देकर अधिक से अधिक पाना चाहता है। साहित्यकार सदैव समाज से जितना पाता है उस से कहीं अधिक देता है। मुझे विश्वास है कि यदि शास्त्री जी आर्थिक चिंताओं से मुक्त हों तो वे अपने जीवन के शेषकाल में भी समाज को अनूठी कृतियां दे सकते हैं।

दिनांक २२.१०.१९८८
दीपावली पर्व

निर्मलकुमार जैन M.Sc.
भूतपूर्व चीफ इंजीनियर
महामंत्री श्री आत्मवल्लभ जैन पंजाबी संघ आगरा

लेखक की वंशावली

बीसाओसवाल (बड़े साजन) दूगड़गोत्रे जैनधर्मावलम्बी (विक्रम १७-१८ वीं शती)

१. शाह कर्मचद जी जैनागम्-दशन के प्रकांड विद्वान थे। अनेक साधु- साध्वियों को जैन शास्त्रो अभ्यास कराया

२ शाह मथुरादास जी गुप्तरूप से साधनहीन, साध्वियों के तन-मन-धन से कष्टनिवारक। जैन श्रीसंघ में चौधरी पदवी से सम्मानित थे।

३ शाह दीनानाथ जी ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान, चौधरी पद तथा स्वर्णपदक से गुजरावाला श्री जैनसघ से सम्मानित। श्री जैनसघ की कार्यकारिणी सभा के मानद मंत्री थे।

४. अनेक शोधग्रथो के लेखक, जैनविद्यामर्मज्ञ हैं (विशेष परिचय आपकी जीवनी से देखे।

५ अमृतकुमार ज्योतिषविज्ञान एव हस्तरेखाविज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान हैं।

जैनविद्याकर्मज्ञ पंडितप्रवर श्री हीरालालजी दुग्गड़ जैन द्वारा रचित मर्मज्ञतापूर्ण ग्रंथरत्नों की सूची

१-४ अर्हंतजीवनज्योति (चारभाग)
५. नवतत्व प्रकरण साथ, सविवेचन सचित्र।
६. जीवविचार प्रकरण सार्थ-सविवेचत सचित्र
७. जगत और जैनदर्शन।
८. आत्मज्ञान प्रवेशिका तथा जैनतत्व बोध।
९. बंगाल का आदिधर्म और जैन पुरातत्व सामग्री।
१०. पंचप्रतिक्रमण सूत्र तथा सप्त स्मरण साथ सविवेचन (खतरगच्छ)
११. नवपद ओली तथा अक्षयनिधि तप विधि।
१२. जिनदर्शन पूजन विधि।
१३. अष्टाहिका। (अट्ठाई) व्याख्यान।
१४. निग्गंठ णायपुत्त श्रमण भगवान महावीर तथा मांसाहार परिहार।
१५. वल्लभ काव्य सुधा।
१६-१८. वल्लभप्रवचन (तीनभाग)
१९. वल्लभ जीवनज्योति।
२०. कतिपय जैनतीर्थों का इतिहास।
२१ श्री हस्तिनापर तीर्थ का इतिहास। (हिन्दी)
२२ श्री हस्तिनापर तीर्थके चैतन्यवंदनादि
२३. सद्धर्म संरक्षक मनि श्री बुद्धिविजय (बूटेराय) जी का चरित्र
२४-२५. तप सुधानिधि दो भाग।
२६ मध्य एशिया और पंजाब में जैनधर्म।
२७ जैनधर्म तथा जिनप्रतिमापजन रहस्य।
२८. श्रीपाल चरित्र (आ० विजय वल्लभ सरि के प्रवचन)
२९. राजकमार वर्धमान महावीर विवाहित थे। (हिन्दी)
३० राजकुमार वर्धमान महावीर विवाहित थे। (गजराती)
३१ भगवान महावीर का जन्मस्थान क्षत्रियकुंड।
३२ सेनार्यमनि।
३३ शकुनविज्ञान। (दो आवृत्तिया)
३४-३५. लोंकागच्छ की पट्टावलिया
३६. चरित्रावल्ली
३७ प्रश्नपृच्छा। (विज्ञान)
३८ स्वप्नविज्ञान।
३९. स्वरोदय विज्ञान।
४०. भद्रबाहु संहिता।
४१. मंत्र-यंत्र-तंत्र विज्ञान प्रथम भाग।
४२. मंत्र-यंत्र-तंत्र विज्ञान दूसरा भाग
४३. सम्राट अकबर के धर्मविश्वास जीवन, राजनीति पर जैनधर्म का प्रभाव।
४४. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर।
४५. जैनसमाज समय को पहचाने।
४६. पंजाब को ओसवालों का भावड़ा क्यों कहते हैं।
४७. जिनकल्प और स्थविरकल्प।
४८. दिगम्बरों के चालीस प्रश्नों का समाधान।
४९. पंजाब के उत्तरार्ध लोंकागच्छ की पट्टावलियां।
५०. लेख संग्रह।
५१. भगवान महावीर।

समर्पण

१.

जन्मदातृ

माता सुश्री धनदेवी

(स्व. वि. सं. १९६१)

२.

जीवनदातृ

नानीमां सुश्री अच्छरादेवी

(स्व. वि. सं. १९६६)

जिसने मुझ ९ दिन के मातृविहीन शिशु को
अपने स्तन (पय) पान से पालन-पोषण किया

३.

जीवनसंगिनी

आदर्श धर्मपत्नी सुश्री कलावती रानी

(स्व. वि. सं. २०२३)

(जिसने लग्नग्रंथि से बद्ध होकर मेरी और परिवार की अथक-अनन्य
सेवा-सुश्रूषा-भक्ति की

कृतज्ञ भाव से इन तीनो स्वर्गवासी-महिलारत्नों की पुण्यस्मृति में यह
ग्रंथरत्न श्री जिनशासन को समर्पित करता हूं।

— हीरालाल दुगड़

दो शब्द

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रवर्तित धर्म-दर्शन संकुचित नहीं होता। लेकिन उसका अर्थ समझने और ग्रहण करने की हमारी सीमाएं अवश्य होती हैं। जैन धर्म में ६३ 'शलाका पुरुषों' का वर्णन आता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामक प्रत्येक काल खंड में ये 'शलाका पुरुष' जन्म लेकर समाज को धर्म और नीति की प्रेरणा देते हैं। इन शलाका पुरुषों में २४ तीर्थंकरों का स्थान सबसे ऊपर है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव पिता नाभि राजा तथा माता मरुदेवी के पुत्र थे। अंतिम २४ वें तीर्थंकर महावीर थे जो आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व हुए। यों देखा जाए तो काल की अविच्छिन्न धारा में न तो ऋषभ देव प्रथम हैं और न महावीर अंतिम यह परम्परा वस्तुतः अनादि-अनन्त है। न जाने कितनी चौबीसियां हो चुकी है। और कितनी आगे होने वाली है।

तीर्थंकर महावीर के जन्मस्थान को लेकर विद्वानों मे मतभेद है। पंडित हीरालाल जी दूगड़ जैन की यह खोजपूर्ण कृति लेखक की वर्षो की मेहनत, अध्ययन और खोज का परिणाम है। १० वर्ष पूर्व प्रकाशित उनके बृहद् ग्रंथ ''मध्य एशिया और पंजाब मे जैन धर्म'' का सर्वत्र स्वागत हुआ था। देश-विदेश मे उसकी मांग है। जैन विद्या मर्मज्ञता के धनी पंडित जी की प्रत्येक कृति अपने विषय की महत्वपूर्ण सामग्री से संपन्न होती है। वे जो कुछ लिखते है, उसमे साधारण पाठक की धार्मिक निष्ठाए तो पुष्ट होती ही है विद्वत समाज भी उनकी तर्क शैली, खोजपूर्ण दृष्टि और निष्पक्ष मान्यताओं से लाभान्वित होता है। जैन समाज के इस वयोवृद्ध मूर्धन्य लेखक की स्वस्थ दीर्घायु के लिए हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

श्री दिनकरभाई (गुजराती) श्री दूगड़ जी को ग्रंथके शोधखोजपूर्वक तैयार करने में खर्च की पूर्ति के लिए रुपया २५०० की राशि प्रदान करने की उदारता करके उनपर खर्चे के बोझ को हल्का करके एक आदर्श काम किया है। इसलिये वे धन्यवाद के पात्र है।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे आत्म-वल्लभ समुद्र पाट परम्परा के वर्तमान पक्षधर आचार्य प्रवर, परमार क्षत्रियोद्धारक, गच्छाधिपति, श्रीमद्, विजयेन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी म. सा. की प्रेरणा से रुपया दसहजार की राशि श्री आत्मवल्लभ शिक्षण निधि ने प्रदान की है तथा जो अन्य महानुभाव और संस्थाए सहयोगी बनी है उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करना हमारा परम कर्तव्य है। आचार्य श्री जी के चरणों में कोटिशः वन्दन।

अन्त में, पुस्तक के मुद्रण और प्रकाशन में कोई त्रुटि रह गई हो तो सहृदय पाठक उसके लिए क्षमा करेंगे, ऐसी आशा है।

दिल्ली — वीरेन्द्र कुमार जैन

पौष पूर्णिमा, २१ जनवरी १९८९

विजय वल्लभ स्मारक

दिल्ली
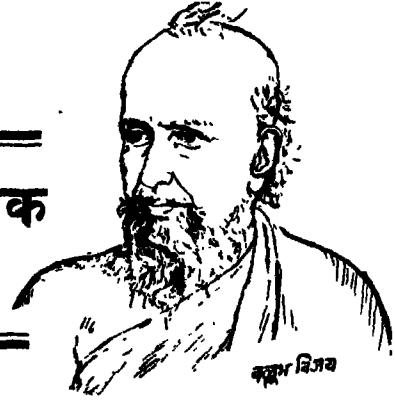
'विजय वल्लभ स्मारक' दिल्ली से पंजाब जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग नं. 1 के 20 वें कि. मी. पर, गगनचुम्बी, अद्वितीय एव विशाल भवन के रूप में अब स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है। युगद्रष्टा जैनाचार्य श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज का, जिनके समाज के ऊपर अनन्त उपकार है, पुण्य स्मृति को अमर करने के लिए उनकी यशोगाथानुरूपकरोडो रुपयों की लागत से यह स्मारक पत्थर द्वारा निर्मित हुआ है। इसकी योजना विविधलक्षी है और इसके माध्यम से धर्म के सातो क्षेत्रों का सिंचन होगा।

स्मारक-निर्माण के लिए एक अखिल भारतीय ट्रस्ट की स्थापना **श्री आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि** के नाम से भगवान् महावीर के 25 सौवें निर्वाण वर्ष की पावन बेला मे दिनाक 12 6.74 को हुई थी। देश के प्रमुख जैन इसके ट्रस्टी है। श्री आत्म-वल्लभ समुद्र पट्ट-परम्परा के वर्तमान गच्छाधिपति जैन-दिवाकर परमार-क्षत्रियोद्धारक, चारित्र-चूडामणि आचार्य विजयेन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी साध्वी जैन-भारती महत्तरा मृगवती श्री जी महाराज इस योजना की प्रणेता थी। आचार्य श्रीमद्विजय समुद्र सूरि जी महाराज से उन्होने स्मारक-निर्माण के आदेश प्राप्त किये और वर्तमान आचार्य श्री जी का आर्शीवाद एवं मार्गदर्शन उन्हे मिला था। महत्तरा जी ने अपना पूर्ण जीवन इसमे लगा दिया था। उनकी सद्-प्रेरणा से समाज ने महान् आर्थिक योगदान दिया। पूज्य महत्तरा जी ने भी अपने हाथ से जिस योजना की नीव डाली थी, उसका अधिकाश भाग अपने तप, त्याग और कर्मठता के बल पर अपने जीवन काल में ही सम्पन्न कर लिया था। समाज उनका ऋणी रहेगा।
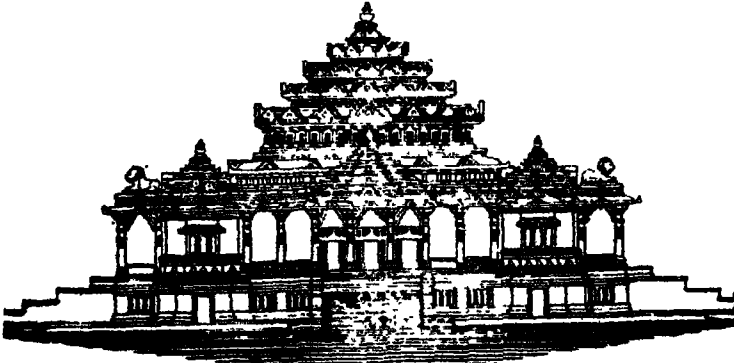
इस "निधि" के पास बीस एकड़ भूमि है। मुख्य स्मारक भवन के अतिरिक्त, एक जिन-मन्दिर, छात्रालय तथा विद्यापीठ एवं उपाश्रय आदि अनेक भवन भी बन चुके हैं। समस्त निर्माण वास्तुकला के अनुरूप भव्य और कलात्मक है। मन की शांति एवं साधना और आराधना के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त स्थान है। महत्तरा जी ने इस विशाल प्रांगण को "आत्म-वल्लभ-संस्कृति मन्दिर" नाम दिया था। संक्षेप में इसे "विजय-वल्लभ-स्मारक" एवं "जैन मन्दिर" भी कहते हैं। भारतीय धर्म दर्शन पर शोध कार्य करने के लिए यहां पर "भोगीलाल लेहरचन्द भारतीय संस्कृति संस्थान" स्थापित हो चुका है जिसके अन्तर्गत एक विशाल हस्तलिखित ग्रन्थ भंडार एवं पुस्तकालय उपलब्ध है, जिसमें हजारों हस्तलिखित ग्रंथ और प्रकाशित पुस्तकें हैं। देश-विदेश से गवेषक यहां शोध कार्य हेतु पधारते हैं। उनके आवास और भोजनादि की समुचित एवं निःशुल्क व्यवस्था यहां की गई है। शोध एवं अन्य विद्यार्थियों को अनुदान देकर ऊंची शिक्षा दिलवाई जाती है। अनेक गोष्ठियां भी यहां हो चुकी हैं। संस्कृत एवं प्राकृत अध्ययन तथा अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। प्रकट प्रभावी माता पद्मावती देवी का स्मारक प्रांगण में शिल्पानुरूप निर्मित मन्दिर श्रद्धा का विशेष केन्द्र बन चुका है, जहां सभी के मनोरथ पूरे होते हैं। महत्तरा मृगावती जी की समाधि तो एक गुफा सी प्रतीत होती है और यात्री उसके भीतर जाकर स्वतः नतमस्त हो जाता है। चिकित्सा-हेतु एक डिस्पेंसरी भी चलाई जाती है। जैन एवं समकालीन कला का एक संग्रहालय तथा स्कूल बनाने का भी प्रावधान किया गया है।

नव-निर्मित जिन मन्दिर चतुर्मुखी है। इसमें भगवान् वासुपूज्य स्वामी मूलनायक होंगे तथा भगवान् पार्श्वनाथ, भगवान् आदिनाथ एवं भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी जी भी सुशोभित हो रहे हैं। भगवान् की प्रतिमाएं अति मनमोहक हैं। मुख्य स्मारक भवन के रंगमंडप का व्यास 64 फुट है, जिसके मध्य में हमारे पूज्य जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की एक भव्य 45" प्रमाण बैठी हुई मुद्रा में मुंह बोलती प्रतिमा है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति बेमिसाल है। रंगमंडप का व्यास 64 फुट है और भवन की ऊंचाई गुरुदेव की आयुअनुरूप 84 फुट है। आज भी आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी काल की प्राचीन शिल्पकला इस स्मारक के माध्यम से पुनः जीवित हो उठी है। समस्त भारत में पत्थर से निर्मित इस प्रकार का कलायुक्त भवन सम्भवतः दूसरा दिखाई नहीं देता। यह सुन्दर भवन भारत की राजधानी एवं पर्यटकों के लिए आकर्षक नगरी दिल्ली की शोभा बढ़ा रहा है। निकट भविष्य में अवश्य ही यह वास्तुकला के निर्माण में अभिरुचि रखने वालों एवं दर्शकों तथा गवेषकों के लिये महत्वपूर्ण केन्द्र बन जायेगा।

विजय वल्लभ स्मारक, अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त करने वाला एक सजीव एवं ज्वलन्त संस्थान यह स्मारक सदैव युगवीर आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी महाराज के उपकारों की याद दिलाता रहेगा एवं भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित स्वर्णिम सिद्धान्त-सत्य, अहिंसा, अनेकान्तवाद और अपरिग्रह के प्रचार और प्रसार का विश्व-कल्याण हेतु एक सक्रिय माध्यम तथा केन्द्र बनेगा एवं जैन समाज का यह गौरव चिह्न सिद्ध होगा।

हमारे वर्तमान आध्यात्मिक मार्ग दर्शक
गच्छाधिपति परमार क्षत्रियोद्धारक, जैन दिवाकर
जैनाचार्य श्रीमद् विजयेन्द्र दिन्न सूरि जी महाराज

परमार क्षत्रियोद्धारक प. पू. जैनाचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी म०

जीवन परिचय

आध्यात्मिक सुषमा केन्द्र, जन-मन मोहक मोहन प. पू. आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी महाराज साहब का जन्म विक्रम सम्वत् १९८० कार्तिक वदी ९ को बड़ौदा के सालपुरा ग्राम में हुआ। संस्कार आरम्भ में उपलब्ध वातावरण, पारिवारिक परम्परा और आचरण पर आधारित होते हैं। गुरु इन्द्र का आज का महान व्यक्तित्व शैशव काल में ही मिले धार्मिक विशुद्ध शाकाहारी, अहिंसावादी पारिवारिक वातावरण से प्रारम्भ हुआ। साधु संतों का समागम उनका उपदेश श्रवण मन में वैराग्य भाव पैदा करने लगा। फलतः सं. १९९८ फाल्गुन शुक्ला पन्चमी को मुनिराज श्री विनय विजय जी म. सा. के कर कमलों द्वारा आप श्री ने भागवती दीक्षा ले ली।

युग द्रष्टा पंजाब केसरी पं. पू. विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज साहब का सुखद सान्निध्य आपकी अन्तर्निहित सौम्यता परमार्थ प्रेम व चारित्रिक गरिमा को द्विगुणित करने वाला सिद्ध हुआ। आप श्री को वि. सं. २०११ चैत्र वदी ३ को सूरत में गणितवर्य पद का सम्मान मिला और आपके सद्गुणों से प्रभावित होकर वि. सं. २०२७ माघ शुक्ला पञ्चमी को वरेली में वहां के नूतन मंदिर के प्रतिष्ठा महोत्सव पर पं. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वर जी म. सा. ने आपको आचार्यपद से अलंकृत किया।

आप श्री ने मानव मात्र को उदारता व सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने वाले श्री महावीर स्वामी का संदेश मात्र जैन बंधुओं तक ही नहीं पहुंचाया अपितु जैनेतरों तक पहुंचाया और उन्हें प्रभावित किया। गुजरात के परमार क्षत्रिय आपश्री के प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए कि वे गुरुदेव के अनन्य भक्त बन गए। ५०,००० जैनेतर परमार क्षत्रियों ने बड़े ही धूमधाम के साथ सोत्साह जैनधर्म अंगीकार किया। कितने तो जैन श्रावक श्राविका धर्म को अंगीकार कर सन्तुष्ट नहीं हुए अपितु जैन मुनि बन गए। जैन इतिहास की यह अभूतपूर्व घटना स्वयं में स बात का प्रमाण है कि आप श्री के प्रवचन कितने प्रभावशाली हैं और भटके हुओं को राह दिखाने वाले हैं। आप श्री की वाणी में दर्शन, न्याय, साहित्य, व्याकरण आगम आदि विषयों का गहरा अध्ययन व पान्डित्य स्पष्ट झलकता है।

परम गुरु भक्त आपश्री ने गुरु देवों द्वारा स्थापित संस्थाओं पाठशालाओं को अत्यंत जागरुकता व निष्ठा के साथ सम्भाला है साथ ही गुरुदेवों की योजनाओं व स्वप्नों को साकार रूप देने की दिशा में कई सबल कार्य पूर्ण कर लिए हैं। और कई कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर हैं। बड़ौदा में बनी श्री विजयवल्लभ सार्वजनिक हॉस्पिटल, बोडेली का महातीर्थ के रूप में परिवर्तन, गांव-गांव में मंदिर और पाठशालाओं का निर्माण कांगड़ा तीर्थोद्धार, मुरादाबाद में जिनशासन रत्न प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वर जी म. सा. का समाधिमन्दिर आदि कार्य पूर्ण किए जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक वल्लभ स्मारक का कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर है। जिसकी प्रतिष्ठा आपकी निष्ठा में हो रही है।

आप श्री के चरणकमल गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, जम्मू, काश्मीर जहां भी पड़े हैं वहीं दीक्षा महोत्सवों अन्जनशलाका प्रतिष्ठाओं, उपधान तपों, पैदल यात्रा संघों आदि अनेकानेक धार्मिक कार्यक्रमों व महोत्सवों की धूम मच जाती है।

साधु समाज में अग्रगण्य परमार क्षत्रियोद्धारक गच्छाधिपति प. पू. आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी महाराज साहब की दिनचर्या, प्रवचन, शैली, सरसवाणी, मधुर व्यवहार, अगाध गुरुभक्ति आदि गुण सकल श्रीसंघ केलिए श्रद्धास्पद हैं।

आज भी आपश्री अहर्निश धर्मध्यान व तपश्चर्या के साथ जैन धर्म व समाज की समुपस्थित समस्याओं के निराकरण जैन समाज व धर्म के निरन्तर उत्थान व विकास के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। आपकी निश्रा में विजय वल्लभ स्मारक की अंजनशलाका, प्रतिष्ठा संपन्न हो रही है। आपकी परम कृपा से इस पुस्तक के प्रकाशान में आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार भविष्य में आपकी कृपा बनी रहे।

इस शोधग्रंथ के प्रकाशन केलिये आचार्य श्री की प्रेरणा से राशि प्राप्त हुई है जिसका विवरण अन्यंत्र में दिया है अतः आपकी इस कृपा केलिये कोटिशः धन्यवाद

प्राचीन, ऐतिहासिक जैन तीर्थ कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)
की यात्रा हेतु जाते हुए महत्तरा साध्वी मृगावती जी महाराज
तथा अन्य साध्वी मंडल के साथ लेखक

भूमिका

(BLANK PAPER AND THE LETTER)

कोरा कागज और पत्र

पत्र (LETTER)

नवम्बर १९८४ ई. को डाकिया पत्र डाल गया। खोलकर पढ़ा। लिखा था श्री दुग्गड़जी धर्मलाभ दो वर्ष पहले जब आप बम्बई में हमारे पास आए थे तब आपकी सादी वेषभूषा से आपको एक साधारण व्यक्ति समझ कर हम आपकी तरफ विशेष लक्ष्य नहीं दे पाये। यद्यपि आपकी कुछ पुस्तकों का आर्डर अवश्य दे दिया था। पुस्तकें मिलने पर जब हमने आपकी पुस्तकें १. मध्य एशिया और पंजाब में जैनधर्म, २. जैनधर्म और जिनप्रतिमा पूजन-रहस्य, ३. निग्गंठ्ठ नायपुत्त श्रमण भगवान महावीर तथा मांसाहार परिहार, ४. राजकुमार वर्धमान-महावीर विवाहित थे आदि को पढ़ा तो हमें लगा कि– हमारे जैनसमाज में आप जैसे विलक्षणबुद्धि के धनी, गहन-गम्भीर आगमानुकूल तर्कसंगत लेखनशैली से शोधग्रंथों को लिखनेवाले विद्वान सद्भाग्य से आज भी विद्यमान हैं।

आप जानते होंगे कि अमुकवर्षों से चरम तीर्थ-पति भगवान महावीर के जन्मस्थान् के विषय में आधुनिक कुछ विदेशी तथा भारतीय विद्वानों ने नानाप्रकार की भ्रांतियों का सर्जन करदिया है। अतः भगवान के वास्तविक जन्मस्थान के निर्णय केलिए– यहां मधुवन में दिनांक २४, २५, २६ नवंबर १९८४ को अखिलभारतीय इतिहासज्ञ विद्वत सम्मेलन होने जा रहा है। अतः आपसे सादर निवेदन है कि आप इस विषय पर शोधपत्र लिखकर यथाशीघ्र हमें अथवा सम्मेलन-संयोजक के पास भेज दें। आप सम्मेलन में सक्रिय भाग लेने केलिए समय पर पधारने की अवश्य कृपा करें ताकि आप अपना शोधपत्र सम्मेलन में स्वयं पढ़ सकें। (पत्र का सार)

उत्तराकांक्षी
अंचलगच्छाधिपतिआचार्य
श्री गुणसागर सूरि जी के
अन्तेवासी पं. कलाप्रभसागर

पत्र पढ़कर मुझे लगा कि यह कार्य है तो बड़ा महत्वपूर्ण। पर इस कार्य केलिए भारत के जैनचतुर्विध संघ-को प्रारंभ से ही सजग हो जाना चाहिए था। आज अपने समाज में प्रायः इतनी शक्ति एवं समय, धन को आडम्बरों में खर्च करने-कराने की प्रथा है, क्या ही अच्छा होता, जैनसंघ ऐसे शासनोत्कर्ष के कार्यों को प्राथमिकता देता। चलो– देर आयद दुरुस्त आयद– जब जागे तभी सवेरा यह मानकर ही सही, अब इस कार्य की सफलता केलिए जैनसंघ दृढ़ संकल्प के साथ लग जावे तो भी अच्छा है।

पर निमंत्रण पाकर मैं असमंजस में पड़ गया कि आज तक न तो मैंने कभी इस विषय पर लक्ष्य ही दिया है और न ही मुझे इस विषय की कोई जानकारी है। सम्मेलन के प्रारंभ होने में भी कम दिन रह गए हैं। शोधपत्र लिखने केलिए समय, साहित्य, पुरातत्त्व आदि सामग्री और चर्चा करने केलिए काफी छूट चाहिए इसके लिए पूरा सहयोग भी चाहिए। शोधपत्र लिखने केलिए इस विषय में क्या मतभेद है, इसकी भी पूरी जानकारी चाहिए। ऐसी कोई भी सुविधा न होने से यह कार्य मेरे लिए असंभव ही है।

कोरा कागज (BLANK PAPER)

मैंने विवश होकर गणि श्री कलाप्रभसागर जी को पत्र लिखा- वन्दना। पत्र मिला- निमंत्रण केलिए साधुवाद। आपने विद्वद्सम्मेलन में शामिल होने तथा शोधपत्र लिख भेजने को आमंत्रित किया है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि मैं इस विषय से एकदम अनभिज्ञ हूं। कभी जाना सोचा ही नहीं है कि जन्मस्थान के विषय में क्या मत-मतान्तर है। इसकी मुझे कोई जानकारी भी नहीं है। इसलिए इस विषय पर कुछ लिखना कैसे संभव हो सकता है। अतः इस विषय में मैं एकदम कोरा कागज (Blank paper) हूं इसलिए मैं इस सम्मेलन में सम्मिलित होने में अपने आपको एकदम असमर्थ पाता हूं। अतः क्षमाप्रार्थी हूं।

आपका कृपाकांक्षी
हीरालाल दुग्गड़

श्री पंयास जी का उत्तर

पत्र आपका मिला। समाचार जाने। निवेदन है कि जैसे भी बने आप सम्मेलन में अवश्य पधारें, आपके पधारने से सम्मेलन को शक्ति और आपको भी जानकारी मिलेगी। (पत्र का सार)

मेरा निर्णय

पंयास जी का पत्र मिलने पर मैंने सोचा कि यद्यपि मैं इस विषय से अनभिज्ञ हूं और मेरी यह नीति भी नहीं है कि मैं किसी के विचारों का अन्धानुकरण करूं अथवा कोई अपने विचारों को मुझ पर थोप सके। आजतक मैंने ५१ पुस्तकें लिखी हैं। जो कुछ भी लिखा है अपने स्वतंत्र विचारों में ही लिखा है। आजतक अपने लेखन के आलोचकों ने भी मुझ पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाला। मुझे जो ठीक सत्य प्रतीत होता है वही लिखता हूं। तथापि मुझे वहां आने में लाभ ही होगा। १. विद्वानों से परिचय होगा और उनके इस विषय में विचारों को सुनने का लाभ होगा २. तीर्थाधिराज सम्मेतशिखर जी यात्रा का लाभ मिलेगा। ३. आचार्य श्री तथा श्रमण-श्रमणियों के दर्शनों तथा परिचय का भी सौभाग्य प्राप्त होगा। मैंने ऐसा सोचकर सम्मेलन में सम्मिलित होने केलिए पंयास जी को स्वीकृतिपत्र लिख दिया।

इतिहासज्ञ विद्वत सम्मेलन

सम्मेलन के प्रारंभ होते ही मैं मधुबन पहुंच गया और सम्मेलन में सम्मिलित हो गया। इस सम्मेलन में बिहारक्षेत्र के उच्चकोटि के जैनेतर इतिहासज्ञ विद्वान ही अधिक संख्या में थे। जैनविद्वान तो मात्र तीन ही थे। १. श्री भँवरलाल जी नाहटा कलकत्ता २. श्री रमनभाई जीः(गुजराती) बंबई ३. श्री हीरालाल दुग्गड़ मैं स्वयं दिल्ली निवासी। (यह तीनों) जैन श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी आम्नाय के थे। सब विद्वानों ने अपने-अपने शोधपत्र पढ़े। मात्र मैं ही एक कोरा कागज था। सम्मेलन ने सर्वसम्मति से निर्णय किया कि[illegible] जनपद में लछुआड़ के निकट जो क्षत्रियकुंड है, वही भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है।

शोधग्रंथ लिखने का मेरा निश्चय

सम्मेलन के बाद मैं दिल्ली लौट आया और चार ग्रंथ लिखने में व्यस्त हो गया, जो मैंने पहले ही हाथ में लिये हुए थे। १९८५ ई. में हाथ में लिया हुआ कार्य सम्पन्न हो गया। तबतक जन्मस्थान के विषय में दो एक लेख भी जैनेतर विद्वानों के पढ़ने को मिले। उनमें लगन थी, उत्साह था, वे इस क्षेत्र के निवासी भी थे। इसलिए उन्हें इस क्षेत्र का परिचय, जानकारी और अपनत्व भी विशेष था। उन्होंने बड़ी तत्परता और निष्ठा के साथ सत्यखोज के समर्थन में शोध किया था। पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके इस विषय पर लेख प्रकाशित होते रहते हैं। यह बात प्रसन्नता की, प्रशंसनीय तथा अनुमोदनीय है

परन्तु इन लेखों में कुछ-न-कुछ त्रुटि रह जाना स्वाभाविक था। कारण यह है कि ये लोग जैनसाहित्य— कला और उसकी मान्यताओं से पूर्णरूप से जानकार नहीं हैं। ऐसा होनेपर भी उनकी सत्य-निष्ठा और लगन केलिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। १. किसी ने अपने लेख में भगवान महावीर के जन्मप्रसंग को लेकर मेरुपर्वत की कल्पना क्षत्रियकुंड के पर्वत के साथ जोड़कर जन्माभिषेक होना यहीं पर लिख दिया। २. किसी ने इस क्षेत्र में जैनशासन के देव-देवियों, यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियों पर नन्दीवर्धन के नाम से अंकित लेखों को पढ़कर उन मूर्तियों को जैनेतर इष्टदेवों की मानकर नन्दीवर्धन (भगवान महावीर के बड़े भाई) को भगवान महावीर से दीक्षा लेने से पहले कर्मकाण्डी यज्ञवादी मान लिया। कारण यह है कि उन्हें यह ज्ञान ही नहीं है कि जैन भी शासन-देव-देवियों, यक्ष-यक्षिणियों को मानते हैं। आगमों में भगवान महावीर के पिता-माता से लेकर नन्दीवर्धन सहित सारे परिवार को (भगवान महावीर के दीक्षा केवलज्ञान से पहले) २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का अनुयायी लिखा है। इसलिए नन्दीवर्धन भी जन्म से ही जैनधर्मी था। पश्चात् यह सारा परिवार भगवान महावीर का अनुयायी बनकर पूर्ववत जैनधर्मी बना रहा। अतः नन्दीवर्धन को कर्मकांडी यज्ञवादी मानना एकदम भ्रांत है। इसलिए इन अवशेषों को जैन-जैनेतर शिल्पकला का जानकार कोई योग्य विशेषज्ञ-पुरातत्ववेत्ता ही परख सकता है। इसमें अनभिज्ञ व्यक्ति नहीं।

वास्तव में यदि ये लेख सिद्धार्थ-त्रिशला नन्दन-नन्दीवर्धन द्वारा अंकित कराये हुए हैं तो निश्चय ही ये जैन अवशेष हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शोधकर्ता अज्ञानतावश ऐसी भ्रांत बातें लिए बैठते हैं। जो आगे जा कर बहुत हानिकर सिद्ध होती है। अनेक संखलनाएं इनकेलेखों में रह जाती हैं।

१९८४ ई. के मधुवन में इस इतिहासज्ञ विद्वत् सम्मेलन के कर्णधार आचार्य श्री गुणसागर सूरि जी तथा उन के अन्तेवासी गणि श्री कलाप्रभसागर जी ने आगे चलकर इसकार्य की प्रगति केलिये क्या किया है यह मेरी जानकारी मे नहीं है। उन्हें चाहिये था कि किन्हीं योग्य इतिहासज्ञ विद्वानों से इससे संबंधित प्रामाणिक इतिहास क्षत्रियकंड जन्मस्थान पर तैयार कराकर सर्वप्रथम सर्वभाषाओं में प्रकाशित करके सर्वत्र देश-विदेशों के विद्वानों को प्राप्त कराते। पर ऐसा हो नहीं पाया इस कमीको देखते हुए मैंने स्वयं ही इसे लिखने का निश्चय कर यह शोधग्रंथ लिखा है। और इसकी पाण्डुलिपि गणि कलाप्रभसागर जी को प्रकाशित कराने के लिये हस्तान्तरित कर दी थी और इसे पढ़कर उन्होंने मुझे लिखा कि आप जैसे मूर्धन्य विद्वान ने ऐसा प्रामाणिक ग्रंथ लिखकर मेरी चिराभिलषित भावना को साकार किया है। अतः मैं आप का बहुत आभारी हूं। अब इसे शीघ्र प्रकाशित कर दिया जावेगा।

प्रमाणिक इतिहास की आवश्यकता

स्वजाति-पूर्वजानां यो न जानाति संभवम्।
स भवेत् पूश्चलीपुत्र सदृशः पितृवेदकः।।१।।

अर्थात्- अपने पूर्वजों के विषय में जो जानकारी नहीं रखता वह उस कुल में कुलटा स्त्रीके पुत्र के समान है जिसे अपने पिता के विषय में ही पता नहीं है।

इतिहास-प्रदीपेन मोहावरण-घतिनः।
सर्वलोक धृतं गर्भं यथावत्वं प्रकाशयेत् ।।१।।

(सत्यकेतु विद्यालंकार)

अर्थात् इतिहास एक ऐसा दीपक है जो भ्रमरूपी अंधकार को नष्ट करता है। जिस का प्रयोजन संसार की घटनाओं, आधारभूत बातों व सही-तथ्यों पर प्रकाश डालना है। दीपक द्वारा जैसी वस्तु होती है वैसी ही दिखलाई देती है। यह किसी से पक्षपात नहीं करती। इतिहास का भी ठीक यही प्रयोजन है।

किन्तु इतिहास केलिये यह आवश्यक है कि वह प्रामाणिक हो और निष्पक्ष-बुद्धि से लिखा गया हो।

इतिहास राष्ट्र, समाज और धर्म का प्राण है। राष्ट्र, समाज, धर्म की उच्चता इतिहास की उच्चता पर ही निर्भर करती है। अतएव इतिहास एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है कि जो सच्चे साहित्य का आधार है। जिस काव्य में सच्ची ऐतिहासिकता नहीं है वह कवि की कोरी-कल्पना ही है। वह मनोविनोद के सिवाय किस काम का? बड़े बड़े राजनीतिज्ञों का कथन है कि जिस राष्ट्र, समाज, संस्कृति को नष्ट करना हो, उसकी भाषा, साहित्य, आदर्शों, शास्त्रों, लिपि, और स्मारकों को नष्ट कर देना चाहिए। अतः किसी राष्ट्र, समाज, धर्म का इतिहास बिगाड़ देना अक्षम्य महान अपराध है।

कितने ही दायित्वशून्य लेखक अपनी कल्पनाओं का प्रदर्शन करते हुए कुछ का कुछ लिख बैठते हैं। इस से यथार्थ का लोप हो जाने से अनर्थ हो जाता है। चाहिये तो यह कि जो भी ऐतिहासिक चर्चा की जाय वह पूरे अन्वेषणपूर्वक हो। इस सम्बन्ध में बड़े-बड़े इतिहासज्ञ भी धोखा खा जाते हैं।

भगवान महावीर के जन्मस्थान के विषय में भी ऐसा ही हुआ है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि जो इस पर शोध-खोजकर्ताओं ने लिखा है, उन भ्रांत मान्यताओं पर प्रकाश डालकर-सही निर्णय किया जावे।

जैनधर्मके चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म क्षत्रियकुंडनगर के राजा सिद्धार्थ के घर हुआ था। यह क्षत्रियकुंडग्राम नगर कहां था? इसके सम्बन्ध में भ्रमोत्पादक बातें लिखी पायी जाती हैं।

इस सत्य को कोई झुठला नहीं सकता कि श्रमण भगवान महावीर का जन्म कुंडग्राम में हुआ था। परन्तु कुछ पाश्चिमात्य इतिहासकारों की भ्रमपूर्ण स्थापनाओं के प्रभाव में आकर कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी कुंडग्राम की अवस्थिति को विवादग्रस्त बना दिया है। इस संबंध में विद्वानों की अलग-अलग स्थापनाएं हैं।

सभी धर्मों के अपने मान्य महापुरुषों के जन्मस्थान, निर्वाण स्थान अथवा उनके जीवनके प्रसंगों की विशिष्ट तिथियों को बहुत महत्व दिया गया है एवं उन स्थानोंको भावोंकी शुद्धि और अभिवृद्धि का कारण मानते हुए वहां के कण-कण को पवित्र माना है। अतः उन स्थानों की यात्रा सहस्रों वर्षों से लोग करते आए हैं और वहां से प्रेरणा पाकर अपनी आत्मा को पवित्र और धन्य मानते हैं। महान-पुरुषों के जीवनसंबंधी जन्म, निर्वाण आदि तिथियों को भी विशेष श्रद्धा-भक्ति सहित व्रत-जाप-पूजा-आराधना आदि की जाती है। जैनधर्म के तीर्थंकरों के पांचों कल्याणकों की भूमिकों तीर्थ मानने की प्राचीन परंपरा हैं। आगमों में सब से प्राचीन आगम आचारांग की निर्युक्ति में इसका उल्लेख पाया जाता है। च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण ये पांचों कल्याणक किन-किन तीर्थंकरों के कहां-कहां हुए हैं और किस-किस तिथि, नक्षत्र में हुए हैं इसका भी प्राचीन आगमों में विवरण मिलता है। कल्याणक तिथियों की आराधना विशेष धर्मानुष्ठानों द्वारा की जाती है तथा कल्याणक भूमियों की यात्रा करने में आज भी बहुत उत्साह, श्रद्धा और भक्तिभाव नजर आता है।

कुछ अर्वाचीन विदेशी और भारतीय विद्वानों की वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि की भ्रांत मान्यता से प्रभावित होकर बिहार सरकार ने इसी आधार पर बिहारप्रदेश के गंगानदी के उत्तर मुजफ्फरपुर जिले के अन्तर्गत बसाढ़ नामक ग्राम को प्राचीन वैशाली मानकर उस के समीप ही वासुकुंड नामक ग्राम को प्राचीन कुंडपुर मान लिया है। वहां एक प्राचीन कुंड के भी चिन्ह पाये गये हैं वहीं भगवान महावीर का जन्मस्थान क्षत्रियकुंड मानकर उसी के समीप अहल्य नामक भूमिखंड को अपने अधिकार में लेकर उसपर घेरा बना दिया है और वहां पर एक कमलाकार वेदिका बनाकर एक संगमरमर का शिलापट्ट स्थापित कर उस पर अर्द्धमागधी भाषा में आठ गाथाओं का लेख हिन्दी अनुवाद सहित अंकित कर दिया गया है। जिस में वर्णन है कि "यह स्थल जहां भगवान महावीर का जन्म हुआ था और जहां वे अपने तीसवर्ष के कुमारकाल को पूरा कर व्रजित हुए थे।" शिलालेख में यह भी उल्लेख है कि "भगवान के जन्म से २५५५ वर्ष व्यतीत होने पर विक्रम संवत २०१२ वर्ष में भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद ने यहां आकर इस स्थापना का लाभ उठाया है। इस महावीरस्मारक के समीप इसकी तटवर्ती भूमि पर शांतिप्रसाद साहू दिगम्बरी के दान से एक भव्यभवन का निर्माण भी करा दिया और भवन में बिहार राज्यशासन द्वारा 'प्राकृत जैनशोध संस्थान जो १९५६ ईसवी में दिगम्बरी डा० हीरालाल जैन M. A. D. Litt के निर्देशत्व में मुजफ्फरपुर में प्रारंभ किया गया था। इन्हीं के द्वारा वैशाली महावीरस्मारक स्थापित कराया गया और शोधसंस्थान भवन का निर्माणकार्य भी प्रारंभ हुआ।"

इस शोधसंस्थान में वहां उपस्थित श्वेतांबर जैनसमाज ने भी दिल खोलकर दान दिया था। इसी शांतिप्रसाद साहू दिगम्बरी ने यहां एक दिगम्बर मंदिर की स्थापना भी की।

पश्चात् स्कूलों और महाविद्यालयों (कालेजों) की निम्न कक्षाओं से ले कर उच्चतम कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में भी भगवान महावीर की वैशाली जन्मस्थान की मान्यता को प्रकाशित कर दिया गया। मात्र इतना ही नहीं अमरीकन तथा बरतानिया के कोषकारों ने भी अपने कोषों में इस भ्रांत-मान्यता को प्रकाशित कर दिया।

निःसंदेह पिछले कई दशकों से भारतीय विद्वानों की सरस्वती साधना से ये अनेक भ्रांत मान्यताएं खंडित हुई हैं और नित्य नवीन अनुसंधानों की संभावनाएं जुड़ती चली जा रही हैं। इसी संदर्भ में १. श्री नरेशचंद्र मिश्र अंजन जिन्होंने वैशाली की मान्यता का विरोध करते हुए अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लच्छुआड़ के निकट कुंडग्राम को भगवान महावीर की जन्मभूमि मानने के पक्ष में अपने तर्क दिये हैं। पुनः बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (मुंगेर) में इसी आशय के विवाद का उल्लेख करते हुए ऐसी सूचना दी गई है कि

Jainism has also hold in Mongher, Bihar is the Birth place of Mahaveera Swami the 24th Tirthankara, There are different theses to the Birth place of Mahaveera swami hold it was at Lachwar village in Jumui Subdivision, (Page 375 Edition 1966 A.D.)

डा. श्यामाप्रसाद, डा. स्वामीरामरघुवीर, डा. भगवानदास केसरी, अजयकुमार सिन्हा, श्री भंवरलाल नाहटा (कलकत्ता) स्व. मुनि श्री दर्शनविजय जी (त्रिपुटी) आदि कईयों ने वैशाली की भ्रांत मान्यता के निरसन के विषय में लिखा है और वे लिख रहे हैं।

पर खेद है कि कई जैन-पत्र-पत्रिकाकार अभी भी भगवान महावीर के वैशाली जन्मस्थान के पक्ष में गीत गाये जा रहे हैं। कविताओं, भाषणों और पुस्तकों, लेखों में भी, स्कूलों कालेजों में भी यही पाठ पढ़ाये जा रहे हैं कि भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली है। खेद है कि जैनसमाज की तरफ से ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया गया कि किसी योग्य विद्वान से ऐसी शोधपूर्ण पुस्तक जिसमें सब दृष्टियों से सप्रमाण मुंगेर जिलान्तर्गत क्षत्रियकुंड को भगवान महावीर का जन्मस्थान सिद्ध करने में सक्षम हों लिखाई जावे और पाठ्य पुस्तकों में से भी इस मान्यता को निकलवाने केलिए सक्रिय हो।

इस अभाव को देखते हुए मैंने सन् ईस्वी १९८६ में स्वयं ऐसी शोधपुस्तक लिखने का निश्चय किया। अनेक परेशानियों, बाधाओं, संकटों को पार करते हुए दृढ़ निश्चय और संकल्पपूर्वक यह शोधपुस्तक लिखकर तैयार हो पाई है। इस शोधकार्य में अनेक विघ्न-बाधाएं आईं। कई नगरों के ग्रंथागारों में जाकर इस कार्य को यथाशक्ति-मति और योग्यतानुसार यह शोधग्रंथ लिखने में मैं सफल हो पाया हूं।

श्वेताम्बर जैनचतुर्विध संघ अपने दायित्व को समझे और इस के प्रकाशन प्रचार-प्रसार में सक्रिय सहयोग दे

१. खेद है कि जैनों की उपेक्षा, प्रमाद, उदासीनता और लापरवाही के कारण अनेक तीर्थ विस्मृत हो गये, अनेक विच्छेद हो गये और आक्रमणकारियों की तोड़-फोड़, लटपाट से ध्वंस किये गये, अनेक धर्मांधों ने अपने कब्जे में करके अपनी मान्यता के रूप मे परिवर्तित करलिये।

२. विक्रम की १६वीं शती में ही जैन धर्मानुयायियों में से कुछ ऐसे संप्रदाय स्थापित करलिये गये, जो जिनप्रतिमाओं, जिनमंदिरों, जिनतीर्थों की मान्यता के कट्टर विरोधी हो गये और उनके प्रचार प्रसार से जैनमंदिरों और जैनतीर्थों, जैनस्मारकों की बहुत क्षति हुई।

३. चीनी-बौद्धयात्री फाहियान, ह्युइसांग आदि ने भारत का भ्रमण करके जैनस्मारकों, जैनस्तूपों को बौद्धस्मारक घोषित करके जैनसंस्कृति के इतिहास को भ्रामक बना दिया।

४. वर्तमान पाश्चिमात्य एवं भारतीय इतिहासलेखकों ने अनेक जैनधर्मस्थानों को अपनी अज्ञानता के कारण बौद्धों और अन्य संप्रदायों के इतिहास के पन्नों में लिख दिया।

५. चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के मगध जनपद में (वर्तमान में बिहार प्रांत) मुंगेर जिलांतर्गत जमुई सबडिविजन में लच्छुआड़ के निकट गंगा के दक्षिण में कुंडपुरनगर (क्षत्रियकुंड नगर) में च्यवन, (गर्भावतार), जन्म, दीक्षा (ये तीन) कल्याणक हुए तथा गृहवास में तीसवर्ष व्यतीत किये। २. उनको केवलज्ञान ऋजुकूलनदी के तटपर जृंभियग्राम और निर्वाण पावापुरी में हुआ। कुंडपुर, जृंभियग्राम और पावापुरी ये तीनों गंगानदी के दक्षिण में मगध जनपद में थे। अर्थात उनके पांचों कल्याण की गंगानदी के दक्षिण में हुए। इन सब स्थानों पर जैनमंदिरों का निर्माण कराकर उन में भगवान महावीर की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करके जैनतीर्थ स्थापित किये गये। जिन पर आज तक श्वेतांबर जैन परम्परा का स्वामित्त्व विद्यमान है।

६. लगभग १०० वर्षों से पाश्चिमात्य डा. हर्मनजेकोबी, डा. हार्नले आदि जर्मन-विद्वानों ने एवं उनका अंधानुकरण करनेवाले अपने ही आचार्य विजयेंद्र सूरि और पंयास मुनि कल्याणविजय एवं कतिपय दिगम्बर लेखकों तथा जैनों में ही जिनप्रतिमा उत्थापक संप्रदायों के कतिपय पदवीधारी-नामी साधुओं ने तथा कुछ जैनेतर लेखकों ने विदेह जनपद में गंगा के उत्तर में बसाढ़ आदि दो एक ग्रामों को वैशाली मानकर भगवान महावीर का जन्मस्थान स्थापित भी कर लिया और ऐसी खोखली-भ्रामक मान्यता के समर्थन में बिहार सरकार ने जन्मस्थान का शिलापट्ट भी लगा दिया।

७. इन्हीं लेखकों के आधार पर विद्यालयों, महाविद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों में भी वैशाली जन्मस्थान का भ्रामक प्रचार कई दशकों से चालू है।

८. इन्हीं शोधकों के आधार से अमरीकी और बरतानवी आदि विदेशी कोषकारों ने भी अपने कोषों में वैशाली को ही जन्मस्थान लिख दिया है।

९. इतना ही नहीं, इन सौ वर्षों के सर्वव्यापक प्रचार प्रसार से आज इस खोखली और भ्रांत मान्यता का जैनसमाज में भी सर्वत्र व्यापक रूप से जोर पकड़ता जा रहा है।

इस प्रभाव का परिणाम क्या होगा?

१. निरंतर ऐसा सर्वव्यापक गलत प्रचार चालू रहने का परिणाम यह होगा कि भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान कुंडपुरनगर एकदम भूल जाने से कि इसक्षेत्र में विद्यमान सब तीर्थस्थल विच्छेद हो जायेंगे। (सफाए-हस्ती से मिटजायेंगे) यह ऐसा अक्षम्य अपराध होगा कि जिसका कलंक टीका अनन्तकाल तक जैनसमाज के माथे पर लगा रहेगा।

२. खेद का विषय तो यह है कि सौ वर्षों से इस तीर्थोच्छेदक प्रचार होने पर भी जंगमतीर्थ कहलाने वाले चतुर्विध जैनसंघ में किसी भी पदवीधारी युगप्रधान, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गणि, पंयास, प्रवर्तनी, महत्तरा आदि श्रमण-श्रमणियां अथवा

धनकुबेर, अपने-आप को दृढ़ सम्यग्दृष्टि, जैनसंघ के अनुरागी, तीर्थसंरक्षक होने का दम भरने वाले श्रावक-श्राविकायें होने का गौरव मानते हुए भी आजतक उनमें से किसी की कुंभकरणी नींद नहीं खुली। उनकी ऐसी उपेक्षा-वृत्ति को देखते हुए दिल कांप उठता है।

३. अखिल-भारतीय जैन श्वेतांबर कान्फ्रेंस, आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी, जिनका मुख्य उद्देश्य ही जिनशासन एवं तीर्थ संरक्षण का है, वे भी आजतक हाथ पर हाथ रख कर मौन साधे क्यों बैठ रहे हैं? इन्होंने भ्रांत-मान्यता के विरोध में और वास्तविक जन्मस्थान के समर्थन में प्रेस और प्लेटफार्म से प्रचार करने पर ध्यान क्यों नहीं दिया? पाठ्यपुस्तकों से भ्रांत मान्यताओं के भाग को क्यों नहीं हटवाया।

४. इस को झुठलाया नहीं जा सकता कि मगध जनपद में लच्छुआड़ के निकट कुंडपुरनगर, (क्षत्रियकुंड) ही भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है। जहां उनके च्यवन, जन्म, दीक्षा तीन कल्याणक हुए थे और उन्होंने तीस वर्ष गृहवास भी किया था। इसका प्राचीन जैनागम, साहित्य, पुरातत्व, भूगोल, भूतत्त्वविद्या, भाषाशास्त्र, तर्क तथा तीर्थमालाएं आदि निर्विरोध एकमत से समर्थन करते हैं।

५. पर आजतक ऐसा कभी किसी ने भी नहीं सोचा कि भगवान महावीर के वैशाली जन्मस्थान की मान्यता दृढ़ हो जाने से क्या भयंकर परिणाम होगा? प्राचीन तीर्थ इस क्षेत्र के विच्छेद हो जायेंगे।

६. आज से ३७-३८ वर्ष पहले मुनि श्री दर्शनविजय जी (त्रिपुटी) ने शोधपुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई थी। जिस में सप्रमाण सिद्ध किया था कि लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड ही भगवान महावीर का जन्मस्थान है। वैशाली की मान्यता भ्रांत है। पर खेद है कि उस का भी सर्वत्र प्रचार नहीं हो पाया। चाहिये तो यह था देशी-विदेशी सब भाषाओं में भाषान्तर करवा कर इस का सर्वव्यापक प्रचार किया जाता। ऐसी कुंभकर्णी निद्रा किस काम की जिससे अपना सर्वस्व ही लुट जाय।

भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी

भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी भारतवर्ष के कोने-कोने में बड़े आडम्बर, ठाठ-बाट और धूम-धाम से राष्ट्रीय स्तर से मनायी गयी है। इस उपलक्ष में भारत सरकार और जैनसमाज ने करोड़ो रुपये खर्च किये। परन्तु कुछ जैनाचार्यों और उनके भक्तों ने इस का डट कर विरोध भी किया। जिसमें हजारों लाखों रुपये स्वाहा किये गये। आश्चर्य तो इस बात का है कि भगवान महावीर के जन्मस्थान के प्रचार-प्रसार की तरफ दोनों पक्षों में से किसी का लक्ष्य ही नहीं गया। चाहिये तो यह था कि भगवान महावीर के जन्मस्थान, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाणस्थान एवं जहां-जहां भी प्राचीनकाल से जैनतीर्थ विद्यमान हैं उन्हें विच्छेद होने से पहले ही उनके संरक्षण और विकास केलिये प्लेटफार्म और प्रेस के माध्यम से संगठितरूप से तन-मन-धन से व्यापक सहयोग दिया जाता, जिससे ये प्राचीन महातीर्थ सदा-सर्वदा सुरक्षित रहने में सक्षम होते।

भगवान महावीर के जन्मस्थान इस क्षत्रियकुंड ग्रंथ के विषय में डेढ़ वर्ष पूर्व जब मैंने भगवान महावीर के जन्मस्थान पर शोधग्रंथ लिखने का निश्चय किया तो विचार

हुआ कि इस विषय में वैशाली के पक्षधरों से भी साक्षात् करके उनके विचारों से भी अवगत हो लिया जाय ताकि भगवान महावीर के वैशाली के जन्मस्थान के विषय में उनके पास क्या-क्या प्रमाण या तर्क है।

१. श्वेतांबर तेरापंथ संप्रदाय के ख्यातनामा विद्वान डी. लिट मानद पदवीधारी मुनि श्री नगराज जी कुछ वर्षों से दिल्ली में रह रहे हैं। मैंने उन्हें पत्र लिखकर उनके वैशाली के पक्ष की पुष्टि केलिये उनके पास जो प्रमाण हैं उन्हें लिखकर भेजने को लिखा। उन्होंने अपने पत्र में इस विषय पर कुछ न लिख कर मुझे साक्षात् मिलने को लिखा। उनका पत्र मिलने पर मैं दूसरे दिन उनके पास गया। परस्पर परिचय के आदान-प्रदान के पश्चात् मैंने उनसे वैशाली के विषय मे जानकारी देने को कहा– उन्होंने कहा कि– "मेरी मान्यता भगवान महावीर के जन्मस्थान के विषय में वैशाली की है और इस मान्यता को प्रायः सभी ने मान भी लिया है तथा बिहारराज्य ने उस भूभाग को मान्यता देकर जन्मस्थान का वहां शिलापट्ट भी लगा दिया है।"

मैंने वैशाली पक्ष के विरोध में कुछ आगमिक, भौगोलिक, पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक प्रमाण दिये तो वे झट बोल उठे कि "क्या आप अपने विचार मुझ पर ठोसने आये हैं। अच्छा अब मैं समझा।"

मैंने कहा कि-ऐसा नहीं। क्योंकि मुझे इस विषय पर पुस्तक लिखनी है, आपने इस विषय पर गहन-गंभीर चिंतन-मनन भी किया होगा। इसलिये मै आपके पास जानकारी केलिये आया हू। उत्तर मिला कि- बस इस विषय में मेरा जो निर्णय है वह कह दिया है। इस के विषय मे मै और कुछ नहीं कहना चाहता। इतनी वार्तालाप के बाद मै वहा से चला आया।

२. पुस्तक लिखने के बाद राजगृही में विरायतन संस्था के संस्थापक स्थानकवासी सप्रदाय के ख्यातनामा विद्वान मुनि कवि अमरचद जी उपाध्याय जो लगभग ४५ वर्षो से मेरे परिचित हैं, उन्हें मै ने पत्र लिखा कि– "मैंने भगवान महावीर के जन्मस्थान क्षत्रियकुड पर शोधग्रंथ लिखा है। उसे मै आपके पास संशोधन के लिए भेजना चाहता हू। यदि आप समय निकाल सके तो मैं आपको प्रेसकापी देखने केलिये भेज दूँ।

उनका उत्तर मिला- कि मेरी मान्यता भगवान महावीर के जन्मस्थान वैशाली की दृढ है। आपने जो शोधग्रथ लिखा है उसे मै वृद्धावस्था, अस्वस्थता एव दृष्टि के कम हो जाने के कारण न पढ़-सुन पाऊंगा।

इस शोधग्रथ को लिखने में एकवर्ष लगा। बिना किसी की प्रेरणा तथा किसी प्रकार के सहयोग के यथासाधन, यथामति, यथाशक्ति, यथायोग्यता इसे लिखा है। तीर्थरक्षण, जिनशासन की भक्ति और श्रद्धा से निःस्वार्थभाव से लिखने में द्वादशांगवाणी (गणि पिटकी) अधिष्ठात्री देवी और इष्टदेव के सहयोग और आर्शीवाद से एवं परमकृपालू गुरुदेव स्व. श्री विजयानन्द सूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराज की परोक्ष प्रेरणा का सदा संबल रहा है। अतः यह उन्हीं की महती कृपा का सुफल है। इस में मेरा कुछ नहीं है।

८४ वर्ष की वृद्धावस्था, शरीर और इन्द्रियों की शिथिलता, आंखों की ज्योति की कमी, और इसी-वर्ष बारबार दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से ऐसा लगता है कि संभवतः अब अल्पायु शेष है। अपने जीवन के बड़े भाग ५५ वर्षों में ५० पुस्तकें लिखी हैं जो प्रकाशित हैं। १० पुस्तकें अप्रकाशित हैं इनके बाद ५१ वां पुष्प यह है और संभवतः यह

मेरी अंतिम रचना होगी। इसलिये इसका प्रकाशन (हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में) यथाशीघ्र कोई ख्यातनामा संस्था करके सर्वव्यापक प्रचार-पसार करे तो मुझे तभी प्रसन्नता होगी।

इस शोधग्रंथ को लिखकर मैं अपने कृतसंकल्प में सफल हूँ। अब इसे प्रकाशित करके अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार करना जैनसंघ का काम है। दो वर्ष केबाद गणि कला प्रभुसागर ने भी पांडुलिपि लौटा दी पर प्रकाशित नहीं करा पाये।

आज से चार-वर्ष पहले जैनश्वेतांबर अचलगच्छीय आचार्य प्रवर श्री गुणसागर सूरि जी तथा उन के अन्तेवासी गणि श्री कलाप्रभसागर जी ने भगवान के जन्मस्थान लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड के प्रचार-प्रसार और उद्धार के कार्य को सम्पन्न करने केलिये अपने हाथ में लिया है। उन्होंने दिनांक २४, २५, २६ नवम्बर १९८४ को सर्वप्रथम सम्मेतशिखर महातीर्थ की तलहटी मधुवन (बिहार राज्य) में भगवान महावीर के वास्तविक जन्मस्थान के सम्बन्ध में अखिलभारतीय इतिहासज्ञ विद्वत्सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें सर्वसम्मति से निर्णय पाया कि लच्छुआड़ के निकट कुंडपुरनगर ही भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है। इस सम्मेलन में मैंने अपने प्रवचन में कहा था कि इस निर्णय के बाद इस तीर्थ के सर्वत्र प्रचार-प्रसार और उद्धार का प्रारंभ समझकर अब कार्य सतत चालू रखना है। कहीं यह न समझ लिया जाय कि सम्मेलन में निर्णय करके बाद इसकी इतिश्री हो गयी है।

अतः इस कार्य की सफलता केलिये अनेकविध कार्य करने होंगे यथा—

१. पाठ्यपुस्तकों से वैशाली की मान्यता के बदले क्षत्रियकुंड की मान्यता को दाखिल करना। २. भारत सरकार से क्षत्रियकुंड की मान्यता को स्वीकार कराना। ३. इस क्षेत्र के सब मंदिरों का जीर्णोद्धार कराना और उनकी सुरक्षा, पूजा की व्यवस्था प्रतिदिन केलिये कराना। ४. इस कार्य को स्थाई व्यवस्थित रखने केलिए पेढ़ी की स्थापना करना। ५. यात्रियों की सुविधा केलिये बिहार सरकार के सहयोग से प्रत्येक मंदिर में जाने-आने केलिये रास्तों को जंगलों झाडियों से साफ कराकर सड़कों का निर्माण कराना जिससे आने-जाने में सुगमता हो। ६. कोषों में वैशाली के बदले क्षत्रियकुंड को जन्मस्थान लिखवाना। ७. इस जन्मस्थान केलिये अपने समाज में जागृति लाने केलिये सब साधु-साध्वियां जहां भी विचरें वहां अपने व्याख्यानों में इसका प्रचार करें तथा देश-विदेश में प्रचार केलिये पुस्तकों के माध्यम से एवं भाषणों से प्रचार किया जावें। ८. इस तीर्थ संबंधी प्रामाणिक इतिहास पुस्तकें तथा इतिहास के छोटे-छोटे फोल्डर, पाकेटपुस्तकें सब देशी-विदेशी भाषाओं में प्रकाशित करके सस्तेदामों से सर्वत्र प्रचार प्रसार किया जावे। ९. इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर मैने यह शोध-पुस्तक लिखी है। इसका सब भाषाओं में भाषांतर करवा कर प्रकाशन हो और संस्था इसे प्रकाशित करे। वह धन कमाने केलिये नहीं परन्तु इस तीर्थ के सर्वत्र प्रचार केलिये स्वल्प (कम) मूल्य रखे। १०. अपने सब तीर्थों के माध्यम से वहां की पेढ़ी से इस पुस्तक की बिक्री की व्यवस्था की जावे। ११. जिस-जिस व्यक्ति के हाथ में यह पुस्तक जावे उसका भी परमकर्तव्य है कि वह अपने नगर में गांव में सब पुरुषों-महिलाओं को इस पुस्तक को मंगवाने की प्रेरणा करे और ग्राहक बना कर पुस्तकें मंगवा लें १२. यह

पुस्तक प्रत्येक जैन परिवार में अवश्य पहुंचनी चाहिए ताकि इसके पढ़ने से वैशाली की मान्यता उनकी मन और मस्तिष्क से निकल जावे और क्षत्रियकुंड ही भगवान महावीर के जन्मस्थानं उसके आस्था कायम हो जावे। १३. इस पुस्तक की पांडुलिपि छह-सात-विद्वानों को भेजकर अद्योपांत परीक्षण करवा लिया है। सब ने इस की अनुमोदना और प्रशंसा की है। उनका आभार मानता हूं।

शाहदरा दिल्ली
दिनांक १५.५.१९८७ ई. हीरालाल दुग्गड़

अनुक्रम

मंगलाचरण

ॐ ह्रीं सिद्धाणं णमो किच्चा ॥

ॐ ह्रीं अरहंते सरणं पवज्जामि | अ | सि | ॐ ह्रीं सिद्धे सरणं पवज्जामि

ॐ ह्रीं साहू सरणं पवज्जामि | सा | ध | ॐ ह्रीं केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि

ॐ ह्रीं अरिहंत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधुभ्यः ॥
सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपोभ्यस्तु ॐ ह्रीं ॐ नमः ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ऐं अर्हं सर्वदोष प्रणाशान्यै नमः ॥

विश्व की आदि तथा प्राचीनतम जीवित संस्कृति।
जैनधर्म एवं श्रमण भगवान महावीर

१
श्रमण भगवान महावीर का जीवन परिचय

भारतीय साहित्य में चौबीस तीर्थंकर

अस्मिन्वै भारते वर्षे जन्मवै श्रावककुले।
तपसायुक्तः महात्मानं केशोत्पाटन पूर्वकम्।।
तीर्थंकरा-श्चतुर्विंशन् ग्रतैस्तु पुरस्कृत
छायाकृते फणीन्द्रेण ध्यानमात्र प्रदेशिकम्।।

(वैदिक पद्मपुराण ५/१४, ३८९)

अर्थात्- इस भारतवर्ष में चौबीस तीर्थंकरों ने श्रावककुल (जैनक्षत्रिय कुल) में जन्म लिया। उन्होंने केशलुंचनपूर्वक तपस्या में अपनी आत्मा को युक्त करके अपने आप को पुस्कृत (केवलज्ञान प्राप्त) किया। जब वे ध्यान मे मौन होते थे तो फणीन्द्र (नागराज) उन पर छाया करते थे।

चौबीस तीर्थंकरों के नाम—

ॐ ऋषभ-अजित-संभव-अभिनन्दन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि- शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्य-विमल-अनन्त-धर्म-शांति-कुंथु -अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वर्धमान आन्ता जिनाः (बृहच्छान्ति स्मरणम्)

डा. बुद्धप्रकाश डी. लिट ने अपने ग्रंथ भारतीय धर्म और संस्कृति में लिखा है- महाभारत के विष्णु के सहस्र नामों में श्रेयांस, अनन्त, शांति और संभव चार नाम आते हैं। ये सब नाम तीर्थंकरों के हैं। ऋषभ, अजित, अनन्त, धर्म के नाम मिलते हैं। विष्णु और शिव दोनों का एक नाम मात्र सुव्रत मिलता है। ये सब नाम तीर्थंकरों के हैं। लगता है कि महाभारत के समन्वयपूर्ण वातावरण में तीर्थंकरों को विष्णु, शिव और ब्रह्मा के रूप में सिद्ध कर धार्मिक एकता स्थापित

करने का प्रयत्न किया है। इस से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों की परम्परा अत्यंत प्राचीन सिद्ध होती है उपर्युक्त नामावलि में महावीर जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर थे। किन्तु जैन ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार न तो वे जैनधर्म के आदि प्रवर्तक थे और न सदैव केलिए अन्तिम तीर्थंकर थे। अनादिकाल से धर्म के तीर्थंकर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने अपने युगानुसार विशेषताएं भी रहती हैं और उन के मौलिक स्वरूप में तालमेल भी रहता है। वर्तमान युग के आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ माने गये हैं। जिनका उल्लेख न मात्र जैनागमों में आता है परन्तु भारत के प्राचीन ग्रंथों जैसे ऋग्वेद आदि में भी नाना प्रसंगों में आया है।[1] उन से लेकर महावीर आदि तीर्थंकरों के चरित्र प्राचीन जैनागमों तथा दिगम्बर पुराणों में विधिवत आते हैं।[2] धार्मिक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक दृष्टि से मानो उनमें एकरूपता तथा एक ही आत्मा की व्याप्ति प्रकट करने के लिये महावीर के पूर्व जन्म की परम्परा ऋषभदेव से जोड़ी गयी है। ऋषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पडा। यह बात समस्त वैदिक पुराणों में भी प्राय: एकमत से स्वीकार की गयी है।[3] इन्हीं भरत के पुत्र मरीचि भी पूर्वजन्म से आये थे। जिस ने अपने दादा ऋषभदेव के चरणकमलों में मुनि दीक्षा ली थी। परन्तु उससे मुनि व्रतों का पालन न हो सका। वह मुनि पद से भ्रष्ट हो गया।तथापि उसमें धार्मिक बीज पड़ चुका था और संस्कार भी उत्पन्न हो चुके थे। अतएव देव और मनुष्य आदि लोकों में जन्म लेकर भ्रमण करते हुए अन्ततः उस ने महावीर तीर्थंकर का जन्म धारण किया। इस प्रकार यह सहज ही देखा जा सकता है कि इस अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर की अध्यात्म परम्परा आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से जुड़ी हुई प्रतिष्ठित पायी जाती है।[4]

किन्तु महावीर के साथ भी तीर्थंकर परम्परा टूटती नहीं। उन के एक गृहस्थ शिष्य थे। उस समय के मगध नरेश श्रेणिक बिंबसार। उन में भगवान महावीर द्वारा धर्म का बीज आरोपित किया गया। यद्यपि वह अपने पूर्वदुष्कृत्य के कारण नरकगामी हुआ तथापि उसमें भी मरीचि के समान धार्मिक संस्कार प्रबलता के साथ स्थापित हो चुका था जिसके फलस्वरूप वह अगले जन्म में एक नये तीर्थंकर परम्परा में आदि धर्मप्रवर्तक होंगे। यानि भावी चौबीस तीर्थंकरों में पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे। इस प्रकार समग्र दृष्टि से विचार किया जाये तो जैन परम्परा में यह बात दृढ़ता से स्थापित की गई है कि जिस प्रकार परम्परा से महावीर ऐतिहासिक रूप से अन्तिम तीर्थंकर हैं। उसी प्रकार वे नए तीर्थंकर परम्परा के जन्मदाता भी हैं।[5]

अतः यह निर्विवाद है कि जैनधर्म की संस्कृति वेदकाल पूर्व की होने से विश्व में प्राचीनतम आदर्श संस्कृति है।[6]

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म और राजकुमार काल

तीर्थंकर महावीर का जो चरित्र जैन साहित्य में पाया जाता है वह संक्षेप से इस प्रकार है–

जैनागमों तथा विभिन्न जैनग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि ई. पू. ५९९ वर्ष में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में (क्षत्रियकुंडग्राम) में भगवान महावीर का जन्म काश्यप गोत्रीय ज्ञातृवंश के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ की धर्मपत्नी रानी त्रिशलादेवी जो विदेह गणतंत्र की राजधानी वैशाली के वाशिष्ठ गोत्रीय लिच्छिवीवंश के क्षत्रिय महाराजा चेटक की बहन थी उस की कुक्षी से हुआ था।

भगवान महावीर की जन्म कथा में कुंडग्राम के दो भाग ब्राह्मणकुंडग्राम (माहणकुंडग्गाम) और क्षत्रियकुंडग्गाम (खत्तीयकुडंग्गाम) के उल्लेख पाये जाते हैं। सर्वप्रथम भगवान ब्राह्मणकुंडग्राम निवासी कोडालगोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या जालन्धर गोत्रीय देवानन्दा के गर्भ में अवतीर्ण हुए पश्चात् सौधर्मेन्द्र के दूत द्वारा ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियानी रानी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरित किये गये हैं। कल्पसूत्र में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। यह प्रकृति का नियम है कि तीर्थंकर क्षत्रिय राजकुल में ही जन्म लेते हैं यदि किसी पूर्वजन्म कृत अशुभ कर्म के योग से कर्मफल को भोगने के लिए तीर्थंकर का जीव किसी अन्य जाति की स्त्री के गर्भ में उत्पन्न भी हो जावे तो देवताओं के राजा सौधर्मेन्द्र का कर्तव्य है कि वह उस तीर्थंकर के गर्भगत भ्रूण को क्षत्रियानी रानी के गर्भ में अपने देवदूत द्वारा प्रतिष्ठापित करा दें। महावीर का शैशव व राजकुमार काल उसी प्रकार लालन-पालन एवं शिक्षा से व्यतीत हुआ जैसा उस काल में राजभवनों में प्रचलित था। उनकी बाल-क्रीड़ा का एक आख्यान पाया जाता है। कि उन्होंने एक भीषण सर्प का दमन किया था और इसी वीरता के कारण देव ने उन्हें वीर की उपाधि प्रदान की थी।

राजकुमार वर्धमान महावीर का विवाह

राजकुमार वर्धमान जब युवा हुए तब उनके माता पिता ने शुभ मुहूर्त में

भगवान महावीर का दीक्षा के लिए शिविका- द्वारा प्रस्थान

कौडिण्य गोत्रीय क्षत्रिय राजा समरवार अपरनाम नरवीर की पुत्री यशोदा से उनका विवाह कर दिया। उससे इनकी एक पुत्री का जन्म हुआ जिसके दो नाम थे अणुज्जा और प्रियदर्शन। जिसका विवाह महावीर के भानेज जमाली के साथ हुआ था। बाद में इन दोनों ने अनेक क्षत्रियों और क्षत्रियानियों के साथ भगवान महावीर से दीक्षाएं ग्रहण की थीं।[7]

दीक्षा व तपस्या

भगवान महावीर के माता-पिता के देहावसान के दो वर्ष बाद तीस वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन अन्तिम चौथे प्रहर में प्रवृज्या (दीक्षा) ग्रहण की। उनकी प्रवृज्या का स्वरूप यह था। वे गृहस्थ त्याग कर क्षत्रियकुंडपुर के समीपवर्ती ज्ञातृखंड उद्यान में चले गये। वहां जाकर उन्होंने अपने समस्त आभूषण वस्त्रादि त्याग दिये, अपने हाथों से अपने केसों को उखाड़ फैंका। देवेन्द्र का दिया हुआ वस्त्र अपने बांये कंधे पर डाल दिया। उस दिन छठ (दो उपवास) तप के साथ यहां से कुमारग्राम जाकर आप सारी रात ध्यानारूढ़ रहे। देवेन्द्र का दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र भी तेरह मास के बाद गिर गया। फिर वे सदा नग्न रहे। पश्चात् देश-देशान्तरो में भ्रमण करने लगे। वे निवास तो वन उपवनों में करते थे और ध्यान और तपस्या में लीन रहते थे। 'अपनी तपस्या के पारणे (व्रत खोलने) के दिन आप ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके भिक्षा से आहार हाथों में लेकर करते थे। वह भी दिन में मात्र एक बार ही लेते थे। वे ध्यान में आत्मचिन्तन तथा समता भाव की साधना पद्मासन अथवा खड्गासन में खड़े हुए नासाग्र दृष्टि रखकर करते थे। १. लेषमात्र भी हिंसा न करना। २. तृण मात्र भी परायी वस्तु का अपहरण नहीं करना। ३. लेषमात्र भी असत्य नहीं बोलना। ४. मैथुन की कामना को लेषमात्र भी स्थान नहीं देना। ५. किसी भी प्रकार की चल-अचल सम्पत्ति रूप परिग्रह नहीं रखना। रात्रि भोजन कदापि नहीं करना। यही उनके महाव्रत थे। इन निषेधात्मक यमों या व्रतों के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं (उपसर्गों) को समता शान्ति और धैर्य पूर्वक सहन करते थे। गृह-हीन, निराश्रय, वस्त्रहीन, धनधान्य हीन त्यागी केलिए प्राकृतिक उत्पन्न होने वाली जैसे भूख, प्यास, शीत, ऊष्ण, डांस, मच्छर आदि की बाधाएं जो परिषहः कही जाती हैं उन्हें समता भाव से सहन करना। इस प्रकार ध्यान, आत्मचिंतन, समता और तपस्या करते हुए उन्होने बारह वर्ष छः महीने पन्द्रह दिन अपनी प्रवृज्या का समय व्यतीत किया। इतने समय में उन्होंने मात्र तीन सौ

वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान महावीर
चार– मूल-आठ प्रातिहार्य (१२ गुणों) सहित

उन्चास दिनों में प्रतिदिन मात्र एक बार नगर से अथवा ग्राम से लेकर आहार किया। शेष ग्यारह वर्ष सात मास और एक दिन निर्जल निराहार तपस्या में व्यतीत किए। इस तप में कभी कभी लगातार छः छः मास तक भी निराहार व्यतीत किया।

केवलज्ञान

भगवान महावीर की दीक्षा को तेरहवां वर्ष चल रहा था इस वर्ष में वैशाख सुदी दसमी को दिन के पिछले पहर में ऋजुकूला नदी के तट पर जम्भृक ग्राम के बाहर श्यामक नामक कौटुम्बिक के खेत में साल वृक्ष के नीचे (उत्कट) आसन में बैठे हुए ध्यानास्थ-मुद्रा में उन्हें केवल-ज्ञान केवल-दर्शन पैदा हुआ। इस केवल-ज्ञान का स्वरूप यदि हम सरलता से समझने का प्रयत्न करें। तो यह था कि जीवन और सृष्टि के सम्बन्ध में जो समस्याएं है और जो प्रश्न जिज्ञासु चिन्तक के हृदय में उठा करते हैं। उनका उन्हें सन्तोष कारक रीति से समाधान मिल गया। समाधान यह था कि छः द्रव्य और नौ तत्व (जीव के बन्धन और मुक्ति के उपाय) है। जिनके द्वारा त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं का स्वरूप समझने में आ जाता है। वे छः द्रव्य यह हैं जीव, पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल। नव तत्व इस प्रकार हैं– जीव, अजीव, आस्रव , बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इनके साथ पुण्य-पाप मिलाने से नवतत्व हो जाते हैं। जीवन का मूलाधार जीव है यह आत्मा द्रव्य है जो जड़ पदार्थों से भिन्न है। जीव आत्म-संवेदन तथा परपदारथ बोधरूप लक्षणों से युक्त है एव अमूर्त और शाश्वत है। परन्तु वह जड़ द्रव्यों से संगठित शरीर में व्याप्त होकर नाना रूप रूपान्तरों में गमन करता है। जितने मूर्त रूप ग्राह्य पदार्थ परमाणु से लेकर महास्कन्ध हमें दिखाई देते (इन्द्रिय जन्य) हैं वे सब अजीव उद्गल के रूप रूपान्तर हैं। धर्म और अधर्म ऐसे सूक्ष्म अदृश्य अमूर्त द्रव्य हैं जो लोकाकाश में व्याप्त हैं जो जीव और पुद्गल पदार्थों को गमन अथवा स्थिर होने में हेतुभूत माध्यम हैं। आकाश वह द्रव्य है जो अन्य सब द्रव्यों को स्थान व अवकाश देता है। काल द्रव्य वस्तुओं को रहने, परवर्तित होने तथा पूर्व और पश्चात् की बुद्धि उत्पन्न करने में सहायक होता है। यह तो सृष्टि के द्रव्यों की व्याख्या हुई। किन्तु जीव की सुख-दुखात्मक सांसारिक अवस्थाओं को समझने और उसके ग्रन्थी को सुलझाकर आत्मतत्व के शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप के विकास हेतु अन्य सात अथवा नौ तत्वों को समझने की आवश्यकता है **जीव** और **अजीव** तो सृष्टि के मूल तत्व हैं ही। उनका परस्पर

सम्पर्क होना यही **आस्रव** है। उस सम्पर्क या आस्रव से ऐसे सम्बन्ध का उत्पन्न होना जिसे आत्मा का शुद्ध स्वरूप ढक जावे और उसके ज्ञान-दर्शन-चरित्रात्मक गुण कुंठित हो जावें उसे **बन्ध** या **कर्मबन्ध** कहते हैं कर्म बन्ध से जो जीव को सुख दुख का अनुभव होता है वह शुभ अशुभ कर्म बन्ध के कारण से होता है। जिन्हें **पुण्य-पाप** की संज्ञा दी गयी है। ये दोनों बन्ध तत्व में ही आ जाते हैं। जिन संयम रूप क्रियाओं व साधनाओं द्वारा इस जीव व अजीव के सम्पर्क को रोका जाता है उसें **संवर** कहते हैं। जिन व्रतों और तप द्वारा संचित कर्म बन्ध को जर्जरित किया जाता है और विनष्ट किया जाता है उसे **निर्जरा** कहते हैं। जब ये कर्म निर्जरा की प्रक्रिया पूर्ण रूप से सम्पन्न हो जाती है तब वह जीव अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। तब वह मुक्त हो जाता है उसे निर्वाण मिल जाता है। यह **मोक्ष** तत्व का कार्य है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उक्त जीव और अजीव की पूर्ण व्याख्या में सृष्टि का **पदार्थ विज्ञान या भौतिक शास्त्र** आ जाता है। आस्रव बन्धतत्व में **मनोविज्ञान का** विश्लेषण आ जाता है। संवर और निर्जरा तत्वों के व्याख्यान में **समस्त नीति व आचार** का समावेश आ जाता है। मोक्ष के स्वरूप में **जीव के उच्चतम आदर्श ध्येय और विकास का प्रतिपादन हो जाता है।** केवल ज्ञान में इसी बोध-सुबोध का पूर्णतः व्यापक और सूक्ष्मतम स्वरूप समाविष्ट है

धर्मोपदेश-धर्मतीर्थ स्थापना और आगम रचना

केवलज्ञान प्राप्त कर भगवान महावीर मगध जनपद की पावापुरी में जाकर देवों द्वारा निर्मित समवशरण (व्याख्यान मण्डल) में विराजमान हुए धर्मप्रवचन सुनने के इच्छुक राजा प्रजा गण देव देवियां आदि वहां आ कर एकत्रित हुए। और भगवान ने उन्हें पूर्वोक्त तत्वों का स्वरूप समझाया तथा जीवन के सुखमय आदर्श प्राप्त करने हेतु गृहस्थों को अणुव्रत आदि बारह व्रतों, त्यागियों के लिए पांच महाव्रतों का उपदेश दिया जिनका पहले वर्णन किया है। इस समवशरण में क्रमशः एक-एक करके ग्यारह ब्राह्मण जो वेद-वेदांगादि चौदह विद्याओं के दिग्गज विद्वान थे अपने चवालीस सौ शिष्यों के साथ अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान पाने के लिए भगवान महावीर के पास आ उपस्थित हुए उनके नाम १. गौतम गोत्रीय इन्द्र भूति २. अग्निभूति ३. वायुभूति (तीनों सगे भाई) ४. व्यक्त, ५. सुधर्मा ६. मंडित ७. मौर्यपुत्र ८. अंकपित ९. अचलभ्राता १०. मेतार्य तथा ११. प्रभास। प्रत्येक को क्रमशः एक-एक शंका थी। १. जीव की २. कर्म की ३. वही जीव वही शरीर ४. पांच भूत ५. जो इस

जन्म में पुरुष हैं वह अगले जन्म में भी पुरुष होता है। ६. अरुपीआत्मा को रूपी कर्म का बन्ध कैसे ७. देवता है या नहीं। ८. नरक है या नहीं? ९. पुण्य-पाप है या नहीं? १०. परलोक के विषय में ११. मोक्ष के विषय में शंकाएं थीं। ये ११ पंडित और इनके ४४०० शिष्य वैदिक कर्मकाण्डी धर्मानुयायी थे। इसलिये भगवान ने इनकी शंकाओं का समाधान भी उन के मान्य वेदों के माध्यम से ही किया। शंकाओं का युक्ति पुरस्सर समाधान पा कर इन ११ विद्वानों ने अपने समस्त ४४०० विद्वान शिष्यों के साथ अपने आप को भगवान महावीर के चरणों में समर्पित कर दिया और प्रभु ने भी इन सब को मुनि दीक्षाएं दे कर अपने शिष्य बनाये। उन ११ मुख्य शिष्यों को गणधर पद से विभूषित किया। इसी अवसर पर महिलाओं में चन्दनबाला आदि अनेकों महिलाओं को पाच महाव्रतों से विभूषित कर साध्वी-संघ की स्थापना की। अनेकों स्त्री-पुरुषों ने अणुव्रत आदि बारह व्रतों को स्वीकार कर श्राविका-श्रावक (गृहस्थ) धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार भगवान महावीर ने चतुर्विध-संघ की स्थापना कर जंगम-धर्मतीर्थ की स्थापना की, और द्वादशांगमयी आगमों की देशना से इस स्थावर तीर्थ का प्रचलन किया और तीर्थंकर बने। क्योंकि (**तीर्थंकरोति इति तीर्थंकर**': इति वचनात्)।

महावीर भगवान ने अर्धमागधी जो उस समय मगध जनपद तथा इसके निकटवर्ती प्रदेश की लोकभाषा थी उसमे अर्थ से उपदेश दिया ताकि सर्वसाधारण प्रवचनों को समझकर धर्ममार्ग को सरलता से स्वीकार कर सकें। भगवान के प्रवचनों को गणधरों ने समवसरण में साक्षात् श्रवण कर उनकी सूत्रों में अर्धमागधी भाषा में ही रचना की। जो गणिपिटक (द्वादशांग) के नाम से अद्यपि प्रख्यात है। भगवान की इस द्वादशांग वाणी को भी तीर्थ कहा जाता है। तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति '**तीर्यते इति तीर्थः**' अर्थात् जो इस ससार में भव-भ्रमण रूपी सागर से आत्मा को तारे वही सच्चा तीर्थ है। अतः भगवान का प्रवचन रूपी आगम (आप्त वचनात् आविर्भूतं आगमः) भगवान का धर्म प्रवचन भव्यात्माओं को संसार से तिराने वाला है और जो प्राणी उसे श्रद्धा से स्वीकार कर आचरण में लायेगा वह निश्चय ही सर्वकर्मों को क्षय कर शाश्वत सुखदाता मोक्ष-निर्वाण प्राप्त करेगा। इसलिये- १. चतुर्विध-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप धर्म-संघ और भगवान के प्रवचन संकलन रूप आगमों को तीर्थ की संज्ञा दी गई है। तीर्थंकर जब समवसरण में विराजमान होते हैं तब इस तीर्थ को "**नमो तित्थस**" (तीर्थ को नमस्कार हो) कहकर धर्म देशना के लिए सिंहासन पर विराजमान होते हैं।

भगवान महावीर की वाणी पर आश्रित साहित्य

गणधरों द्वारा संकलित (द्वादशांगी) बारह अंगों के नाम– १. अचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग ४. समवायांग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती), ६. ज्ञाताधर्मकथांग, ७. उपासकदसा, ८. अन्तकृतदसा, ९. अणुत्तरोपपातक, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकसूत्र, १२. दृष्टिवाद। यह सब साहित्य अंगप्रविष्ट कहलाता है और गणिपिटक के नाम से भी प्रसिद्ध है। इनमें से १२वें अंग दृष्टिवाद का विच्छेद (नष्ट) हो गया है। इसके १४ विभाग थे जो पूर्व के नाम से कहे जाते थे। चौदह पूर्वधरों (संपूर्ण सार्थ द्वादशांगी) के ज्ञाता श्रुतकेवलियों, दसपूर्वधरों (चारपूर्व कम द्वादशाग बाणी के सार्थ मुनियों ने जिन शास्त्रों की रचनाएं की हैं, वे अंगबाहृय आगम कहलाते हैं। इन अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य आगमों की संख्या श्री नन्दी-सूत्र आगम में ८४ कही है। उन में से वर्तमान में ४५ आगम विद्यमान हैं। जो श्वेतांबर जैन (मूर्तिपूजक) परम्परा के पास आज भी सुरक्षित हैं। इन पर गीतार्थ जैनाचर्यों ने वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य, टीकाओं की रचनाएं प्राकृत-संस्कृत भाषाओं में विस्तार से लिखी हैं। जो पंचागी के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यमान सुरक्षित आगम साहित्य को वीरान ९८० में उस समय के विद्यमान समस्त जैन मुनिराजों ने वल्लभीनगर (सौराष्ट्र) में एकत्रित होकर जो भगवान महावीर के समय से लेकर आज तक गुरु परम्परा से प्रवाह रूप उन के कंठस्थ आगमवाचना चली आ रही थी, सर्व सम्मति से ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कर लिया गया।

दिगम्बर संप्रदाय ने भी स्वीकार किया है कि आगम की व्याख्या सुनिश्चित है- 'जो केवली या श्रुत-केवली ने कहा हो या अभिन्न दसपूर्वी (११ अंगों तथा १२वें अंग के दस पूर्वो के अर्थ सहित ज्ञान) ने कहा हो, वह आगम है।[४] तथा उनका अनुसरण करने वाला अन्य जितना भी कथन है वह भी आगम है। इस संप्रदाय की मान्यता है कि सब अंग-साहित्य क्रमशः अपने मूल रूप में विलुप्त हो गया है। इसलिए महावीर के बाद सातवीं आठवीं शताब्दी में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि केवल कुछ मुनियों को उन आगमों (आचारांग आदि) का मात्र आंशिक ज्ञान रह गया जिनके आधार से समस्त (दिगम्बर) जैन शास्त्रों, पुराणों की स्वतंत्र रूप से नयी शैली से विभिन्न देशकालानुसार प्रचलित प्राकृत (संस्कृत) आदि भाषाओं में रचना की गयी।[५]

श्वेतांबर जैन अनुश्रुति के अनुसार श्रुत-केवली चतुर्दश पूर्वधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी के बाद (लगभग ३०७ ईसा पूर्व भगवान महावीर के लगभग

२०० वर्ष बाद) आचार्य स्थूलिभद्र (जो ११ अंगों और १२ वें अंग के १० पर्वों के सार्थ तथा शेष १२ वें अंग के ४ पूर्वों के मूल सूत्रों के ज्ञाता) ने १२ वर्षीय दुष्काल के बाद मगध की तत्कालीन राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) में भगवान महावीर के धर्म सूत्रों को व्यवस्थित रूप देने के लिये जैन मुनियों की एक वृहत्-सभा का आयोजन किया। जिसमें जैन-सूत्रों का वाचन किया गया।

जैन आगम सूत्रों की यह प्रथम वाचना पाटलिपुत्र वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। स्थूलिभद्र के उत्तराधिकारी आचार्य महागिरि तथा आचार्य सुहस्तिन हुए। आचार्य सुहास्तिन मौर्यसम्राट चंद्रगुप्त के पौत्र सम्राट सम्प्रति के धर्मगुरु थे। जैन सूत्रों की दूसरी वाचना आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में (३०० से ३१३ ई.) मथुरा में हुई। जिस में उस समय के जैन श्रमणों से जो संग्रह किया गया उसे आगमों के रूप में संकलित कर लिया गया। यह माथुरी वाचना कहलायी। उसी समय इसी प्रकार का एक और प्रयास आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता में वल्लभी (सौराष्ट्र) में भी हुआ। चौथी वाचना पाचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (४५१ से ४६६ ई.) में पूर्व की वाचनाओं को देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में फिर वल्लभी (सौराष्ट्र) में हुयी। विभिन्न पाठान्तरों का समाधान करके सूत्रागमों को लिपिबद्ध कर लिया गया। यह वल्लभी वाचना कहलाती है। जो आज तक श्वेताम्बर जैनों के पास सुरक्षित है।

इन उपर्युक्त आगमों के विषय में दिगम्बर प्रकांड विद्वान स्व. डा. हीरालाल जैन M. A. D. Litt. जो वैशाली प्राकृत विश्वविद्यालय के सर्व प्रथम कुलपति थे। जिन्होंने दिगम्बर धवला आदि अनेक ग्रंथों का विद्वतापूर्वक संपादन किया है तथा अनेक ग्रंथों की शोध-खोज पूर्वक रचनाएं भी की है। उन्होंने स्वीकार किया है कि-वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी में मुनियों की एक महासभा गुजरात प्रांतीय वल्लभी (वर्तमान वला) नाम की महानगरी में की गई और यहां क्षमाश्रमण देवर्द्धिगणि की अध्यक्षता में जैनागमों का संकलन किया गया। जो अब भी उपलब्ध हैं ... वे प्राचीन शैली को बोधकराने के लिये पर्याप्त हैं। उन का प्राचीनतम बौद्ध साहित्य से भी मेल खाता है। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य त्रिपिटक कहलाता है वैसे ही यह जैन साहित्य गणिपिटक के नाम से उल्लिखित पाया जाता है। यह समस्त साहित्य अपनी भाषा शैली तथा दार्शनिक व ऐतिहासिक सामग्री के लिये पाली साहित्य के समान ही महत्वपूर्ण है।[1]

भगवान महावीर के पारमार्थिक सिद्धान्तों की गरिमा

सिद्धार्थ महीपति के कुमार स्वनामधन्य सर्वसत्वक्षेमंकर श्री वर्धमान-महावीर जो वास्तव में ही प्राणीमात्र के लिये वंदनीय, पूजनीय और परमोपकारी महापुरुष थे। उनके विश्व शांतिमय साम्राज्य को अक्षुण्ण धारावाही बनाने वाले परमार्थी सिद्धांतों को आचरण में लाना कोई साधारण बात नहीं है। इसलिए स्वार्थपरायन प्रजा उन के सिद्धान्तों को परिपूर्ण पालन करने में जैसे-जैसे शिथिल बनती गयी वैसे-वैसे उन महान सिद्धान्तोपासकों की संख्या करोड़ों से कम होती हुई लाखों में रह गयीं। जो बहुमती थी वह अल्पमती के रूप में एक संप्रदाय के नाम से संबोधित होने लगी। पर असल में देखा जाय तो उनके सिद्धांत सांप्रदायिक नहीं थे। परन्तु सबके श्रेय के लिये सार्वभौमिक थे। भले ही लोग उन्हें एक धार्मिक संप्रदाय के प्रवर्तक मानें परन्तु इतिहास और विज्ञान तो आंज भी विश्वकल्याण कारक विश्वगुरू के स्थान पर अधिष्ठित रखते हैं। क्योंकि चाहे आज या कल जब कभी भी संसार सुख-शांति के समीप पहुंचना चाहेगा तब उसे उन्हीं के पवित्र सिद्धान्तों को हृदय से स्वीकार करना पडेगा। जितने भी दूसरे प्रयत्न हैं वे सारे निष्फल और निरर्थक बनेंगे। भले ही उनमें किम्पयाक वृक्ष के विष फल समान क्षणिक शांति का अनुभव होता हो किन्तु वह केवल मृग-तृष्णा है और बिच्छ को द्वार बाहर करने के प्रयास में सर्प को प्रवेश कराना है।

आज के आधुनिक जगत के महान विचारक महात्मा गांधी, डा. टेगोर और बनार्डशा आदि को भी इसी निर्णय पर आना पड़ा है और कहना पडा हैं कि सत्ता का नाश सत्ता से हो जाता है ऐसा नहीं है। अर्थात् सत्ता से शांति नहीं मिलती। समता का अर्थ है वासनाओं से विरक्त होना-कषायों से विरक्त होना और विषयो से विमख होना। इसी समता को महावीर ने अपनी भाषा में सामायिक कहा है तथा उद्घोषण पर्वक उन्होंने बतलाया है कि सामायिक से ही सर्व सख-शांति शाश्वत रूप से निर्मित हो सकती है। आज के राष्ट्र सूत्रधारों को भी ध्यान मे रखना है कि Little the want happier you are यानी जितने-जितने प्रमाण मे तृष्णा कम उतने-उतने प्रमाण में विशेष सुख हैं। परन्तु प्रभ का "**संजोग मूल जीवेन पत्ता दुक्ख परम्परा।**" यह संदेश तो विश्व में उन दिनों भी पहुच गया था कि "**जे जे निरुपाधिपण ते ते अंशे धर्म**" **इसलिए** "**मूर्च्छा परिग्रह**":- Attachment मे सुख नहीं है। परन्त Detachment in attachment यानि अनासक्ति मे आसक्ति मानने में आनन्द है और योग्यता की अधिकार भूमि पर उसी सामायिक के दो विभाग किये गये है। एक है सर्व-विरति अर्थात् सम्पूर्ण-दसग है देशविरति अर्थात मर्यादित। सर्व-विरति का अर्थ है कि

मन-वचन और काया से किसी भी प्राणी के अधिकारों पर त्राप न मारना। किसी को अहितकर वचन न बोलना। बिना आज्ञा के किसी की तृण जैसी वस्तु को भी न लेना। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के बल से सब इन्द्रियों का दमन करना। किसी वस्तु पर मूर्च्छा न रखना तथा संग्रह न करना। देश-विरति में उपर्युक्त का सर्वथा पालन करने का सामर्थ्य न होने से उदासीन भावपूर्वक जितने प्रमाण में हो सके उतने प्रमाण में निरन्तर पालन करने की चेष्टा करना। प्रथम सर्व-विरति सामायिक के पालने वाले श्रमण, अणगार, यति, निर्ग्रंथ मुनि अथवा साधु कहलाते हैं और मर्यादित देशविरति पालने वाले श्रमणोपासक, श्राद्ध, श्रावक और गृहस्थ कहलाते हैं। दोनों में आचार-भेद होते हुए भी विचार भेद कदापि नहीं है। दोनों के साध्य की परकाष्ठा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और निष्परिग्रह में है। उन्हें ही क्रमशः महाव्रत अणुव्रत कहते हैं।

इस विश्वविभूति ने जिस महान पवित्र सिद्धांत का उपदेश दिया था उसका आचरण उनके रोम-रोम में था- पूर्णरूप से आत्मरमणता थी। जो कुछ भी वे जगत के प्राणियों को आचरण के लिये कहते थे उसका वे स्वयं भी पालन करते थे। हम इतिहास और तत्वज्ञान के तटस्थ एवं मुमुक्ष विद्यार्थी होने के नाते सर्वप्रथम तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक परिस्थिति पर अवलोकन करते हैं तो डा. रमेशचन्द्रदत्त जैसे महान ऐतिहासज्ञ की विचारधारा अपने सामने रखते हैं। वे कहते हैं कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में आर्यवर्त का यह हाल था कि धर्म की यथार्थ भावना नष्ट हो चुकी थी। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था स्खलना पा चुकी थी और मानव समाज में सत्यता की प्रधानता नष्ट हो चुकी थी। उस स्थान को स्वार्थ ने ले लिया था। जिस के वश हो कर सभ्य और शिक्षित जाति भी अमानुषिक कर्त्तव्यों के करने केलिये कटिबद्ध हो गई थी। प्रजा को धर्मान्धता में फंसाने के लिये उनके मेधा और प्रज्ञा पर प्रबल अत्याचार किया जाता था। सृष्टि के अहिंसात्मक अकाट्य नियमों का उल्लंघन करने में भी निर्भयता को स्थान दिया जाता था और महारुद्राणी रूप चार अंगुल प्रमाण जिह्वा की लोलुपता की पूर्ति में सत्यावबद्ध निरपराधी और जगत के महान उपयोगी उपकारी प्राणियों के रक्त के खप्पर खूनी खंजरों द्वारा भरे जाते थे। धर्म के सिद्धांतों को तोड़-मरोड़ कर ऐसे अन्धविश्वास के "**नियोगपर्यनुयोगानर्हमुनेर्वचः।**" जैसे सूत्र निर्धार किये जाते थे। ऐसे कटोकटी के समय में एक विश्वोपकारक विभूति की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता से हो रही थी। भारत का भाग्य बड़ा प्रबल था कि अनुपम महाविभूति प्रगट हो ही गई। इक्ष्वाकु जैसे वैभव, ऐश्वर्य और समृद्धि संपन्न ज्ञातृ कुल के राजकुमार होते हुए भी उस ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति को तृण समान गिनते हुए

तिलांजली देकर सकल संसार के श्रेय हेतु प्रथम सामायिक के पांच महाव्रतों की भीषण प्रतिज्ञा की त्याग-भूमि पर क्षमा खड्ग लेकर खड़े हो गये।

भारत के महान धाराशास्त्री सर अल्लाड़ी कृष्णा स्वामी अय्यर की एक तार्किक दलील याद आती है- उन्होंने कहा था कि "मैं धाराशास्त्री होने से धार्मिक तत्त्वज्ञान में विशेष अध्ययन का लाभ नहीं उठा सका, किन्तु Logically (तार्किक) ढंग से कहना पड़ता है कि मृग और गाय आदि प्राणी जो तृण भक्षण से अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे यदि मांस भक्षण से विमुख बनें तो उस में विशेषता ही क्या? तत्त्व तो वहां है कि सिंह का बच्चा मांस भक्षण का विरोध करे। उनके कहने का आशय यह था कि धन, कांचन, ऋद्धि, सिद्धि और ऐश्वर्य के झूले में झूलता हुआ और खूनी संस्कृति के भरे हुए क्षत्रिय कुल के वातावरण में चमकती हुई तलवार के तेज में तल्लीन बालक कुल परम्परा की कुलदेवी के समान खूनी खंजर के विरुद्ध महान आंदोलन करने के लिये सारी राजसीय ऋद्धि, सिद्धि एवं सम्पत्ति को मिट्टी के समान मान कर और भोग को रोग तुल्य समझकर त्याग करता हुआ योग की भूमिका में खूनी वातावरण को शांतिमय बनाने के लिये वनखंड और पर्वतों की कन्दराओं में निस्पृह बन कर सारा जीवन व्यतीत करे। मात्र दिनों तक ही नहीं किन्तु महीनों और वर्षों तक भूपति भूखपति बन कर भटकता फिरे। साढ़े बारह वर्ष की घोर संयम यात्रा में अंगुलियों पर गिने जाने वाले नाम मात्र दिनों में रूखे सूखे टुकड़ो से पारणे करे और सारा काल अहिंसा के आदर्श सिद्धान्तों को पालन करने में निमग्न रहे। उन की यह घोर तपस्या संयम आदि अमूल्य जीवन यात्रा के परदे में बड़ा भारी रहस्य था जिसमें मात्र मानव समाज का ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के श्रेय का लक्ष्य था।" इन का यह तार्किक अनुमान बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है। दया के परम्परागत संस्कारों वाले कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति दया का पालन और उस की पुष्टि के लिये बातें करे तो स्वाभाविक है तथा भोग सामग्री के अभाव में वैराग्य के वातावरण का असर अनेकों पर संभव है। किन्तु राजकुल की ऋद्धि और ऐश्वर्य के सागर में से बाहर कूद कर त्यागभूमि में आने वाले तो कोई आलोकिक व्यक्ति ही नजर आते हैं।

जो उन्होंने उपसर्ग और परिषह सहन किये उन की कथनी करते हुए यह कायर हृदय कांपता है। धन्य है उस महावीर को जिस के हृदय में मित्रों के श्रेय से भी शत्रुओं के स्नेह का स्थान प्रथम था। उस महाभाग की क्या बात करें। गौशालिक के, चंडकौषिक के, ग्वाले के, शूलपाणि के, तथा संगम आदि के

उनके घोरातिघोर उपसर्गों में मेरु की तरह धीर और सागर की तरह गभीर बनकर अटवियों में, पर्वतों की कन्दराओं में गरजते हुए सिंह, चीते, भालू आदि भयंकर प्राणियों के बीच में, वर्षा ऋतु का घनघोर घटाच्छादित अमावस्या की अंधेरी रात्रि में चमकती हुई बिजली के उद्योत में फां-फूं करते हुए विषधर, मणिधर के बीच में और मृतक श्मशान भूमि पर जलते हुए कलेवरों को भक्षण करते हुए भूत-प्रेतयोनि के यक्षों और राक्षसों के बीच में ज्ञान-ध्यान की अस्खलित धारा में आरूढ़ होकर पवित्र भावनाओं द्वारा भवटवी में भयंकर ताप से पीड़ित प्राणियों को अपनी प्रशांत मुद्रा का जो प्रशम रस रूपी सुधारस पिला कर शांति पहुंचा रहा था। उस महान अवधूत योगी के चरणारविन्द में शिरसा वन्दन के सिवाय और क्या कहूं।

आचार्य श्री हेमचन्द्र उस कारुण्य हृदय का चित्र-चित्रण करते हुए कहते हैं

कृतापराधेऽपि जने कृपामंथर तारयोः।
ईषद वाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्री वीरजिननेत्रयोः।।१।।

छह महीनों तक घोरातिघोर प्राणान्त कष्ट देने वाले संगम नामक दानव के श्रेय की करुणा से अश्रुधारा बहाने वाले हे योगी! तेरे दया रूप महासागर का माप कैसे दर्शाऊं, तेरी अकल-कला के सामने मेरी काव्य कला क्या काम आ सकती है? कहने का आशय यह है कि जितना भी इस महापुरुष के जीवन पर कहें कम है। शास्त्र में कहा है कि आप एक क्षमा में ही वीर नहीं थे– किन्तु दानवीर, दयावीर, शीलवीर, त्यागवीर, तपवीर, धीरवीर, कर्मवीर, ज्ञानवीर, और चरित्रवीर आदि सर्वगुणों में शिरोमणि होने से उनका वर्धमान नाम गौन होकर महावीर के नाम से प्रख्यात हुआ– यानि जन्म नाम वर्धमान था, परन्तु वीरता के क्षेत्र में अतुलनीय, अद्वितीय तथा अनुपम होने से गुणाश्रित नाम महावीर पड़ा। जब वे अपनी आत्मा को शुद्ध करके ईश्वरीय महाशक्तियों का आविर्भाव करके कैवल्य पद पर आरूढ़ हुए तब पहले-पहल वर्णाश्रम व्यवस्था केलिए अर्थात क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों को अपने-अपने कर्तव्यों का भान कराने के लिये समवसरण में विराजमान होकर अपना सत्य धर्म संदेश प्रकट किया था। उस समय मानव समाज की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी, इसलिए श्री महावीर प्रभु ने सर्वप्रथम अपने तप, तेज और ज्ञान के प्रभाव से ब्राह्मण वर्ग के महारथी इन्द्रभूति, सुधर्मा आदि ४४११ ब्राह्मणों का हृदय पलटा किया, पशु बलिदान की मनोवृति को निवृत्त करके स्वइन्द्रियदमन तथा विश्व के प्राणीमात्र से मैत्री, कारुण्य आदि भावना का गुरुमंत्र पढ़ा कर

अनासक्ति रूप मुनि दीक्षा धर्म में अधिष्ठित किया। उन के (Fandament teacings) इस अमूल्य उपदेश का मौलिक रहस्य इस प्रकार था-

सव्वे पाणा-पिया उ आ दुक्ख पडिकूला अप्पिय वहा।
पिय जीवीणो जीवीउ कामा सव्वेसिं जीवियं पियं
"नातिवाएज्जे किंचणं।" (तम्हा)

सारांश यह है कि- प्राणी मात्र को प्राण प्रिय हैं, इसलिए किसी को दुःख मत दो-यानि किसी के जीवन के अधिकारों पर प्रत्याघात न करो। सब सुखपूर्वक जिओ और सब को जीने दो। (Live and let live) क्योंकि विश्व रचना का नैसर्गिक विधान ही ऐसा है कि बीजानुसार ही फलोत्पत्ति होती है। आम की गुठली से आम और नीम के बीज से नीम की उत्पत्ति होती है। इसी तरह दुःख से दुःख प्राप्त होता है। अतः जहां तक तुम दूसरों के लिये जितने-जितने अंशों में दुःख के कारण-भूत होते हो उतने-उतने अंश में तुम्हे भी दुःख भोगना ही पड़ेगा। भगवान महावीर के इस अनुपम उपदेश को एक पाश्चिमात्य तत्ववेत्ता ने इन सुन्दर शब्दों में प्रकट किया है कि- "जब तक तू दूसरों को दुःख देना चाहता है तब तक दुःख मुक्त होने की आशा में सुख के स्वप्न देखना निरर्थक है।" भगवान महावीर का अटल आत्मविश्वास था कि अपने सुख और दुःख का कारण स्वयं आत्मा ही है। वही अपना शत्रु और मित्र है। वही अपना स्वर्ग-नरक है। जन्म-मरण का हेतु भी स्वयं ही है। बन्ध मोक्ष का कारण भी स्वयं है। इसलिये अन्य किसी को दोष देना अज्ञान है। हिंसा, मैथुन, परिग्रह आदि में आसक्त होने से आत्मा का महापतन होता है और अहिंसा, संयम, तप आदि से उस का उत्थान है। यही उत्कृष्ठ धर्म है। कहा भी है कि--

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मो सया मणो।।" १।।

अहिंसा, संयम, तप रूप उतकृष्ट धर्माराधन से आत्मा देवाधिदेव तीर्थंकर बन सकता है। रंक से राव बन सकता है तथा प्राणीमात्र का पूजनीय बन सकता है। इसलिये कुल जाति आदि के अभिमान का किसी भी प्राणी के प्रति ग्लानि तथा घृणा करना अनुचित है। प्रत्येक प्राणी शिष्ट पदारूढ हो सकता है, प्रत्येक सच्चरित्र आत्मा केलिये धर्म और भक्ति के द्वार खुले हैं, अंध श्रद्धा में मुक्ति नहीं है। मुक्ति है तत्व चिंतन और परिशीलन में। हिताहित, सत्यासत्य, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय, कृत्याकृत्य और धर्माधर्म इत्यादि सब का विवेक पूर्वक निर्णय करो।

निकर्ष-च्छेदस्तापेभ्यः सुवर्णमिव पण्डितैः
परीक्ष्य-भिक्षो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात्।।१।।

अर्थात् जैसे सोने की परीक्षा करने केलिये कसौटी, छेदन और तपन करना बहुत जरूरी है। वैसे ही हे भिक्षुओ! तुम भी मेरे वचन को मात्र मेरी भक्तिवश नहीं अपितु परीक्षा करके मानो। प्रमाण, नय, निक्षेप और लक्षण ये तत्व परीक्षा के अमूल्य साधन हैं। इनका उपयोग यथार्थ रूप से करने केलिये मानव मात्र को प्रज्ञा और मेधा का विकास करना बहुत जरूरी है। क्योंकि मानवमेधावी और प्रज्ञा-प्रौढ़ है। पशुओं की भांति प्रज्ञामूढ़ नहीं है। तथा सब प्राणियों से मानव को विशेष प्रकार की नैसर्गिक सुविधाएं प्राप्त हैं। इस प्रज्ञा तथा मेधा के विकास द्वार को खोलकर यदि हित साधक नहीं तो पशु जन्म से मनुष्य जन्म की कोई विशेष महत्ता नहीं है। "**बाबा वाक्यं प्रमाणं**" मानने की मूढ़ता में मानव जन्म का कोई विशेष महत्व नहीं है। वस्तु को सम्यक् प्रकार से समझ कर हम संसार से घोरातिघोर दुःखों जैसे जन्म-मरण संताप, संयोग-वियोग, आधि-व्याधि का अन्त लाकर मुक्ति के शाश्वत सुखों को प्राप्त कर सकेंगे। मुक्ति ही हमारे जन्म-जन्मान्तरों की जीवन यात्रा का अंतिम विश्राम धाम है। किसी देश-राष्ट्र और जगत को जीत कर वश में करने वाला सच्चा विजेता नहीं है। किन्तु जिसने अपनी आत्मा को जीता है (Self conqueror) है वही सच्चा विजेता है।

प्रभु महावीर ने मुक्ति के सन्देश को ज़ोर-शोर से प्रजा को सुनाया। जिस के फलस्वरूप प्रजा को जीवन की बड़ी ही जागृति हुई तथा धर्म को वास्तविक महत्ता का दिग्दर्शन कराया। उसी के समर्थन में डा० रविन्द्रनाथ टैगोर ने सुन्दर शब्दों में कहा है कि भगवान महावीर ने डिंडिम नाद से उदघोषणा की कि धर्म अनादि निधन है, स्वतः सिद्ध है। वह मानव कल्पणा का ढकोसला नहीं है। इन्द्रीय दमन और संयम के यथार्थ पालन में वास्तविक मुक्ति उपलब्ध हो सकती है। केवल बाह्य आडम्बरों से कभी मुक्ति सिद्ध नहीं होती। आत्मा का अन्तरावलोकन और अन्तरशुद्धि के सरल हेतु हैं। इस लिये दैहिक भ्रांति में मानव का मानव के प्रति घृणा भाव होना भूल है। इस अमूल्य उपदेशामृत का प्रभाव आर्यवर्त की प्रजा पर इतना सुन्दर पड़ा कि धार्मिक विधान के व्यासपीठ पर क्षत्रिय अधिष्ठित हो गये। तथा प्रजा उन की आज्ञा पालन करने लगी। इस तरह से भगवान महावीर का उत्क्रान्तिवाद बड़ा प्रशंसनीय-आदरणीय बना।

इसी प्रकार उन का दर्शाया हुआ अहिंसावाद, कर्मवाद, तत्त्ववाद, स्याद्वाद, अपरिग्रहवाद, सृष्टिवाद, आत्मवाद, परमाणुवाद, विज्ञानवाद इत्यादि अनेक

विषय इतने गंभीर और विशाल हैं कि जिनका यथार्थ वर्णन करना मेरे जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति की शक्ति से बाहर है। वास्तव में ये सब विषय विश्व केलिए बहुत विधान-रूप और कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। इस के समर्थन में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। तथापि यहां पर लोकमान्य तिलक आदि जैसे एकाध देशनेता एवं ऐतिहासज्ञ के प्रमाण देना उचित होगा। उन्होंने औरएंटल कांफ्रेंस में कहा था कि "आज ब्राह्मणों की संस्कृति में जो अहिंसात्मक वृत्ति दृष्टिगत हो रही है वह सब जैनधर्म के प्रभाव से ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि भगवान महावीर ने इस अहिंसात्मक महान उद्धार का झंडा न उठाया होता तो आर्य संस्कृति नष्ट हो जाती।" डा. राधाविनोद पाल Ex Gudge International Tribunal for trying Japanese war criminals ने अपने अभिपराय में कहा था कि—

"विश्व-शांति संस्थापक सभा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जैनों को ही है। क्योंकि अहिंसा ही विश्वशांति का साम्राज्य स्थापित कर सकती है और उस अनोखी अहिंसा की भेंट जगत को जैनधर्म के निर्यामक तीर्थंकरों ने ही दी है। इसलिये विश्व-शांति की आवाज पार्श्वनाथ और महावीर के अनुयायियों के सिवाय दूसरा कौन कर सकता है।"

इसलिये आर्य संस्कृति के अन्तिम श्वास लेते समय संजीवनी-दाता भगवान महावीर ही थे। मानव संसार को मानवता का पाठ पढ़ाने वाले परमगुरु महावीर ही थे। बलिदान की जलती ज्वालाओं से नष्ट होते हुए उपकारी और उपयोगी पशुओं के प्राणदाता प्रभु महावीर ही थे। अनेक प्रकार के मत-भेदों से उत्पन्न होने वाले विग्रहों का स्याद्वाद शैली से समाधान कर सब को एक सूत्र में संगठित करने वाले सूत्रधार महामानव महावीर ही थे। पशुधन के ह्रास से कृषि ह्रास और उससे होने वाले अन्नसंकट और रोगभय से रक्षण करने वाले महाश्रमण भगवान महावीर ही थे। इस माया के मृगजाल की तृष्णा में तड़पते हुए प्राणियों को आत्मज्ञान का अमृतपान कराने वाले महातत्वज्ञ भगवान महावीर ही थे। सृष्टि के निर्माता की कल्पना में पुरुषार्थहीन बन बैठी रहने वाली प्रजा को अपने पुरुषार्थ-भरे कर्तव्य का भान कराने वाले मार्ग दर्शक महावीर ही थे। अनेक प्रकार की विडम्बनाओं से निराधार बने हुए आत्माओं केलिये सच्चे आधार स्तम्भ महावीर ही थे। उन गुणसागर का जितना भी वर्णन किया जावे उतना ही थोड़ा है।

उन्होंने सर्वसाधारण जनता को मानव संस्कृति विज्ञान (Science of Human culture) के विकास की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिये मंकिन

महातीर्थ का राजमार्ग (Royal Road) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र (Right Faith, Right knowledge and Right Conduct) रूप अपूर्व साधन द्वारा पद्धतिसर दर्शाया इसलिये वे तीर्थंकर कहलाये।

संसार में तीर्थंकर पद सर्वोत्कृष्ट, सर्वोपरि और सर्वपूज्य होने से उस काल में १. भौतिकवादी अजित केशकम्बली, २. नियतिवादी मंखलीपुत्र गोशालिक, ३. अक्रियावादी पूर्णकश्यप, ४. नित्य-पदार्थवादी प्रकुधकात्यायन, ५. क्षणिकवादी गौतम-बुद्ध, और ६. संशयवादी संजय-बेलट्ठीपुत्त आदि भिन्न भिन्न धर्मों के संस्थापक और संचालक अपने आप को तीर्थंकर कहलाने में उत्सुकता पूर्वक प्रतिस्पर्धा की दौड़धूप में व्यस्त थे।

अर्थात् उस समय मत प्रतिस्पर्धा (Religious rivaey) की दौड़ा-दौड़ थी। जैसे कि आज (Power and Popllarity) सत्ता और श्लाघा के लिये मच रही है। परन्तु कहावत है कि (All glitters is not gold) पीला सो सोना नहीं। कहा भी है कि- "**साधवो न हिं सर्वत्र चंदनं न वने-वने।**" तात्पर्य यह है कि श्रुति, युक्ति और अनुभूति द्वारा सुज्ञ और विज्ञजन (People of culture and common sence) केलिये सच्च और झूठ का निर्णय करना कोई कठिन विषय नहीं था और वैसे तो प्रभु महावीर के परम पवित्र प्रवचन का आधार मन:कल्पना और अनुमान की भूमि पर तो था ही नहीं। परन्तु उन के प्रवचनों में लोकालोक के मूलभूत **द्रव्य-गुण-पर्याय** के त्रिकालवर्ती भावों का दिग्दर्शन था। अथवा आधुनिक परिभाषा में कहा जाय तो उसमें विराट विश्व या अखिल ब्रह्माण्ड (whole cosmos) की विधि विहित घटनाएं (Natural phemomena) उनके द्वारा होती हुई व्यवस्था (organization) विधि का विधान और नियम (Low and order) का प्रतिपादन और प्रकाशन था और महातत्त्वभूत पदार्थों (substance order) का प्रतिपादन और प्रकाशन था। और महान तत्वभूत पदार्थों (Substance) के स्वभाव-विभाव की चित्र-विचित्र प्रक्रियामय चराचर विश्व (Universe) की अखंड नियमबद्ध रचनात्मक वैज्ञानिक ढंग (Scientific and systematic way) से विवेक कुशल व्यवस्था हो रही है। उस नैसर्गिक महासत्ता (The Government of Nature) के महाशासन का मूलाधार (Fulerum) रूप **उत्पाद व्यय ध्रौव्य** का तात्विक विवेचन था। आधुनिक महान् विज्ञानवेत्ता (Advanced Scientists) मेलर-व्हाईटहैड और कोल्डिंग आदि जितने प्रमाण में विश्व रचना सम्बन्धी

अधिकाधिक अध्ययन करते गये उतनें उतने प्रमाण में उनकी मान्यता भी इस विषय में दृढ़ होती गई। इस विषय में विशेष न कह कर सिर्फ डा. G. W. मेलर का अभिप्राय दर्शाता हूं

"The therem is usually considered the flower of the Machanical world the hightest and most genral theorem of Natural Science to which the thought of many centuries has led." उनके कहने का आशय यह है कि इस विश्व के सकल पदार्थ "**अत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक हैं।** आज तो पश्चिमात्य विचारकों का भी स्पष्ट कहना है कि "Science recognised no authority other than Nature विज्ञान विधि से विशेष किसी को प्रमाण नहीं मानता। इस लिये बुद्धिवाद के युग में प्रकृति से विशेष वैज्ञानिक प्रमाण क्या बतावें।

जैन शास्त्रों में तो स्पष्ट उल्लेख है कि अनादि काल से तीर्थंकर भगवन्तों ने अखिल ब्रह्माण्ड और ज्ञान का बीज '**उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य**' इस त्रिपदी रूप ही प्रकाशित किया है और भगवान महावीर जब सर्वज्ञ (Omnicient) पद पर पहुंचे अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बने तब उनके प्रधान शिष्य गणधर ने प्रश्न किया कि "**भंते किं तत्तं किं तत्तं?**" प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा- "**उत्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा।**" इस त्रिपदी द्वारा ही अपनी दिव्य ध्वनि का मंगलाचरण किया था। उन्होंने अपनी उत्पन्न सूक्ष्म दृष्टि से इस विश्व के स्वरूप का यथार्थ अवलोकन कर उपर्युक्त-सार्वभौमिक सत्य जगत के सामने प्रकाशित किया था। इस में किसी भी प्रकार से उसमें मत-कदाग्रह और दंभ नहीं था। यह उनकी वीतरागता का लक्षण था और तीर्थंकर होने का प्रबल प्रमाण था। तात्पर्य यह है कि जैसा पदार्थ विज्ञान का स्वरूप है, वैसा ही प्रतिपादन किया। विचारक और वैज्ञानिकवर्ग अपनी मर्यादित मत्यानुसार संक्षेप अर्थ यह करते हैं कि "Permanence underlying change)"। यानि पदार्थ अपने स्वभाव (Characteristic) में कायम (नित्य(-ध्रौव्य) रहते हुए भी अनेक अवस्थाओं (पर्यायों-अत्पाद,व्यय) में परिवर्तित होता रहता है। वास्तव में तो इस महावाक्य का यथार्थ स्वरूप महाप्रभु के समान सर्वज्ञ पद पर पहुंचे तभी समझा जा सकता है। धर्म की व्याख्या करते हुए "**वत्थु सहावो धम्मो**" अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। इस एक छोटे से सूत्र में इतना गंभीर रहस्य भर दिया है। कि साधारण व्यक्ति इस की गंभीरता को समझने में असमर्थ हो जाता है। उन ध्यानवीर और ज्ञानगंभीर महानतत्वज्ञ प्रभु का हरेक सिद्धान्त अतिगहन,

सारगर्भित है। यही कारण था कि भगवान महावीर के उपदेश को जनता ने श्रद्धा पूर्वक अपना लिया था। सामान्य प्रजा तो क्या मगध नरेश श्रोणक, अंगदेश नरेश अजातशत्रु, वीत्तभयपत्तन नरेश उदायन, दशार्णदेश नरेश दशार्णभद्र, विदेह गणतंत्र के महाराजा चेटक, कोशल तथा मल्ल देशों के १८ शासक एवं अनेक राजा-महाराजा-सम्राट भगवान महावीर के अनुयायी बने। कितने ही दिग्गज विद्वान इन्द्रभूति आदि दीक्षा ग्रहण कर निर्ग्रंथ मुनि शिष्य बने। पायथोगोरस (Pythogoras) ई. पू. ५३२ जैसे यूनानी तत्ववेता ने भी पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को प्रभु महावीर की शैली से ही स्वीकार किया था। उनका उपदेश समुद्र पार के यूनान, मिश्र, चीन, टर्की, तक भी पहुंचा था और वहां के विदेशी युवराज आर्दरकुमार ने भी यहां आकर दीक्षा ग्रहण की थी। अनेक राजकुमारों, राजकन्याओं, राजरानियों, राजाओं ने भी मुनि दीक्षायें ग्रहण कीं। कहने का आशय यह है कि प्रभु महावीर की संस्कृति दिगान्तव्यापी बनी।

उनके तत्त्वदर्शन के अनेक गहन विषयों में पंचास्तिकाय, सप्तनय, सप्तभंगी अनेकांत, अष्टकर्म, नवतत्व, षडदर्शन आदि मुख्य थे। जिनका शास्त्रों में अति सूक्ष्मता से वर्णन है।" उन्हें समझना बड़े कुशाग्र बुद्धियों का काम है। ऐसा कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि उन का पदार्थ विज्ञान परमाणुवाद आधुनिक विज्ञान के (Atomic and molecular theories) अणुवाद की मान्यता से तो क्या परन्तु डा. ऐन्स्टीन, एडींग्टन स्पेनर, ड्रेटन और न्यूटन की मान्यताओं (Theories) को भी मात करते हैं। यदि निष्पक्ष भारतीय विद्वान भगवान महावीर के तत्वज्ञान की प्रशंसा करें तो आश्चर्य ही क्या है। किन्तु पाश्चिमात्य विद्वान डा. हर्मनयकोबी, डा. हर्टल, डा. वींटरनीज, डा. थोमस, डा. हेल्मेथ, डा. बोनग्रेजनप, डा. टेसेटेरी आदि ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यथा–

१. जर्मन विद्वान डा. हर्टल लिखता है

जैनों का महान संस्कृत साहित्य यदि अलग कर दिया जाय तो मैं नहीं कह सकता कि संस्कृत साहित्य की क्या दशा हो। जैसे-जैसे मैं इस साहित्य को विशेष रूप से जानता जाता हूं वैसे-वैसे मेरा आनन्द बढ़ता जाता है। इसे विशेष रूप से मेरी जानने की इच्छा बलियसी हो जाती है।

२. जर्मन विद्वान डा. हर्मन येकोबी कहता है

अन्त में मुझे अपना निश्चय विचार प्रकट करने दो। मैं कहूंगा कि जैनधर्म के सिद्धान्त-मूल सिद्धान्त हैं। यह धर्म स्वतंत्र, अन्य धर्मों से सर्वथा भिन्न है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान का और धार्मिक जीवन का अभ्यास करने केलिये यह बहुत उपयोगी और उत्तम है।

आज के विश्व को यदि वास्तविक स्थाई शांति प्राप्त करने की इच्छा है तो प्रभु महावीर के विश्व कल्याणकारी इन अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह आदि शिक्षाओं के प्रचार एवं पालन करने केलिए प्रत्येक व्यक्ति को कटिबद्ध हो जाना चाहिए। इस से आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आदि सकल समस्याएं शांतिपूर्वक हल होकर प्रजा शांति-सुख का सांस लेगी।

भगवान महावीर का निर्वाण

भगवान महावीर का निर्वाण ई. पू. ५२७ कार्तिक अमावस्या को रात्रि के समय मगध जनपद में राजगृही के निकट मध्य पावानगरी में हुआ। उस रात्रि को देवों और मनुष्यों ने मिल कर दीपावली के रूप में उत्सव मनाया था। तदानुसार आज तक कार्तिक अमावस्या को सर्वत्र बड़े उत्साह से दीवाली पर्व मनाया जाता है। कार्तिक की दीवाली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन महावीर निर्वाण संवत का प्रारंभ होता है। उसी दिन भगवान महावीर के मुख्य शिष्य गणधर इन्द्रभूति गौतम को पावानगरी के निकट गुणाया जी में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। भगवान महावीर के ११ गणधरों में से ९ गणधरों का निर्वाण भगवान के जीवनकाल में ही राजगृही के विभारगिरि (पर्वत) पर हो गया था। भगवान के निर्वाण के बाद इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मा स्वामी दोनों गणधर विद्यमान थे। भगवान के निर्वाण के तुरन्त बाद गौतम को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अतः भगवान के चतुर्विध संघकी व्यवस्था पांचवें गणधर सुधर्मा उस समय छद्मस्थ थे। इसलिये उन्होंने संभाली। आज भी श्वेताम्बर जैन (मूर्तिपूजक) संघ परंपरा सुधर्मास्वामी के निर्ग्रंथ गच्छ (गण) से संबंधित चली आ रही है। और मानी भी जाती है। पश्चात् गौतमस्वामी तथा सुधर्मास्वामी ने (केवली हो कर) क्रमशः राजगृह ही विभारगिरि पर ही निर्वाण प्राप्त किया। सुधर्मास्वामी के बाद उनके शिष्य पट्टधर जम्बूस्वामी हुए। भगवान के बाद गौतम, सुधर्मा और जम्बू ये तीनों केवली होकर निर्वाण पाये।"॥

26
सिद्ध शिला

जल मन्दिर का निकट दृश्य — पावापुरी।
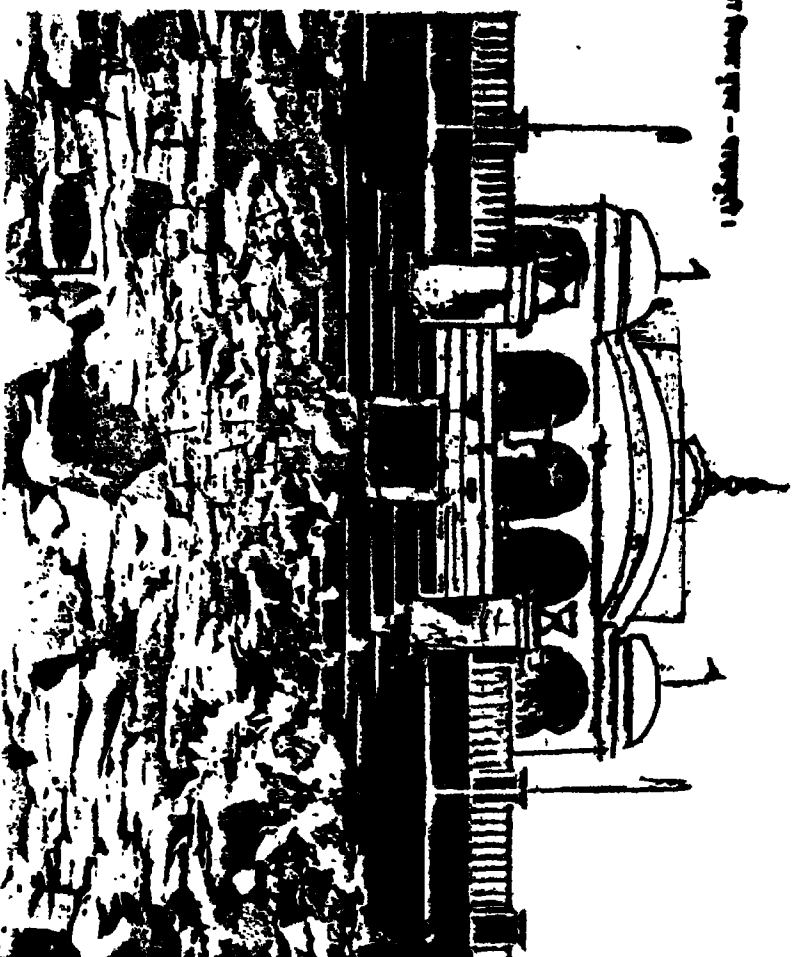
भगवान महावीर के पार्थिव शरीर के दाहसंस्कारके- स्थान पर निर्मित जलमंदिर पावापुरी

भगवान महावीर का चतुर्विध संघ परिवार

भगवान महावीर के निर्वाण के समय इन्द्रभूति गौतम आदि १४००० उत्कृष्ट साधु थे। चन्दनबाला आदि ३६००० उत्कृष्ट साध्वियां थीं। शंख शतक आदि १५९००० उत्कृष्ट श्रावकों की संख्या थी। सुलसा आदि ३१८००० उत्कृष्ट श्राविकाओं की संख्या थी। ३०० चौदह पूर्वधारी मुनि थे। अतिशयलब्धि-धारी उत्कृष्ट अवधिज्ञानी १३०० मुनि थे। ७०० केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट संख्या थी। उत्कृष्ट ७०० वैक्रिय-लब्धि वाले मुनियों की संख्या थी। ७०० उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्यव ज्ञानियों की संख्या थी। ४०० उत्कृष्ट वादियों की संख्या थी। ७०० मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। १४०० साध्वियों ने मोक्ष प्राप्त किया। प्रभु के ८०० मुनि अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए जो आगामी जन्म में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस प्रकार भगवान महावीर ३० वर्ष गृहस्थावस्था में रहे। साढ़े बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में मुनिधर्म पाल कर बाद में केवलज्ञान प्राप्त किया। कुछ काल कम ३० वर्ष केवली पर्याय में रह कर समुच्चय ४२ वर्ष तक चरित्र पाल कर ७२ वर्ष आयु व्यतीत कर सर्वकर्मों को क्षय कर जन्म, जरा, मृत्यु से सदा केलिय रहित होकर चौविहार छठ (दो उपवास) के तप के साथ पद्मासन में शैलेशीकरण में बैठे हुए ५२७ ई. पू. कार्तिक अमावस को पावा में निर्वाण पाये।

ज्योतिषशास्त्र और वर्धमान महावीर

जैन परम्परा के मान्य २४ तीर्थकरों में से २२ तीर्थंकर सूर्य वंशीय क्षत्रिय राजघरानों मे हुए हैं और शेष २ चन्द्रवंश के क्षत्रिय राजघरानों में हुए हैं।

महावीर स्वामी ने अपने पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरों के उपदेशों का अवगुंठन करके और समयानुकूल संशोधन करके जैन विचार-धारा को ऐतिहासिक महत्व दिया था। आप शाक्य मुनि गौतम के समकालीन थे। जैन परम्परा में जिसे श्वेतांबर साहित्य कहा जाता है उस में महावीर स्वामी के जीवन संबंध में दिगम्बर साहित्य की अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक सामग्री है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इन के कोई भाई-बहन, पत्नी, सन्तान, चाचा आदि नहीं थे। श्वेतांबर परंपरा इनके पारिवारिक ऐतिहासिक तथ्यों को छिपाती नहीं है बल्कि स्वीकार करती है। क्योंकि पारिवारिक स्थितियों में महावीर की महानता में कोई अन्तर नहीं आता। आपकी पारिवारिक स्थिति इस प्रकार है—

१. **पिता**— मगध जनपद में क्षत्रियकुंडपुर के नरेश काश्यपगोत्रीय। ज्ञातृवंश के ईक्ष्वाकुकुल के क्षत्रिय **सिद्धार्थ** थे।

२. **माता**— विदेह जनपद के वैशाली नरेश सूर्यवंशीय वाशिष्ट गोत्रीय लिच्छिवी-कुल के महाराजा चेटक की बहन **त्रिशला** थी।

३. **पत्नी**— कोडिन्न गोत्रीय क्षत्रिय समरवीर अपरनाम नरवीर कलिंगदेश के महासामंत की पुत्री **यशोदा** थी।

४. **पुत्री**— **अनवद्या** अपरनाम **प्रियदर्शना** जो कोशिक गोत्रीय क्षत्रिय राजपुत्र **जमाली** को ब्याही थी। यह भगवान महावीर का भानजा था।

५. **जमाता** (दामाद) कौशिक गोत्रीय राजपूत **जमाली**। भगवान महावीर की बड़ी बहन का पुत्र था।

६. **दोहित्री**— महावीर स्वामी की पुत्री प्रियदर्शना की बेटी थी। जिस का नाम **यशस्वती** अपरनाम **शेषवती** था।

७. **बड़े भाई नन्दिवर्धन** थे। जो अपने पिता राजा सिद्धार्थ के देहावसान के बाद उनके जानशीन क्षत्रिय कुंडपुर के राजा हुए। ८ से १२ **अन्य कुटुम्बी**।

८. चाचा सुपार्श्व ९. भुआ यशोधरा १०. मामा चेटक ११. बहन सुदर्शना। १२. **भाभी** (भोजाई) बड़े भाई नन्दीवर्धन की भार्या **ज्येष्ठा** चेटक की पुत्री थी।

यों तो बाल्यावस्था से ही आप का रुझान क्षत्रियोचित कर्मों की बजाय वैराग्य की तरफ अधिक था। लेकिन माता-पिता के निधन के बाद भाई-भाभी के बहुत रोकने पर भी आप ने २८ वर्ष की अवस्था में वैराग्य ले लिया और ३० वर्ष की अवस्था में आप ने गृह को त्याग दिया। अब इन महान विभूति की जीवनी को **ज्योतिष शास्त्र** के अनुसार देखें कि आप की **जन्म कुण्डली** के अनुसार आपका जीवन वृतांत कैसा है।

जन्म- जैन वांङमय में उल्लेख है कि वि. पू. ५४३ (ई. पू. ६००) आषाढ़ शुक्ला छह को भगवान महावीर गर्भ में आये। यह माना जाता है कि पहले आप कुंडपुर के ब्राह्मणकुंड नगर में देवानन्दा नामक ब्राह्मणी के गर्भ में अवतरित हुए किन्तु माता देवानन्दा एक अवतारी जीव का गर्भ वहन नहीं कर पा रही थी। इसलिये इन्द्र ने अपने देवदूत द्वारा आपके भ्रूण को क्षत्रियाणी महारानी त्रिशला देवी की कोख में परिवर्तित करवा दिया। क्योंकि सभी अवतरित विभूतियां राजरानी क्षत्रियाणी की कोख से ही जन्म लेती हैं।

वि. पू. ५४२ (ई. पू. ५९९) में ग्रीष्म ऋतु के चैत्रमास की शुक्ला १३ के दिन पूरे नौ महीने सात दिन बारह घंटों के पूर्ण होने पर जब कि नक्षत्र अपनी उच्च स्थितियों को प्राप्त थे। प्रथम चन्द्र योग से दिशाओं के समूह जब निर्मल थे। अंधकार हीन और ज्योतिष विशुद्ध काल था, सारे शकुन शुभ थे। अनुकूल दक्षिण पवन भूमि को स्पर्श कर रहा था। भूमि धान्य से परिपूर्ण थी। सारे प्राणी और मनुष्य प्रमुदित और क्रीड़ा लीन थे। उस समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के चौथे चरण में आधी रात में मगध जनपद में क्षत्रियकुंडपुर में ईक्ष्वाकु कुलभूषण रघुकुल-नन्दन, सूर्यवंशमणि, ज्ञातृवंश-दीपक, सिद्धार्थ के कुमार, प्रियकारिणी त्रिशाला देवी-नन्दन, नन्दीवर्धनानुज, सुदर्शना-सहोदर, क्षत्रियकुंड के राजकुमार के रूप में सन्मति वर्धमान-महावीर माता त्रिशाला देवी की दक्षिण कुक्षी से प्रसूत हुए। उस समय सूर्य की महादशा एवं शनि की अन्र्तदशा, बुद्ध का प्रत्यन्तर चल रहा था।

उन के जन्म काल में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का बड़ा महत्व है। आपका गर्भावतरण, गर्भ-प्रत्यावर्तन, जन्म, गृहत्याग (दीक्षा) केवलज्ञान प्राप्ति नामक पांचों घटनाएं उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही संगठित हुई थीं। इस जातक का जन्म क्योंकि शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को है, इसलिये जातक का गेहुआं (स्वर्ण जैसा पीला) रंग होना चाहिए।

तीर्थंकर वर्धमान महावीर की जन्मकुंडली
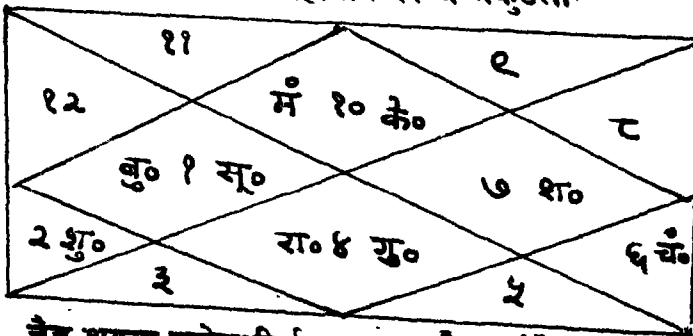
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी ई. पू. ५९९ वि. पू. ५४२

नव ग्रह अनुसार विवेचन - १. मंगल— क्योंकि उच्च का मकर राशि का है इसलिये जातक ख्यातिप्राप्त, पराक्रमी, नेता, ऐश्वर्यशाली एवं महत्वाकांक्षी होता है। साथ ही राजसी चिन्हों यथा प्रलम्बबाहु, सुदृढ़ स्कन्ध द्वय, विशाल वक्ष स्थल, उन्नत ललाट तथा कान्तिमय मुखमंडल से युक्त होता है।

२. सूर्य— उच्च तथा मेष राशि का है। अतः जातक आत्मबली, स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी, गंभीर, तथा उदार-वृत्ति वाला होता है।

३. बृहस्पति— क्योंकि उच्च का और कर्क राशि का है इसलिये ऐसा जातक सदाचारी, विद्वान, सत्यवक्ता, महायशस्वी, समदृष्टि, सुधारक, योगी, लोकमान्य और नेतृत्व करने वाला होता है। मुखमंडल आभायुक्त, तेजोमय एवं प्रभावोत्पादक होता है।

४. शुक्र— क्योंकि स्वग्रही और पंचमभाव में है और वृष का है अतः जातक सुंदर, ऐश्वर्यशाली, दानी तथा सात्विक वृत्तिवाला होता है। साथ ही परोपकारी, अनेक शास्त्रों का ज्ञाता, त्याग भावना वाला, संगीत प्रेमी और भाग्यवान् होता है। यह जातक स्वतंत्र प्रकृति का विचारक होता है।

५. शनि— क्योंकि उच्च क्षेत्रीय होकर दशमगृह में बैठा है अतः यह जातक सुभाषी, नेतृत्व प्रदान करने में समर्थ, उन्नतिशील, यशस्वी होता है। ऐसा जातक जागीदारों का राजा होता है।

६. राहु— क्योंकि कर्क राशि का है। अतः यह जातक उदार एवं इन्द्रीय-निग्रही होता है। दाम्पत्य जीवन को अल्पकाल तक भोगता है।

७. केतु— क्योंकि मकर राशि का है इसलिये जातक प्रवासी, परिश्रमी, पराक्रमी, तेजस्वी और मोक्षमार्गी होता है।

८. बुद्ध— क्योंकि मेष राशि का है, फलतः ऐसा जातक इकहरे लेकिन सुगठित अंगों वाला, सत्यवक्ता, समृद्ध, सम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली होता है।

९. चन्द्र— क्योंकि कन्या राशि का होकर नवम स्थान पर बैठा है अतः यह जातक अल्प संतति वाला, दानी स्वभाव वाला, गंभीर प्रकृत्ति का तथा सुदृढ़ देह-यष्ठिवाला, धार्मिक वृत्ति का होता है।

द्वादश गृहों का विवेचन

प्रथम गृह— मंगल के कारण गर्भकाल में किसी गड़बड़ी (गर्भ परावर्तन) की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। मंगल और केतु की युति के फलस्वरूप परोपकारी, मोक्षमार्ग प्रदर्शक होता है। मंगल उच्चराशी का है इसलिये जातक रजोगुण नाशक तथा भ्रमणशील होता है, ख्यातिप्राप्त नेता होता है। केतु के प्रभाव से विश्ववंद्य, परमपूज्य, बुद्धि व भाग्य की खान होता है। जिस के दर्शानार्थ लोग चल कर आयें ऐसा नामवर बुलन्द-मर्तबा होता है। जती-सती एकांतप्रिय होता है।

द्वितीय गृह— धनेश क्योंकि तुला राशि का होकर दशम स्थान कार्यक्षेत्र में जा बैठा है, राजकुलोत्पन्न हो कर भी क्योंकि शनि उच्च का तुला राशि का है। अतः इससे जातक का राज्ययोग दीख पड़ रहा है। मतलब यह है कि ऐसा जातक राजघराने में जन्म लेकर भी राजसत्ता का उपयोग नहीं कर सकता।

तृतीय गृह— बृहस्पति तीसरे स्थान का स्वामी होकर भी क्योंकि दशम स्थान में उच्चक्षेत्री होकर बैठा है और अपने घर को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। इसलिये इस जातक का मान-सम्मान अक्षुण्ण रहता है। यह व्यक्ति अपने क्षेत्र में सूर्य के समान चमकता है।

तीसरे स्थान का स्वामी गुरु उच्च राशि का होकर केन्द्र में स्थित है। इस के हिसाब से चार बहिन-भाइयों के योग बन रहे हैं। लेकिन राहु का संयोग होने से **एक बहिन व एक भाई ही होंगे**। बहिन का योग इस लिये बन रहा है कि चंद्रमा की तृतीय भाव पर पूर्ण दृष्टि है और ११वें स्थान का स्वामी मंगल लग्न में बैठा है ऐसी हालत में इस जातक के सहोदर या सहोदरा अग्रज ही हो सकते हैं कनिष्ठ नहीं।

चतुर्थ गृह— उच्च का सूर्य मेष राशि का है साथ ही बुद्ध का संयोग भी है तथा मंगल की पूर्ण दृष्टि है। ऐसा जातक स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी, उदारवृत्ति वाला, गंभीर प्रकृति का तथा स्वावलंबी व्यक्ति होता है। सूर्य व बुद्ध की युति के परिणामस्वरूप ऐसा जातक विचारवान, संशोधक तथा सुभाषी विद्वान होता है।

पंचम गृह— पंचम स्थान में वृष राशि शुक्र के स्वगृही होने के कारण इस ऐश्वर्यशाली, सुदर्शन, सात्विक वृत्तिक, सदाचारी जातक की बुद्धि में वैराग्यभाव अबोधावस्था पार करते ही आजाना चाहिए। इस जातक ने स्वजनों के सांसारिक मोहपाश से स्वयं को निस्पृह रखा होगा। यह जातक आचार्य (तीर्थंकर) पद को प्राप्त करने वाला होता है। बुद्ध राशि के होने से इस के उत्कर्ष-काल का प्रारंभ २८ वें वर्ष से होता है। (**घर में विरक्त अवस्था का प्रारंभ**)। पांचवें घर में क्योंकि शुक्र अपने घर का स्वामी बन बैठा है, अतः इस जातक के संतान के नाम पर केवल पुत्री ही होती है। (**प्रियदर्शना पुत्री**)। ऐसा जातक पुत्र सुख से विहीन होता है। "**सुतेश यस्य पंचमे पुत्र तस्य न जीवति**" (लोमश संहिता)।

षष्टम गृह— बुद्ध ग्रह क्योंकि नपुंसक है अतः इस जातक में काम क्रीड़ाओं, रति-क्रियाओं या प्रणय व्यापार के प्रति विशेष उत्साह नहीं होता। कामदेव की बजाय महादेव इस का आदर्श होता है। जातक का शत्रु पक्ष निर्बल होता है। इस का विरोध नगन्य होता है। किं-बहुना जातक अजातशत्रु होता है।

सप्तम गृह— राहु और बृहस्पति कर्क राशि में स्थित है इसलिये इनका परिणय-वय किशोरकाल ठहरता है। **(यशोदा पत्नी)**। इस इन्द्रिय निग्रही जातक के सातवें घर में राहु की स्थिति है तथा शनि की पूर्ण दृष्टि है इसलिये पत्नी त्याग का अवसर भी शीघ्र ही होकर यौवनावस्था में ज्ञान उपस्थित होता है। उच्च राशि का बृहस्पति तथा राहु की युति होने से जातक तमोगुणनाशक, शिक्षादाता, तामसी वृत्ति व इन्द्रिय सुखों का परित्याग करने व कराने वाला होता है।

अष्टमगृह— अष्टमेश सूर्य उच्च राशि का होकर चौथे घर में बैठा है अतः ऐसा जातक पर्याप्त आयु का भोगी होता है। अर्थात् पूरी आयु भोग कर स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त करता है।

नवमगृह— कन्या राशि का स्वामी बुद्ध चौथे स्थान में चला गया है। जिस के कारण जातक की धार्मिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है। साथ ही चन्द्रमा के क्षेत्र में राहु के बैठने से परम्परा से चली आ रही धार्मिक विचार धारा का विरोधी बनने के पूरे आसार है। **(यज्ञ-यागों में पशुबलि, वर्णवाद-जातिवाद आदि अनेक परम्पराओं का विरोध)**। गुरु उच्च का होने से राजकुलोत्पन्न, यह जातक अलंकार प्रिय होता है। चन्द्रमा धर्मस्थान में है अतः नीर-तीरे इनके जीवन की महान घटना घटने **(ऋजुकूला नदी के तट के समीप केवलज्ञान प्राप्ति)** के योग हैं।

दशमगृह— शनि उच्च का होकर राज्य-स्थान में विद्यमान है तथा सूर्य और बुद्ध उसे पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। इसलिये यहां एक तरफ राजयोग बन रहा है। वहीं तुला राशी का स्वामी बुद्ध शुक्र जो कर्मक्षेत्र का मालिक भी है। पंचम स्थान पर (जो बुद्धि का क्षेत्र है) चला गया है। फलतः राजयोग से विपरीत होना आवश्यम्भावी है। इसके परिणामस्वरूप ऐसा राजकुमार एक वैरागी सन्यासी होता है। ऐसे राजघराने के बालक का लालन-पालन धायों द्वारा होना बिल्कुल स्वाभाविक है।

एकादशं गृह— आय-स्थान का स्वामी मंगल लग्न में केतु के साथ उच्च क्षेत्रि होकर बैठा है। यह सम्पन्न जातक आय को परमार्थ में लगाने वाला होता है **(वर्षीदानदाता)** एकादश भाव पर उच्च क्षेत्री गुरु एवं होत्री शुक्र की पूर्ण दृष्टि है। इस जातक के इकबाल की बुलंदी जवानी से ही शुरू होती है। यह जातक एक नामवर हस्ती (महाभाग) होता है। बहुत ही कमाल का पहुंचा हुआ एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसको समाज का पूज्यवर्ग (ऋषि-महर्षि, ब्राह्मण वर्ग भी) मान-सम्मान दें।

द्वादश गृह— व्यय स्थान में धनुराशि होने से तथा स्वामी वृहस्पति उच्च का होने से इस जातक द्वारा धार्मिक, परोपकारी एवं मांगलिक कार्यों में ही रुचि के योग हैं।

रोग— आयु के मध्यम काल में अतिसार या रक्त पित्त से रोग संभव है। **(गोशालक का तेजोलश्या इन पर छोड़ने से रक्त-पित्त अतिसार रोग)।**

निर्वाण— जब शनि की महादशा में वृहस्पति का अन्तर हो और आयु ७२ वर्ष में चल रही हो तब मारकेश लगता है **(निर्वाण होगा)**

जिस दिन महावीर स्वामी ने निर्वाण लाभ किया, उस दिन कार्तिक की अमावस्या की रात में स्वाति नक्षत्र चल रहा था आपके जीवन का ७२ वर्ष गुजर रहा था। यह पावापुरी की भूमि थी ४७० वि. पू. (५२७ ई. पू.) में पृथ्वी की ज्वाज्वल्यमान ज्योति, ब्रह्मांड की परमज्योति का एक अभिन्न अंश बन गयी इस प्रकार सन्मति महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए।[12]

द्वादश गृहों के अनुसार प्रभु महावीर के जीवन की मुख्य घटनाएं

१. **प्रथम गृह**— में भगवान महावीर का गर्भ-परावर्तन हुआ।

२. **तृतीय गृह**— भगवान महावीर का एक बड़ा भाई नन्दीवर्धन तथा एक बड़ी बहन सुदर्शना थे।

पंचम गृह— विरक्त अवस्था का प्रारंभ, पुत्री प्रियदर्शना थी।

सप्तम गृह— यशोदा पत्नी थी इस से पुत्री प्रियदर्शना का जन्म हुआ। पाश्चात् पत्नी त्याग का अवसर भी शीघ्र आ गया।

५. **नवम गृह**— धार्मिक परम्परा में विकृतियों का खुलकर विरोध। नदीतीर पर केवलज्ञानोत्पत्ति।

६. **एकादश गृह**— वर्षीदान में धन का उपयोग

७. **रोग**— गोशालक ने इन पर तेजोलेशिया छोड़ी- परिणाम स्वरूप रक्त-पित्त अतिसार रोग का होना।[13]

२

भगवान महावीर का जन्मस्थान क्षत्रियकुंड

जैनधर्म के चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म ई. पू. ५९९ (वि. पू. ५४२) चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मगध जनपद के कुंडग्राम (कुण्डग्राम) में हुआ था। इसकी पुष्टि प्राचीन जैनागम आचारांग, कल्पसूत्र आदि अनेक आगम-शास्त्र करते हैं एवं अनेकानेक यात्री-यात्रीसंघ यात्रा करने केलिये प्राचीनकाल से आज तक वहां आते-जाते रहते हैं। इसकी पुष्टि में हम आगे विस्तार से लिखेंगे। कुंडग्राम दो भागों में विभाजित था। १. क्षत्रियकुंडग्राम और २. ब्राह्मणकुंडग्राम। कुछ वर्ष पहले तक तो उपर्युक्त क्षत्रियकुंड को ही भगवान महावीर के च्यवन (गर्भावतरण), जन्म, दीक्षा, तीन कल्याणकों की भूमि निर्विवाद रूप से मान्य थी। परन्तु पाश्चात्य अन्वेषकों ने जब बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) की खोज की और भगवान महावीर केलिये प्रयुक्त- **वैशालिक विदेहदिन्ना, विदेहदिन्न, विदेहजच्चा** आदि शब्द पढ़ने से उन विद्वानों ने यह धारणा बना ली कि भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली ही है और उसके एक मुहल्ले को ही कुंडग्राम मान लिया। इन का समर्थन कुछ भारतीय विद्वानों ने भी कर डाला। दिगम्बर साहित्य ने कुंडपुर के स्थान पर कुंडलपुर माना और नालंदा के निकटवर्ती बड़गांव को ही कुंडलपुर मानकर वहां भगवान महावीर के दिगम्बर मन्दिर स्थापित करदिये। इसलिये क्षत्रियकुंड स्थान कहां पर है? कई वर्षों से ऐसा प्रश्न उठ खड़ा हुआ। अतः क्षत्रियकुंड केलिये इस समय तीन मान्यताएं प्रचलित हैं। १. प्राचीन मान्यता मगध जनपद में लिच्छुआड (जमुई) के निकट क्षत्रियकुंड को भगवान महावीर के जन्मस्थान की है।

२. दिगम्बर-पंथ मगध जनपद में नालंदा के निकट बड़गांव को कुंडलपुर मानकर भगवान महावीर का जन्मस्थान मानता है।

३. आधुनिक कुछ पाश्चिमात्य एवं भारतीय विद्वान क्षत्रियकुंड को विदेह जनपद की राजधानी वैशाली का एक मोहल्ला मानते हैं। ऐसा मानते हुए भी इस मुहल्ले के लिये इन का एक मत नहीं है।

कुछ पाश्चिमात्य विदेशी विद्वानों की मान्यताएं

क्षत्रियकुंड कहां पर है? इस केलिये कुछ आधुनिक पाश्चिमात्य संशोधकों का मत है कि विदेह जनपद में वैशाली नगरी वर्त्तमान काल में जिसका नाम बसाढ़ है वह अथवा उसका एक मुहल्ला यही वास्तव में क्षत्रियकुंड भगवान महावीर का जन्मस्थान है।

सर्वप्रथम जर्मन स्कालर डा. हरमन जैकोबी तथा जर्मन डा ए. एफ. आर हार्नले ने इन नयी मान्यताओं को जन्म दिया। पश्चात् उनका अनुकरण कुछ भारतीय विद्वानों ने भी किया। इस नये संशोधन के कारण यह मत बहुत विश्वासपात्र बन गया है। अब इसके विषय में जो उनके विचार और तर्क हैं प्रथम उन पर विचार करें।

डा. हार्मन जैकोबी ने (Secred books of the East) पूर्व देश की पवित्र पुस्तकें इस नाम की ग्रंथ माला के २२वें भाग में 'आचारांगसूत्र एवं कल्पसूत्र' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि—[14]

"महावीर कुंडपुर के राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। कुंडपुरग्राम को जैन बड़ा नगर और सिद्धार्थ को प्रतापी राजा मानते हैं। ये वर्णन अतिशयपूर्ण है। आचारांगसूत्र में कुंडग्राम को सन्निवेश बतलाया है। टीकाकार ने सन्निवेश का अर्थ यात्रियों का स्थान माना है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह सामान्य स्थान होगा। आचारांग सूत्र से ज्ञात होता है कि कुंडग्राम विदेह जनपद में था। बौद्धग्रंथ महावग्ग ने लिखा है कि गौतमबुद्ध जब कोटिग्राम पधारे तब वैशाली के लिच्छवी तथा आम्रपाली वैश्या उन्हें वन्दन करने आए थे। बुद्ध वहां से चल कर ज्ञातिकों के पक्के मकान में जाकर उतरे। आम्रपाली ने अपने निकट का अपना उद्यान बौद्धसंघ को भेंट किया। बुद्ध वहां से वैशाली गये, जहां जैनसिंह सेनापति को बौद्धधर्मी बनाया। इससे ये कोटिग्राम, कुंडग्राम और ज्ञातिकवासी ज्ञात-क्षत्रिय लगते है। सिंह भी जैन था। इसलिये मान सकते हैं कि कुंडग्राम विदेह की राजधानी वैशाली का एक गांव अथवा मुहल्ला था। इसी कारण से सूत्रकृतांग में महावीर को वैशालिक कहा है। टीकाकार ने इसके अनेक अर्थ बतलाये हैं उनपर बहुत ध्यान देना उचित नहीं। वैशालीय का अर्थ वैशाली-निवासी होता है। क्योंकि कुंडग्राम वैशाली का एक मुहल्ला है इसलिये वैशालीक भगवान महावीर का वास्तविक नाम सिद्ध होता है। सिद्धार्थ राजा नहीं

था पर मात्र उमराव था। इसलिये अनेक जगह सिद्धार्थ और त्रिशला को क्षत्रिय और क्षत्रियानी कहा है। त्रिशला का देवी रूप में कहीं उल्लेख नहीं है, सिद्धार्थ जमींदार अथवा उमराव था। सत्ताधारी क्षत्रिय था। किन्तु राजघराने में लग्न होने से बड़ों केसाथ सम्बन्ध के कारण दूसरे सरदारों से अधिक लागवग वाला था। त्रिशला विदेह की राजकन्या थी, वह राजा चेटक की बहन थी। इसलिये वह विदेहा, विदेहदिन्ना के रूप में विख्यात थी। चेटक भी वैशाली का राजा नहीं था किन्तु वैशाली का शासक उमराव मंडल का नेता था। वह जैन था इसलिए बौद्धों ने इसका उल्लेख नहीं किया। मात्र इतना ही नहीं किन्तु राजा चेटक के कारण वैशाली जैनधर्म का मुख्य केन्द्र बन गया था। इसलिये बौद्धों ने वैशाली को पाखंडियों का एक मठरूप से वर्णन किया है।"

१. अतः डा. जैकोबी मानता है कि—

१. वैशाली का कोटिग्राम ही कुंडग्राम- क्षत्रियकुंड है।

२. यह कुडंग्राम महानगर नहीं था परन्तु यात्रियों का, सार्थवाहों का सामान्य विश्राम-स्थान था।

३. कोटिग्राम, कुंडग्राम और ञांतिक ये ग्राम ज्ञात क्षत्रियों के थे।

४. कुंडग्राम वैशाली का एक मुहल्ला अथवा ग्राम था जहां महावीर का जन्म हुआ था।

५. भगवान महावीर वैशाली के निवासी थे।

६. महावीर का पिता सिद्धार्थ राजा नहीं था। वह क्षत्रिय उमराव था।

७. त्रिशला का देवी के रूप में उल्लेख नहीं हुआ अतः वह रानी नहीं थी।

८. चेटक राजा नहीं था- वैशाली के उमरावमंडल का नेता था।

९. चेटक जैन था। उसके प्रभाव से वैशाली जैनधर्म का मुख्य केन्द्र बन गया था इसलिये बौद्धों ने राजा चेटक का उल्लेख नहीं किया। वे वैशाली को पाखंडियों का एक मठ कहा।

डा. हार्नले ने— चंडका प्राकृत व्याकरण और जैनों का उपासकदशांग सूत्र का अंग्रेजी अनुवाद किया है और जैन पट्टावलियां प्रकाशित की हैं। ई. स. १८९८ में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की वार्षिक सभा में प्रधानपद से उसने जो भाषण दिया था उसका सारांश यह है कि—

"महावीर जैनधर्म के प्रवर्तक हैं। उनका मूलनाम वर्धमान था। बौद्ध उन्हें नातपुत्त तथा ज्ञातक्षत्रियों के राजकुमार बतलाते हैं। वे राजकुल में जन्मे थे

उनका पिता सिद्धार्थ ज्ञातृ-जाति का ठाकुर था। वैशाली के कोल्लाग सन्निवेश (मुहल्ले) में वह रहता था इसलिए महावीर को वैशालिक कहा जाता है। वैशाली वह वर्तमान काल का बसाढ़ है। पटना के उत्तर में सत्ताईस मील दूर है। इस समय शहर के वैशाली, कुंडग्राम और वाणियग्राम ये तीन भाग हैं। इनमें अनुक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिये रहते थे। आज इनके अवशेष- १. बसाढ़ २. वासुकुंड ३. बनियांगांव विद्यमान है। सिद्धार्थ का विवाह वैशाली गणराज्य के प्रमुख राजा चेटक की बहिन त्रिशला से हुआ था। महावीर का जन्म ई. पू. ५९९ में त्रिशला के गर्भ से हुआ था। इससे स्वतः सिद्ध है कि उनका जन्म उच्चकुल में हुआ था। इस का ही कारण था कि बुद्ध और महावीर दोनों प्रारंभ में अपनी अपनी जाति के क्षत्रियों और राजकुलों के संसर्ग में आये थे। महावीर की यशोदा नाम की पत्नी; प्रियदर्शना नाम की पुत्री और जमाली नाम का जवाई (दामाद) था। महावीर ने माता-पिता की मृत्यु के बाद तीस वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी। कोल्लाग में ज्ञात-क्षत्रियों का दुतिपलासचैत्य नाम का धर्मस्थान था, जिसमें पूज्य पार्श्वनाथ की परम्परा के मुनि आकर ठहरते थे। महावीर ने प्रथम इस परम्परा में प्रवेश किया था। एकाध वर्ष के बाद नग्नता स्वीकार की। बारह वर्ष तक छद्मस्थ मुनि अवस्था में विहार किया। बाद में महावीर के उपनाम के साथ केवलज्ञान को प्राप्त कर जिन (तीर्थंकर) पद को प्राप्त किया। उन्होंने अन्तिम तीस वर्षों तक धर्मोपदेश देकर अपनी परम्परा की व्यवस्था की। इस काम में उन्हें मौसाल (मामा) के पक्ष के साथ सम्बन्ध के कारण विदेह, मगध और अंग जनपदों का बहुत सहयोग मिला। नेपाल की सीमा और पार्श्वनाथ पहाड (सम्मेदशिखर) तक विचरण किया था। उन्होंने गौतमबुद्ध के साथ मिलाप या विवाद नहीं किया परन्तु गौशाला के साथ वाद-विवाद किया। उनके मुख्य शिष्य ग्यारह (गणधर) तथा दूसरे इन गणधरों के शिष्य चवालीस सौ (चवालीस सौ) थे। इसलिये (उनकी परम्परा में) आज तक जैनधर्म चालू है इत्यादि तथा डा. हार्नले ने उपासकदशांग सूत्र के भाषान्तर में पृ० तीसरे की टिप्पणी (footnote में लिखा है— जिसका सार यह है— "वाणियग्राम यह वैशाली का दूसरा नाम है। वैशाली में वैशाली, कुंडग्राम, वाणियग्राम का समावेश होता है। जिनके अवशेष रूप आज बसाढ़, वासुकुंड और वाणिया है। इससे वैशाली को हम तीन नामों से सम्बोधित कर सकते हैं। वाणियाग्राम के साथ नगर शब्द जुड़ा है इसलिये यह बड़ा नगर था। कुंडग्राम वैशाली का ही तीसरा नाम है इसी से महावीर की जन्मभूमि वैशाली होने से महावीर भी वैशालिक कहलाये। एक बौद्ध कथा में वैशाली के तीन नाम कहे हैं। वैशाली के

आगे **कुंडपुर** और उसी के आगे **कोल्लाग** मुहल्ला था। इसमें क्षत्रिय रहते थे। **जिस जाति में महावीर ने जन्म लिया था वहां कोल्लाग के पास दूतिपलासचैत्य उद्यान था। वह ज्ञातकुल का ही था इसलिये आचारांगसूत्र और कल्पसूत्र में नायवणखंडउज्जाणे लिखा है।** कुंडपुर केसाथ नगर शब्द जुड़ा है जो वैशाली और कुंडपुर का एक होना सत्य सिद्ध करता है। कुंडपुर केसाथ सन्निवेश शब्द का भी प्रयोग हुआ है यह कुंडपुर केलिये नहीं किन्तु उत्तर तरफ के क्षत्रियकुंड के लिए तथा दक्षिण तरफ के ब्राहमणकुंड के भेदों के लिए ही है। अर्थात् **सिद्धार्थ वैशाली नगर के कोल्लाग मोहल्ले का ज्ञातक्षत्रियों का प्रमुख सरदार था** इससे स्पष्ट है कि **महावीर की जन्मभूमि कोल्लाग ही थी।**

ज्ञातवंश के क्षत्रिय पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। उन्होने अपने धर्मगुरू को ठहराने के लिए दूतिपलासचैत्य की स्थापना की थी। जब महावीर ने संसार का त्याग किया तब प्रथम कुंडपुर के निकट ज्ञातकुल के इसी दूतिपलासचैत्य में जाकर निवास किया था। एक बौद्ध कथा के अनुसार वैशाली को तीन भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में सात हजार सोने के कलश वाले घर थे, मध्य वाले भाग में चौहद हजार घर चादी के कलश वाले थे, और इक्कीस हजार घर तांवे के कलशवाले अन्तिम भाग में थे। **वहां उत्तम, मध्यम और नीच वर्ग के लोग वास करते थे। जैन सूत्र में वाणियग्राम केलिये उच्च, नीच और मध्यम लिखा है जिसका उक्त वर्णन के साथ मेल खाता है।**

२. अतः डा. हार्नले ऐसा मानता है कि–

१. वैशाली का कोल्लाग मोहल्ला ही क्षत्रियकुंड है। वासुकुंड वर्तमान में उसका अवशेष रूप है

२. ज्ञातवणखंड और दूतिपलासचैत्य एक ही उद्यान था। वह वैशाली में था।

३. सिद्धार्थ कोल्लाग के ज्ञात-क्षत्रियों का सरदार था।

३. पन्यास कल्याणविजय अपनी पुस्तक श्रमण भगवान महावीर में लिखते हैं कि–

१. भगवान महावीर का जन्म लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड में हुआ था मैं इसे सच नहीं मानता क्योंकि सूत्रों में भगवान महावीर के लिये **विदेहदिन्न,**

विदेहजच्चे, विदेहसुमाले तीस वासाइं विकट्टु; यह पाठ है और वैशालिक नाम भी मिलता है। इससे मानना पड़ता है कि भगवान महावीर का जन्मस्थान विदेह जनपद में वैशाली के एक मुहल्ले में हुआ था।

२. क्षत्रियकुंड के राजपुत्र जमाली ने पांच सौ राजपूतों के साथ दीक्षा ली थी, इससे निश्चित है कि क्षत्रियकुंड एक बड़ा नगर था। तो भी भगवान महावीर ने यहां एक भी चौमासा किया हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। जब कि भगवान महावीर ने बारह चौमासे वैशाली और वाणिज्यग्राम के किये। इससे लगता है कि क्षत्रियकुंड एवं ब्राह्मणकुंड वैशाली के पास के मोहल्ले थे। इससे उक्त बारह चौमासों का लाभ उन्हीं को मिला था। इस स्थिति में खास क्षत्रियकुंड में चौमासा या विहार न किया हो और शास्त्र में उसका उल्लेख न हुआ हो ये स्वाभाविक है।

३. भगवान महावीर ने दीक्षा के दूसरे दिन कोल्लाग सन्निवेश में जाकर छठ तप का पारणा बाहुल ब्राह्मण के घर जाकर खीर से किया। जैनसूत्रों के अनुसार कोल्लाग सन्निवेश दो हैं एक वाणिज्यग्राम के पास, दूसरा राज्यगृह के पास, ये स्थान लच्छुआड़ से चालीस मील से अधिक दूर हैं। वहां पहुंच कर दूसरे दिन पारणा करना असम्भव है, हो नहीं सकता। तर्कसंगत वस्तु यह है कि भगवान महावीर ने वैशाली के पास क्षत्रियकुंड के ज्ञातवनखंड में दीक्षा ली और दूसरे दिन वाणिज्यग्राम के कोल्लाग में पारणा किया।

४. भगवान ने दीक्षा के वर्ष में क्षत्रियकुंड से विहार करके कुमारग्राम, मोराक सन्निवेश आदि स्थानों में विचरणकर अस्थिग्राम में चौमासा किया। दूसरे वर्ष मौराक, वाचाला, कनखल, आश्रमपद, श्वेताम्बी होकर राजगृही आकर चौमासा किया; ऐसा उल्लेख मिलता है इसके अनुसार भगवान (पहले चौमासे के बाद) श्वेताम्बी आते हैं और वापिस लौटते हुए गंगानदी पार करके राजगृही पधारते हैं। (श्वेताम्बी गंगा के उत्तर में है और राजगृही दक्षिण में)" इससे निश्चित है कि लच्छुआड़ वाला क्षत्रियकुंड असली नहीं है। वहां से राजगृही जाते समय गंगा पार नहीं करनी पड़ती, इसलिये मानना पड़ता है कि क्षत्रियकुंड गंगा के उत्तर में विहार में था अतः क्षत्रियकुंड वैशाली के पास था। (जहां भगवान महावीर का जन्म हुआ) (प्रस्तावना पृ. २५ से ३८)

५. वैशाली के पश्चिम में गंडकी नदी थी इसके पास में ब्राह्मणकुंडपुर, क्षत्रियकुंडपुर, वाणिज्यग्राम, कुमारग्राम और कोल्लाग-सन्निवेशादि उस (वैशाली) के मुहल्ले थे। ब्राह्मण कुंड एवं क्षत्रियकुंड एक दूसरे से पूर्व-पश्चिम

मुहल्ले में थे। मध्य में बहुशालचैत्य था। इन दोनों मुहल्लों में उत्तर और दक्षिण ऐसे दो भाग थे। दक्षिण ब्राह्मणकुंड में ब्राह्मणों के अधिक घर थे जबकि उत्तर क्षत्रियकुंड में क्षत्रियों के अधिक घर थे। सिद्धार्थ राजा उत्तर क्षत्रियकुंड का नायक था। ज्ञात-क्षत्रियों का स्वामी था और वह जैन था। (श्रमण भगवान महावीर पृ. ५)

अतः पन्यास कल्याणविजय जी ऐसा मानते हैं कि–

१. विदेह में वैशाली के निकट एक मोहल्ला ही क्षत्रियकुंड भगवान महावीर का जन्मस्थान है।

२. लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड में भगवान ने कोई चौमासा एवं विहार नहीं किया। इसलिये यह भगवान का जन्मस्थान नहीं हो सकता।

३. श्वेताम्बी से राजगृही जाते हुए भगवान को गंगानदी पार करनी पड़ी थी इसलिए वैशाली का एक मोहल्ला ही सच्चा क्षत्रियकुंड है।

४. आचार्य विजयेन्द्र सूरि वैशाली नामक पुस्तक में लिखते हैं

१. भगवान महावीर वैशालिक कहलाते हैं। क्षत्रियकुंड भी वैशाली के पास था। इसलिये हम वैशाली संबन्धी विचार करते हैं। (पृ. १) यह आर्य देश था। वृहत्कल्पसूत्र आदि में आर्य देश २५½ कहे हैं। इनमें भी अंग, मगध, दक्षिण में वत्स (कौशाम्बी), पश्चिम में स्तून (कुरुक्षेत्र) और उत्तर में कुणाल की सीमा तक विद्यमान देश और उनका मध्यभाग ही मुनियों के विहार के लिये आर्यभूमि है। इस प्रदेश को बौद्ध १६ जनपद और मनुजी मध्यभारत उल्लेख करते हैं।

२. विदेह यह आर्यदेशों में से एक है। इसकी राजधानी मिथिला थी। विक्रम की १५वीं शती में इस के क्रमशः तीरभुक्ति और जमईनगर ऐसे नाम थे।[15] बौद्धग्रंथों के अनुसार मिथिला विदेह की राजधानी थी जो आठ प्रमुख संघों में से एक थी।[16] वैशाली आज विद्यमान नहीं। इस जगह आज वसाढ़, बनिया, कामनछपरागाच्छी, वसुकुंड और कोलुआ गांव बसे हुए हैं। जो वैशाली, वाणिज्य, कुमार, कुंडपुर और कोल्लाग की स्मृति में हों ऐसा लगता है।

'ज्ञात' यह छह जातियों में से एक है। राहुल साकृत्याय कहता है कि यह जाति आज वसाढ़ में जथारिया के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान महावीर ज्ञात जाति

में जन्मे थे, इसलिये वे ज्ञातपुत्र के नाम से भी विख्यात थे। ईसवी सन् १९०३ से १९१४ तक वैशाली की खुदाई का काम हुआ। उसके खण्डहरों से आज एक मील के घेरे वाला गढ़ है। गढ़ के वायव्य कोण में अशोकस्तूप, मर्कटहृद यानि रामकुण्ड है। पश्चिम में एक मंदिर के पास जिन, बुद्ध और शिव आदि की खंडित मूर्तियां भी मिली हैं। खोदकाम से प्राचीन सिक्के भी मिले हैं। गढ़ के वायव्य कोण में एक मील पर **बनियांगांव** है पास में अशोकस्तंभ है। वहीं बौद्धसंघाराम (मंदिर-मठ) भी है। दो मील दूर **कोलुआगांव** है। ईशानकोण में **वासुकुंड** और पूर्व में **कामनछपरागाछी** गांव है। **कोलवा, बसाढ़ और बनिया के पूर्व नदी का पुराना तट है।** जिसका नाम न्योरीनाला (नेवली नाला) है आज वहां खेती होती है। (वैशाली पुस्तक पृष्ठ. ६ से २२)।

चीनी यात्री फाहियान लिखता है।[7] कि वैशाली के दक्षिण में ३ ली (५ ली =१ मील) पर आम्रपालि वैश्या का बाग है जिसे उसने बुद्ध को दान दिया था ताकि वे उसमें रहें। बुद्ध अपने परिनिर्वाण के लिये जब अपने शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम से निकले तो दाहिनी ओर वैशाली नगर को देखकर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि यह मेरी अन्तिम विदा है। लोगों ने वहां स्तूप बनाया।

श्रेणिक की लिच्छिवी रानी चेलना जो विदेह नरेश चेटक की छोटी पुत्री थी। उसने अजातशत्रु (कोणिक) को जन्म दिया था। इसलिये वह विदेहीपुत्र कहलाया।

बसाढ़ के ईशानकोण में विद्यमान वासुकुंड ही प्राचीन क्षत्रियकुंड है आचार्य नेमिचन्द्र सूरि महावीर चरियं में लिखते हैं कि–

अत्थि इह भारहेवासे मज्झिम देसस्स
मंडनं परम सिरि कुंडग्गाम नयरं

वसुमइ रमणीतिलयभूयं; से पहचान कराते हैं। इससे भगवान मध्यप्रदेश एवं विदेह।[8] के थे ऐसा लगता है। आचारांगसूत्र में णाय णातपुत्ते णायकुलचंदे, विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीस वासाइं विदेहसि कट्टु। यह पाठ कल्पसूत्र सूत्र ११० में भी आया है; और त्रिशला रानी के लिये– "**तिसलाइं वा विदेहदिन्नाइ वा पियकारिणी वा**"- पाठ है। जिसमें **भगवान को विदेह** एवं **त्रिशला को विदेहदिन्ना कहा है।** विदेह का नाम माता के कुल के साथ सम्बन्ध रखता है। त्रिशला माता वैशाली के राजा चेटक की बहन थी। वह कुटुम्ब विदेह नाम से प्रसिद्ध था। इसलिये त्रिशला विदेहदत्ता नाम से पहचानी जाती थी।

भगवान को भी मोसाल का विदेह नाम मिला। भगवान विदेह में ३० वर्ष रहे थे। कल्पसूत्र और उसकी टीकाओं में भी यही वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि भगवान का विदेह केसाथ विशेष संबंध था। दिगंबर आचार्य **पूज्यपाद** ने पस्तक दसभक्ति में और आचार्य **जिनसेन** ने हरिवंशपुराण में भगवान का जन्म **विदेह कुंडपुर में बताया है।** इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि क्षत्रियकुंड मध्यप्रदेश यानि आर्यवर्त के विदेहदेश में एक नगर था।

सूत्रकृतांग और भगवतीसूत्र में भगवान को वैशालिक कहकर संबोधित किया है यानि भगवान विदेह के थे। इसलिये विदेह का वैशाली नगरी के साथ विशेष सम्वन्ध होने से वैशालिक नाम से प्रसिद्ध थे। कहने का आशय यह है कि क्षत्रियकुंड वैशाली का मुहल्ला अथवा **उसके पास में एक नगर के रूप में था।** (वैशाली पृष्ठ. २२-२३)

"भगवतीसूत्र में वर्णन है कि भगवान ब्राह्मणकुंड के महाशैलचैत्य में पधारे।"

ब्राह्मणकुंड के पश्चिम में क्षत्रियकुंडग्राम था वहां के निवासी **जमाली** क्षत्रिय ने बहुशालचैत्य में भगवान केपास आकर पांच सौ राजपूतों के साथ दीक्षा ली। अतः क्षत्रियकुंड और ब्राह्मणकुंड पास-पास में होना संभव है।

बौद्ध शास्त्रों में वर्णन है कि राजगृही से कुशीनारा पच्चीस योजन है बीच में नालन्दा, पाटलिगांव, गंगानदी, कोटिग्राम, नादिका, वैशाली आदि स्थान आते हैं। नादिका ञातिका का दूसरा नाम है। ये गांव दो भागों में बंटा हुआ है। बीच में तालाब है एक में बड़े पिता के और दूसरे में छोटे पिता के पुत्र रहते थे। **बस यह ञातिकग्राम ज्ञातक्षत्रियों का नगर था– यही अपना क्षत्रियकुंड जो वज्जी देश में है।** बुद्ध की अन्तिम यात्रा से प्रतीत होता है कि वैशाली के दक्षिण में **वैशाली और कोटिग्राम के बीच में क्षत्रियकुंड था।** हमारी यह मान्यता अनेक प्रमाणों से स्पष्ट होती है।

४. आचार्य विजयेंद्र सूरि की मान्यता पर अवलोकन

अतः आचार्य श्री विजेन्द्र सूरि मानते हैं कि– १. बासुकुंड या ञातिका अथवा वैशाली और कोटिग्राम का कोई स्थान क्षत्रियकुंड है। २. बासुकुंड को विदेह की राजधानी वैशाली का एक मोहल्ला माना है।

५. प्रो० योगेन्द्र मिश्र ने भी वैशाली के निकट कुंडग्राम को माना है।
६. इन उपर्युक्त सबके अतिरिक्त इनका अन्धानुकरणकर्त्ता भी अनेक हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता

भगवान महावीर का जन्मस्थान दिगम्बर सम्प्रदाय नालन्दा के निकट बड़गांव को कुंडलपुर मानता है। कहता है कि राजगृही के निकट नालन्दा से दो मील की दूरी पर यही कुंडलपुर भगवान महावीर का जन्मस्थान है।[19]

प्राचीन जैनागम एवं श्वेताम्बर जैनों की मान्यता

अर्धमागधी भाषा में प्राचीन जैनागम आचारांग,कल्पसूत्र आदि मूल उनपर लिखी गई निर्युक्ति, चूर्णी, टीका, भाष्य आदि सब ने एकमत से भगवान महावीर का जन्मस्थान मगध जनपद में **कुंडग्गाम** (कुंडग्राम) बतलाया है। यह ग्राम क्षुद्र (छोटा) नहीं था। अपितु महाग्राम-नगर था। इसके लिये ग्राम, पुर, नगर, सन्निवेश आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसके दो मुख्य विभाग थे दक्षिण में माहणकुंडग्गाम (ब्राह्मणकुंडग्राम) एवं उत्तर में खत्तीयकुंडग्गाम (क्षत्रियकुंडग्राम) यह ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सम्मिलित महानगर था। भगवान महावीर के जीवनचरित्र में भी इस महानगर के दोनों भागों को समानरूप से स्थान दिया गया है। अनुश्रुति है कि भगवान महावीर ने सर्वप्रथम ब्राह्मणकुंडग्राम के ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवनन्दा के गर्भाशय में भ्रूण-रूप धारण किया था। लेकिन वहां से यह भ्रूण क्षत्रियकुंड के राजा सिद्धार्थ की भार्या त्रिशलादेवी क्षत्रियाणि के गर्भाशय में स्थानान्तरित कर दिया गया। क्योंकि तीर्थंकर क्षत्रिय राजरानी के गर्भ से ही उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण आदि किसी अन्य वर्ण की स्त्री के गर्भ से अथवा हीनकुल में नहीं। इसका वर्णन हम विस्तार से भगवान महावीर की जीवनी में कर आये हैं। कुंडग्राम के भौगोलिक परिवेश में आनेवाले आस-पास के कुछ स्थानों का विवरण भी प्राचीन जैनागमों में मिलता है। क्षत्रियकुंड के बाहर ईशानकोण में **णायवंणखंड** नामक एक उद्यान कुंडपुर के णाय (ज्ञात) क्षत्रियों का था। गृहत्याग के बाद

वर्धमान-महावीर चन्द्रप्रभा नामक शिविका (पालकी) में बैठकर क्षत्रियकुंडग्राम के मध्य से होते हुए नायवनखण्ड उद्यान में आये और वहां पर उन्होंने मुनि-दीक्षा ग्रहण की। उसी दिन एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) दिन रहते हुए वे कुमारग्राम में आए। कुमारग्राम जाने के दो मार्ग थे। एक जलमार्ग दूसरा स्थलमार्ग, वे स्थलमार्ग से गए और वहीं उन्होंने सारी रात ध्यान में बिताई,दूसरे दिन वे कोल्लाग-सन्निवेश में गए और उसी दिन वहां से मोराकसन्निवेश[20] गए *कोल्लागसन्निवेश*[21] *में ज्ञातकुल की पौषधशाला (धर्माराधन करने का स्थान,* विशेष)[22] थी। इस विवरण से पता चलता है कि यहां नायकुल के क्षत्रियों का विस्तार था और वे जैनधर्मी थे।

प्राचीन-जैनागम सूत्रों की भौगोलिक अवस्थिति इस प्रकार बतलायी गई है। जम्बुद्वीप नामक द्वीप से भारतवर्ष के भरतक्षेत्र के दक्षिणार्ध भारत-खंड में दक्षिण दिशा में ब्राह्मणकुंडपुर नगर सन्निवेश था।[23] जैन संकल्पना के अनुसार भरह (भरतक्षेत्र) का विस्तार ५२६ योजन है यह चुल्लहेमवन्त के दक्षिण में तथा पूर्वी एवं पश्चिमी सागर के मध्य में है दो बड़ी नदियों गंगा और सिंधु तथा वैताढय पर्वतमाला से छः भागों में विभाजित है।[24] यह सूत्र कुंडपुर के भूगोल की पहचान केलिए अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। इस भौगोलिक विवरण[25] से पता लगता है कि भरतक्षेत्र चुल्लहेमवन्त के दक्षिण और पूर्वी एवं पश्चिमी सागर के मध्य में था और उस भरत के दक्षिणार्ध में भरतखंड में दक्षिण दिशा में ब्राह्मणकुंडपुर सन्निवेश था। ध्यानिय है कि भरतक्षेत्र की विभाजन रेखाओं में गंगा-सिन्धु और वैताढ्य पर्वतमाला हेमवन्त या हिमालय पर्वत को माना जाता है। इसके द्वारा यह क्षेत्र छः खंडों में विभाजित हो जाता था। अतः ऐसी स्थिति में दक्षिणार्ध-भरतखंड भूभाग ही माना जा सकता है। उत्तर भाग नहीं।[26] इसलिए दक्षिण मुंगेर के लच्छुआड़ के समीप का कुंडग्राम ही भगवान महावीर का जन्मस्थान है अन्य नहीं। यही कारण है कि श्वेताम्बर जैन परम्परा प्राचीन काल से ही इसी कुंडग्राम को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानती आ रही है। लेकिन श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं से सर्वथा भिन्न वर्तमान कुछ विदेशी प्राच्यविदों एवं उनसे प्रभावित कुछ भारतीय इतिहासकारों के मत में कि वैशाली ही भगवान महावीर की जन्म और पितृभूमि है। ऐसा होने से कुंडग्राम को वैशाली का एक मोहल्ला मान लिया गया है। इस मत की स्थापना के काफी बाद वैशालीसंघ नामक स्थापित संस्था के प्रयासों के फलस्वरूप सर्वप्रथम २१ अप्रैल १९४८ ई. में कुछ जैनों ने वैशाली को जन्मभूमि मानकर वहां भगवान महावीर की पूजा आराधना की। डा. पी. सी. आर. चौधरी का कथन है कि

यद्यपि ये लोग वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि होने का दावा करने लगे हैं। तथापि विवाद-रूप से वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि नहीं माना जा सकता।[27]

खेद का विषय यह है कि पुराविदों और इतिहासकारों ने भगवान महावीर के जन्म के सम्बन्ध में गंभीरता-पूर्वक गवेषणा नहीं की। वैशाली के पक्ष में उनकी सारी युक्तियां सारहीन और अटकल मात्र हैं विश्लेषण करते ही इनका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है।[28]

आधुनिक पाश्चिमात्य एवं भारतीय विद्वानों की मान्यताओं पर सिंहावलोकन

१. दिगम्बर सम्प्रदाय नालन्दा के निकट दो मील की दूरी पर बड़गांव को कुण्डलपुर मानता है और भगवान महावीर का इसे जन्मस्थान मानता है।

२ जर्मन विद्वान स्वर्गीय डा. हर्मनजैकोबी की मान्यता है कि-

(१) वैशाली का कोटिग्राम ही कुंडग्राम भगवान महावीर का जन्मस्थान था।

(२) कुंडग्राम महानगर नहीं था यात्रियों-सार्थवाहों का सामान्य विश्रामस्थान था।

(३) कोटिग्राम ही कुंडग्राम था और ज्ञातिक ज्ञातक्षत्रिय थे।

(४) कुंडग्राम वैशाली का एक मोहल्ला था।

(५) भगवान महावीर का जन्मस्थान व निवासस्थान वैशाली था।

(६) महावीर का पिता सिद्धार्थ राजा नहीं था केवल क्षत्रिय उमराव था।

(७) त्रिशला का देवी के रूप में उल्लेख नहीं हुआ इसलिये वह रानी न थी।

(८) चेटक वैशाली का राजा नहीं था। उमराव-मंडल का नेता था।

३. जर्मन विद्वान डा. हार्नले मानता है कि—

(१) वैशाली का कोल्लाग मोहल्ला ही क्षत्रियकुंड महावीर का जन्मस्थान था।

(२) ज्ञातखंडवन उद्यान और दूतिपलाशचैत्य उद्यान दोनों एक ही थे और वह वैशाली में था।

(३) सिद्धार्थ ज्ञात-क्षत्रियों का सरदार था। राजा नहीं था।

४. पन्यास कल्याणविजय जी की धारणा है कि—

(१) भगवान महावीर का जन्म वैशाली के **बसाढ़** नामक मुहल्ले में हुआ था।

(२) ब्राह्मणकुंड और क्षत्रियकुंड वैशाली के दो मुहल्ले थे।

(३) श्वेताम्बी से राजगृही आते हुए भगवान गंगानदी को पार करके आए थे इसलिए वैशाली का एक मुहल्ला ही सच्चा क्षत्रियकुंड नगर है और यही भगवान का जन्मस्थान है।

५. आचार्य विजेन्द्र सूरि की धारणा है कि—

(१) **वासुकुंड** अथवा **ज्ञातिक** अथवा **वैशाली और कोटिग्राम के बीच में कोई स्थान** क्षत्रियकुंड है। जहां भगवान महावीर का जन्म हुआ था।

(२) वासुकुंड को वैशाली का मुहल्ला माना है।

(१) उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि जन्मस्थान केलिए सब की अपनी-अपनी अलग-अलग धारणाएं है।

यथा- १. प्राचीन जैनागम और श्वेताम्बर जैन परम्परा मगध जनपद में लच्छुआड के निकट **क्षत्रियकुंड** को जन्मस्थान मानता है

२. दिगम्बर सम्प्रदाय मगध जनपद में **कुंडलपुर** को मानता है।

३ डा. हर्मनजैकोबी विदेह जनपद मे **कोटिग्राम** को जन्मस्थान मानता है।

४. डा. हार्नले विदेह वैशाली के एक मुहल्ले **कोल्लाग** को मानता है।

५. पन्यास कल्याण विजय **बसाढ़** (वैशाली के एक मुहल्ले) को मानते हैं।

६. वैशाली के एक मुहल्ले **वासुकुंड** अथवा **ज्ञातिक** अथवा **वैशाली और कोटिग्राम के बीच का कोई स्थान** क्षत्रियकुंड मानते हैं। इनकी कोई एक निश्चित धारणा नहीं है।

अन्य धारणायें इन शोधकों की

२. ज्ञातबनखंड और दूतिपलासवणखंडचैत्य दोनों एक ही उद्यान था और वह वैशाली में था— (हार्नले)

३. क्षत्रियकुंड महानगर नहीं था। वह सार्थवाहों अथवा यात्रियों का विश्राम स्थान था।

४. ज्ञांतिक ज्ञातक्षत्रिय थे।

५. भगवान महावीर की जन्मभूमि और पितृभूमि विदेह की राजधानी वैशाली थी और वे यहीं के निवासी थे। दीक्षा लेने से पहले जीवन के तीस वर्ष यही गुजारे थे।

६. भगवान महावीर का पिता सिद्धार्थ राजा नहीं था मात्र क्षत्रिय उमराव था।

७. त्रिशला रानी नहीं थी। मात्र साधारण क्षत्रिय उमराव सिद्धार्थ की पत्नी थी।

८. चेटक वैशाली का राजा नहीं था वह उमरावमंडल का नेता था। (प्रायः यही मान्यताएं डा. हार्नल एवं जैकोबी की भी हैं)

उपर्युक्त शोधकर्ताओं की स्खलनाओं पर विचारणा

किसी भी सत्य-शोध-खोज के लिये १. साहित्य (Literary), २. भूतत्व-विद्या (Geoligical), ३. भूगोल (Geographical) ४. पुरातत्व (Archaeological) ५. भाषाशास्त्र (Linguitic) ६. ऐतिहासिक (Historical), ७. तर्क (Logical) ८. तथा तीर्थ-यात्रियों (Pilgrims) के प्रमाणों एवं तथ्यों की परमावश्यकता है। अतः हम यहां पर इन उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रख कर प्रमाणिकता पर पहुंचने का प्रयास करेंगे।

१. साहित्यिक (LITERARY) प्रमाण

मुख्यतः अर्द्धमागधी भाषा के प्राचीन जैनागम आचारांग, भगवती सूत्र, सूत्रकृतांग, कल्पसूत्र आदि भगवान महावीर की वाणी जो उन के मुख्य शिष्यों-गणधरों ने प्रत्यक्ष सुन कर संकलन कर आगमरूप में गुंथन की है, उन में जो लेख उपलब्ध हैं उनमें सत्य प्रमाण मिलते हैं।

किन्तु दुःख की बात है कि वर्तमान में सर्वप्रथम पाश्चिमात्य डा. हर्मणजेकोबी आदि इतिहास वेत्ताओं ने तत्पश्चात् उन का मान्यताओं को विना परीक्षण किये अनेक भारतीय जैन-जैनेत्तर विद्वानों ने भी उनका अनुकरण करके भ्रमात्मक बातें स्वीकार कर ली हैं और उन्हीं के आधार पर भगवान महावीर के

विषय में निम्न-कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों से लेकर उच्चतम कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में भी वही भ्रामक बातें लिखी गयी हैं। इस संबंध में सुज्ञ-इतिहासकारों को जैनों के धार्मिक इतिहास ग्रंथों और उनकी प्रचलित परम्परागत मान्यताओं के अनुसार- निष्पक्ष शोधपूर्ण दृष्टि से देखना नितांत आवश्यक था। बिना पूर्ण अनुसंधानों के भ्रामक बातें लिखना इतिहासकारों की अदूरदर्शिता को ही प्रमाणित सिद्ध करता है। यहां पर यह बात सर्वथा अखंडनीय है कि वैशाली, बसाढ़, वासुकुंड, कोलुआ, कोटिग्राम, ज्ञातिक आदि को भगवान महावीर की जन्मभूमि कभी नहीं कह सकते। श्री नरेशचंद्र मिश्र 'भंजन' जो मगध जनपद के जमुई में मनन क्षेत्र (क्षत्रियकुंड के निकट) के निवासी हैं- उनका कथन है कि अयोध्या, जनकपुरी, दंडकपंचवटी, मथुरा, वृन्दावन, मिथिला, काशी आदि हजारों वर्षों से एक ही नाम से विख्यात हैं तो क्या कारण है कि क्षत्रियकुंड, कोल्लाग, कुमारग्राम आदि के नाम लगभग पच्चीस सौ वर्षों में ही वासकुंड, बसाढ़, कोलुआ हो गये? इस का कारण उपस्थित करने का प्रयत्न करने से पूर्व मेरा कथन है कि यदि क्षत्रियकुंड और उसके समीप के ग्राम, नगर जैनियों के प्राचीन धार्मिक ग्रंथ आचारांग, कल्पसूत्र आदि में उल्लिखित ग्राम-नगर जिनका संबंध भगवान महावीर के विहारक्रम में इस क्षत्रियकुंड नगर के आस-पास प्राचीन नामों से अथवा कालदोष के कारण साधारण अपभ्रंश के साथ मिल जावें तो भगवान महावीर की जन्मभूमि मगध जनपद के लच्छुआड़ के समीप मानने में आपत्ति क्या और क्यों है?

वह कहते हैं कि भगवान महावीर का जन्म मगध जनपद के क्षत्रियकुंड में हुआ था जो गंगानदी के दक्षिण में था। इस स्थान को आज भी शत-प्रतिशत इस क्षेत्र की अबाल-वृद्ध स्थानीय जनता 'जन्मस्थान' (जन्मथान) के नाम से जानती पहचानती है। किन्तु इस के वास्तविक अर्थ से ढाई हजार वर्षों के लम्बे अंतराल के कारण सब अनभिज्ञ हैं। भगवान महावीर का यहां एक प्राचीन मंदिर भी है। यह स्थान मुंगेर जिले के अंतर्गत जमुई सबडिविजन के लच्छुआड़ नाम के गांव के दक्षिण पर्वत श्रेणी के दक्षिण पार्श्व में अवस्थित है।

ढाई हजार वर्ष पहले तक्षशिला, कौशाम्बी, श्रावस्ती, श्वेतांबिका भोगनगर, वैशाली, राजगृही, नालन्दा, चम्पा, कोटिवर्ष, आदि अनेक नगर जो जैनधर्म के केन्द्रस्थान और समृद्ध थे आज वहां यह समृद्धि नहीं है वह वैभव भी नहीं है। उन्हें कोई जानता भी नहीं है। वहां मात्र उजाड़ वीरान टीले, ध्वंसचिन्ह, खंडहर अथवा उनके अवशेष रूप में बसे हुए छोटे-छोटे गांव नजर आते हैं।
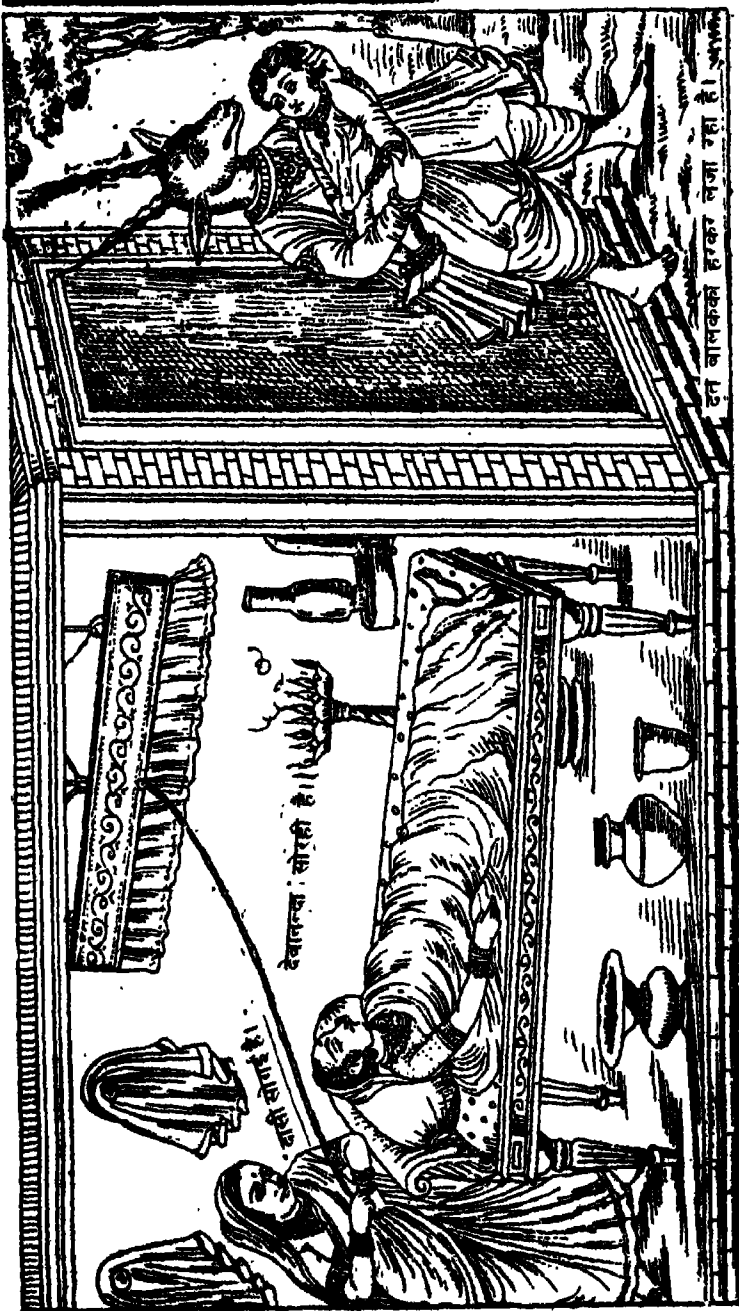
ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भमें इन्द्र का दूतगर्भ हरकर लेजारहा है।
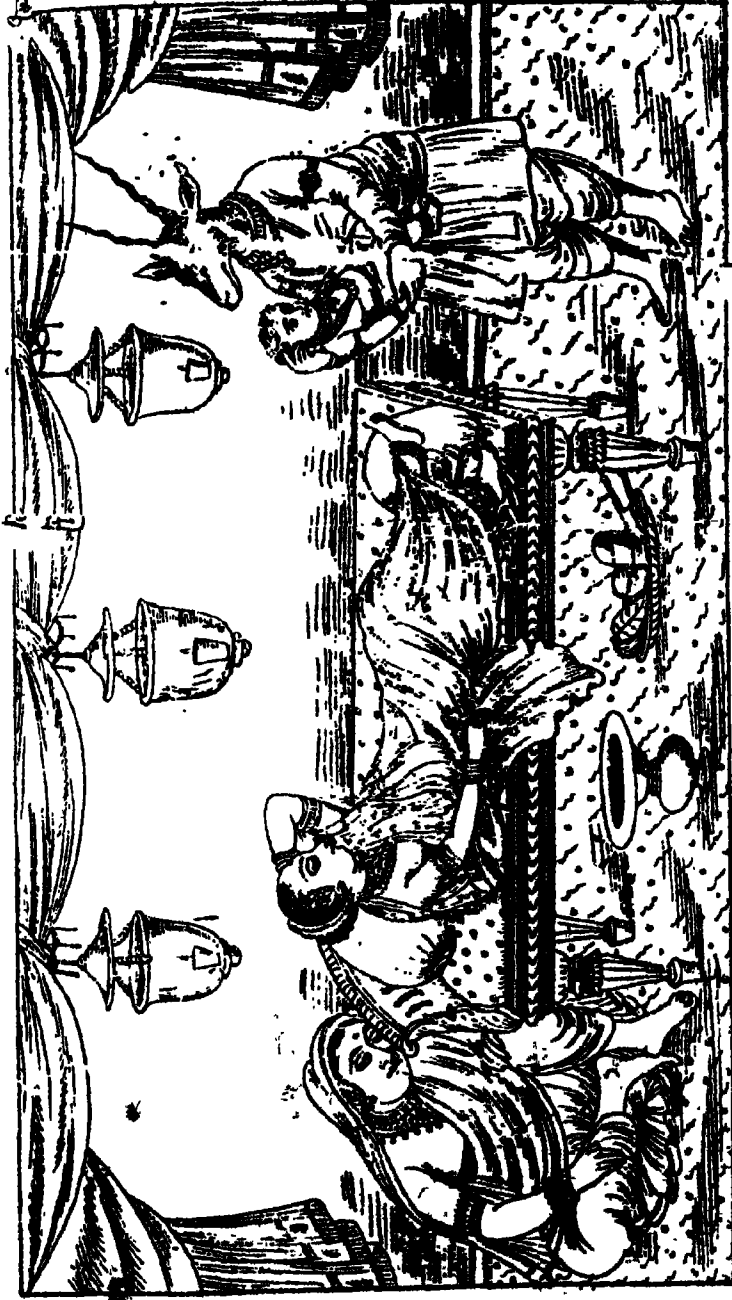
देवेन्द्र का दूत माता त्रिशला के गर्भ में भगवान महावीर के भ्रूण को स्थापित करता है। दासी सोती है। रानी त्रिशला सोती है। दूत गर्भ स्थापित करने आया है।

माता त्रिशला की दोहद की पूर्ति केलिए क्षत्रियकुंडके एक पर्वतपर पिता सिद्धार्थ— राजा

विक्राल समय के प्रभाव से क्षत्रियकुंड की भी आज वही दशा है। जिसे देखकर हमें ऐसी कल्पना भी नहीं हो सकती कि एक समय यह विशाल समृद्ध राजधानी नगर था।

आज इसके चारों ओर छोटे-छोटे गांव बसे हुए हैं। जिनका विस्तार देखते हुए ऐसा मानना पड़ता है कि उस काल का यह विशाल कुंडपुर महानगर विनाश पाया है और उसके स्थान पर इन छोटे-छोटे गांवों ने जन्म लिया है। यानि यह गांवों की विस्तार भूमि ही प्राचीन कुंडपुर (क्षत्रियकुंड-ब्राह्मणकुंड है।

जैनागम आवश्यक निर्युक्ति हरिभद्रीय वृत्ति पृ. ३७८ में गाथा नं. ४५७ में कहा है कि (भगवान महावीर का जीव) पुष्पोत्तर देवविमान से च्यव (मृत्यु पा) कर ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के कोडालगोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या दिवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में गर्भतया उत्पन्न हुआ।

भगवान महावीर का गर्भगत भ्रूण का स्थानांतरण

आचारांग सूत्र टीका पृ. ३८८ में कहा है कि जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में....... दक्षिण ब्राह्मणकुंड सन्निवेश से (देवेन्द्र का देवदूत चलकर) उत्तर क्षत्रियकुंडपुर सन्निवेश में आया और ज्ञातृ-क्षत्रियों के काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वासिष्ट गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणि की कुक्षी में अशुभ पुद्गलों को हटाकर शुभपुद्गलों का प्रक्षेपण करके (भगवान महावीर का भ्रूण) उन की कुक्षी में स्थापन किया।

१. महारानी त्रिशला का दोहद

भगवान महावीर जब माता त्रिशला के गर्भ में थे तब गर्भ के प्रभाव से माता को अनेक उत्तम दोहद (गर्भस्थ बालक के प्रभाव से कुछ पाने की इच्छा) होने लगे। उनमें से एक दोहद यह भी था कि मैं इन्द्राणी के कानों के कुण्डल राजा सिद्धार्थ द्वारा लाये हुए पहनूं। जब इन्द्र को इस बात का पता लगा तब उसने क्षत्रियकुंड के निकट पर्वत पर इन्द्रपुर नाम का नगर बसाया और अपनी इन्द्राणी परिवार एवं बहुत देवों-देवियों के साथ यहां आकर रहने लगा। जब राजा सिद्धार्थ को इस बात का पता लगा तो उस ने अपने दूत द्वारा इन्द्र को कहला भेजा

भगवान महावीरके जन्मलेनेपर प्रभुका जन्मोत्सव करने केलिए ५६ दिक्कुमारिकाएं माता त्रिशलाके पास मृतिकागृह में आती है। आकाश मे देव दुंदुभ बजा रहे हैं।

प्रभु महावीरको देवेन्द्र अपने पांच रूप-करके मेरु पर्वत पर लेजारहा है।

भगवान महावीर का जन्म होनेके बाद देवेन्द्र उन्हें मेरु पर्वतपर जन्मोत्सव मनाकर माता को वापिस सौंपने आया है.

कि वह अपनी इंद्राणी के कानों के कुंडल महारानी त्रिशला को पहनाने के लिये दे। इन्द्र के इन्कार करने पर सिद्धार्थ ने इन्द्र को युद्ध में हराकर इन्द्राणी के कुंडल उतार कर त्रिशला को पहनाये और उसका दोहद पूरा किया।[29] तत्पश्चात् इन्द्र अपने साथ लाये हुए इन्द्राणी और सब देवों देवियों के साथ अपने देवलोक में वापिस चला गया।

जिस पर्वत पर यह घटना हुई उस पर्वत का आज भी नाम **सक्क-सक्कियानी** प्रसिद्ध है। यह शब्द अर्धमागधी भाषा का है। इसका संस्कृत रूपांतर शक्र-शक्राणी होता है। शक्र-इन्द्र और शक्राणी-इन्द्राणी को कहते हैं। जब त्रिशला को सिद्धार्थ द्वारा इंद्राणी के कुंडल पहनाने का दोहद हुआ था तब सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान द्वारा जानकर यह सारी रचना रची और राजा सिद्धार्थ के साथ युद्ध किया एवं वह जानबूझ कर पराजय मान कर वहां से पलायन कर गया। तब सिद्धार्थ ने इन्द्राणी के कुंडल उतारकर त्रिशला को पहनाये और उस का दोहद पूरा किया।

भगवान महावीर का जन्म

ईसा पूर्व ५९९ (विक्रम पूर्व ५४२) चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की पूर्व-रात्री में चंद्र की हस्तोत्तरा (उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र) के साथ युति होने पर क्षत्रियकुंडपुरनगर में भगवान वर्धमान-महावीर का जन्म हुआ।[30]

भगवान महावीर का जन्मोत्सव

छप्पनदिक्कुमारियों का आना

भगवान महावीर का जन्मोत्सव मनाने केलिए छप्पन दिक्कुमारियों के आसन चलायमान हुए। अवधिज्ञान से भगवान का जन्म हुआ जानकर रात्रि को सूतिकाकर्म करने केलिए वहां (जन्मस्थान में) दिक्कुमारियां आईं। वे इस प्रकार से (१) आठ दिक्कुमारियां अधोलोक से आयीं। माता और प्रभु को वंदन नमस्कार करके ईशान कोण में एक प्रसूतिघर बनाया तथा संवर्तक वायु से भूमि को साफ किया। (आठों के नाम दिये हैं) (२) आठ दिक्कुमारियां उर्ध्वलोक से आईं। माता-पुत्र को नमस्कार करके सूतिकाघर में सुगंधित जल और पुष्पों की वृष्टि की एवं हर्षित होकर गीतगान करने लगीं (आठों के नाम दिये हैं। (३) आठ दिक्कुमारियां रुचक द्वीप के पर्वत की पूर्वदिशा से आईं और मुख देखने केलिये प्रभु के सन्मुख दर्पण रखती हैं। (आठों के नाम०) (४) आठ दिक्कुमारियां पर्वत

की दक्षिण दिशा से आकर स्वर्ण कलशों को (सुगंधित) जल से भरकर स्नान कराने केलिये सन्मुख खड़ी रहती हैं एवं गीतगान और नाटक करती हैं। (आठों के नाम०) (५) आठ दिक्कुमारियां **पर्वत की पश्चिम दिशा** से आकर माता पुत्र को नमस्कार करके हवा करने केलिये हाथों में पंखे लेती हैं। (आठों के नाम) (६) आठ दिक्कुमारियां **पर्वत की उत्तर दिशा** से आकर हाथों में चंवर लेकर ढोलाती हैं। (आठों के नाम)। (७) माता पुत्र को नमस्कार करके चार दिक्कुमारियां पर्वत की विदिशाओं से आकर हाथों में दीपक ले कर खड़ी रहती हैं। (चारों के नाम) (८) चार दिक्कुमारियां **द्वीप** की विदिशाओं से आती हैं और भगवान की चार अंगुल नाल काट कर धरती में गाड़ देती हैं।[34] (चारों के नाम दिये गये हैं) अतः यहां पर्वत और द्वीप (समतल भूमि) से छप्पन दिक्कुमारियों का भगवान महावीर का जन्मोत्सव मनाने केलिये आने का स्पष्ट उल्लेख है। क्षत्रियकुंडनगर के समीप आज भी वह पर्वत जिस पर से दिक्कुमारियां माता त्रिशला के पास प्रभु का जन्मोत्सव मनाने आईं थीं, विद्यमान है और उस का नाम आज भी **दिक्करानी** प्रसिद्ध है। जिसका अर्थ होता है **दिक्क+रानी**। यानि त्रिशलारानी के पास दिक्कुमारियों ने उपस्थित होकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से प्रभु का जनमोत्सव मनाया था। **इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि त्रिशला सामान्य क्षत्रियाणी नहीं थी किन्तु रानी थी और सिद्धार्थ उसका पति होने से अवश्य राजा था। सामान्य क्षत्रिय उमराव नहीं था।**

३-४ राजकुमार वर्धमान (महावीर) का खेलने को जाना

बाल्यावस्था में वर्धमान (महावीर) अपने बाल-सखाओं के साथ खेलने गए। वहा पर्वतघाटी पर आमलिकी (आंवले) के पेड़ पर एक भयंकर सर्प लिपट कर मुंहफाड़े फुफकार करने लगा। ऐसा भयंकर दृश्य देखकर डरके मारे वहां से सब बालक भाग खड़े हुए। पर वर्धमान ने निर्भयता पूर्वक उस सांप को मजबूत हाथों से पकड़ कर दूर फैंक दिया। यह खेल भगवान महावीर का **आमलिकी क्रीड़ा के नाम से प्रसिद्ध है।** पश्चात् सब बालक इकट्ठे होकर गेंद खेलने लगे इस में भी वर्धमान जीते। राजकुमार वर्धमान-महावीर क्षत्रियकुंड में पर्वतघाटियों पर प्रायः गेंद खेलने आया करते थे। गेंद को अर्धमागधी भाषा में **'किंदुअ'** कहते हैं। अतः वे दोनों पर्वतघाटियां जहां कुमार वर्धमान खेलने जाया करते थे आज भी उनके नाम किंदुआणि प्रसिद्ध है।[35]

राजकुमार वर्धमान अपने बालमित्रोंकेसाथ पर्वतपर खेलते हैं। वहां आंवले के वृक्ष केनिकट खेलतेहुए एक देव, कुमार को डराने केलिए आया अनेक रूप धारण किए। अंतमें महाभयंकर सर्प का रूप धारण करके कुमारको विचलित करने का प्रयास किया। पर कुमारने उसे पकड़ कर दूर फैंक दिया। हार खाकर देव भागगया इस खेलको आगम मे आमलकी क्रीड़ा कहा है।

भगवान महावीर दीक्षा लेनेमे पहले याचकों को वर्षीयदान देते हुए
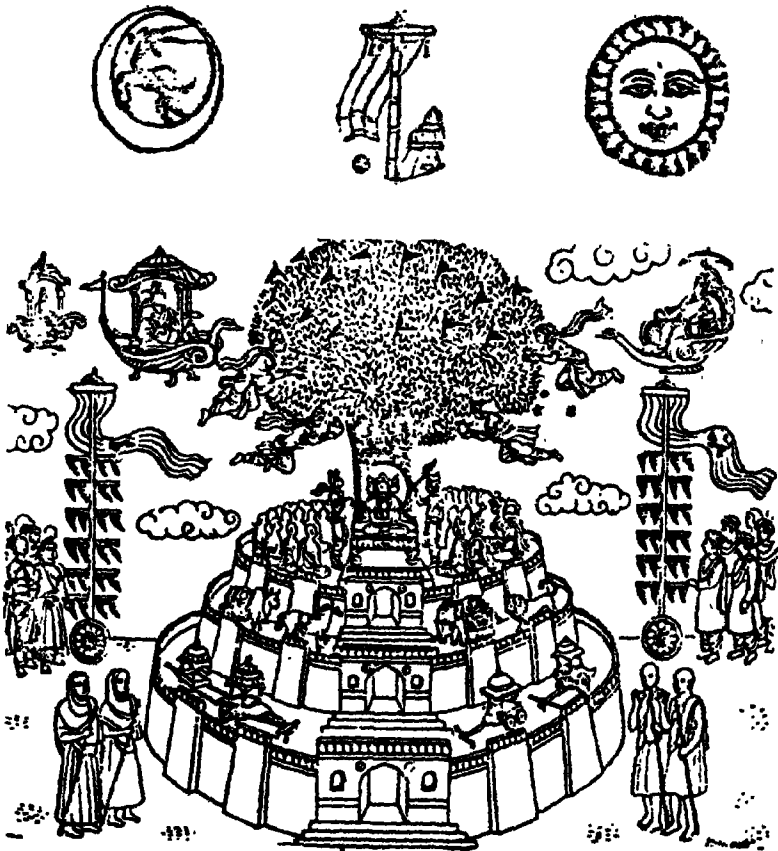
भगवान महावीरका प्रवचनस्थल-समवसरण क्षत्रियकुंड के तीन पर्वतोंपर अलग-अलग समवसरणों में क्रमशः १. अपने ब्राह्मण-पिता-माता को। २. अपने दामाद जमालीको ५०० क्षत्रियों केसाथ। ३. पुत्री प्रियदर्शनाको १००० क्षत्रियाणियों केसाथ दीक्षाएं दीं। इसलिए तीनों पर्वतोंका नाम चक्कणणी हुआ।

तीर्थंकर भगवन्तों के आगे चलनेवाले अष्टमंगल।

५-६-७ भगवान महावीर द्वारा कुंडग्राम में दीक्षाएं

भगवान महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति के बाद क्रमशः कुंडग्राम की तीन पर्वतघाटियों पर दीक्षाएं दीं। (१) अपने ब्राह्मण पिता ऋषभदत्त तथा ब्राह्मणी माता देवानन्दा को एक पर्वतघाटी पर दीक्षाएं देकर अपने शिष्य बनाये। (२) दूसरी बार अपने जमाता जमाली को दूसरी पर्वतघाटी पर ५०० राजपुतों के साथ दीक्षाएं देकर अपने शिष्य बनाये और (३) तीसरी बार तीसरी पर्वतघाटी पर अपनी पुत्री प्रियदर्शना को १००० क्षत्रियाणियों के साथ दीक्षाएं देकर अपनी शिष्याएं बनायीं। इन तीनों पहाडियों के नाम आज भी **चक्कणाणि** प्रसिद्ध हैं। जिसका अर्थ **णाणी+चक्क**=णाणी अर्धमागधी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ 'ज्ञानी' है। यानी केवलज्ञानी (तीर्थंकर महावीर) ने, चक्क भी अर्धमागधी भाषा का शब्द है जिस का अर्थ **'चक्र' होता है यानी धर्मप्रकाशकचक्र** अर्थात केवलज्ञानी तीर्थंकर महावीर ने इन तीन पर्वतघाटियों पर क्रमशः तीन बार पधारे और धर्मप्रकाशक चक्रस्थल (समवसरणों) में दीक्षाएं देकर धर्मतीर्थ में वृद्धि की। तीन पहाडियों के नाम **चक्क-णाणि** होने से स्पष्ट हो जाता है कि (१) ब्राह्मण माता-पिता, (२) जमाली आदि एवं (३) प्रियदर्शना आदि को भगवान ने अलग-अलग समवसरणों में दीक्षाएं दीं। अतः भगवान महावीर तीन बार कुंडपुरनगर में पधारे। इससे यह भी स्पष्ट है कि ब्राह्मणकुंड और क्षत्रियकुंड (कुंडपुरनगर) बहुत बड़े नगर थे। जो (१+१+२+३=७) दो किन्दआनी और तीन चक्रणणी जैसे कि सात पहाड-पहाडियों से घिरे हुए थे। एक मक्क यानी, एक दिक्करानी यही राजा सिद्धार्थ की राजधानी थी। इन सातों के नामकरण भगवान महावीर की जीवन-चर्या के आज भी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। स्थानीय आबाल-वृद्ध जनता आज भी इन पर्वतघाटियों को इन्हीं नामों से पहचानती है। परन्तु कालप्रभाव से इन के नाम पडने का कारण भूल चुके हैं। ये सब प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध करते हैं कि भगवान महावीर का जन्मस्थान क्षत्रियकुंड यही था। वैशाली में अथवा कुंडलपुर में एक भी पहाड नहीं है। इस क्षेत्र के विषय में हम आगे सब विस्तार से विश्लेषण करेंगे।

पहले हम दिगम्बर संप्रदाय तथा आधुनिक वैशाली शोधकर्ताओं की भगवान महावीर के जन्मस्थान की मान्यताओं पर विचार करेंगे।

१ हम लिख आये हैं कि इनकी प्राचीन मान्यता मगध जनपद अन्तरगत नालंदा से दो मील की दूरी पर कुंडलपुर (बुड़गांव) को भगवान महावीर के

जन्मस्थान की है। ऐसा मानकर ही यहां उन लोगों ने दिगम्बर मंदिरों की स्थापनाएं की। आज तक ये लोग इसे ही जन्मस्थान मानकर वहां यात्रा-दर्शन-पूजा-अर्चना के लिये जाते रहे हैं।

वर्तमान में दिगम्बर मुनि और गृहस्थ विद्वान स्व० कामताप्रसाद और स्व. डा. हीरालाल जैन आदि कुंडलपुर को जन्मस्थान मानने में भूल स्वीकार कर चुके हैं। वे कहते हैं कि हम दिगम्बर जैनों ने पुरातत्व और "ऐतिहासिक प्रमाणों के अधार पर नहीं केवल कुंडपुर के नाम साम्य से तथा भ्रांत जनश्रुतियों के आधार पर कुंडलपुर में भगवान महावीर के जन्मस्थान की स्थापना कर दी थी।" "वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से वैशाली भगवान महावीर का जन्मस्थान है।

(२) अब इनकी नयी मान्यता वैशाली की भगवान महावीर के जन्मस्थान मानने पर विचार करें—

(क) दिगम्बर विद्वान स्व. कामताप्रसाद अपनी पुस्तक भगवान महावीर पृ. ५५ में लिखता है कि—

"शोभे दक्षिण दिश गुणमाल, महाविदेह देश रसाल।
ताके मध्य नाभिवत जान कुंडलपुर नगरी सुखधाम।।१।।

इस पद्य में कुंडलपुर नगर को महाविदेह मे कहा गया है।

(ख) स्व. डा. हीरालाल लिखते हैं—

(१) दिगम्बर पुष्पदंत कृत महापुराण में कहा है कि "जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित कुंडपुर के राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के यहां चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जन्म होगा।"

इस से इतना तो स्पष्ट है कि भगवान का जन्मस्थान कुंडपुर है। पर कौन से जनपद में है, इस का उल्लेख नहीं किया गया। (२) **दिगम्बर पूज्यपादस्वामी** कृत निर्वाणभक्ति में कहा है कि— "राजा सिद्धार्थ के पुत्र महावीर का जन्म भारतवर्ष के विदेह कुंडपुर में हुआ।"

इस पद्य में कुंडलपुर नगर को महाविदेह में कहा है।

(ख) डा. हीरालाल जैन कहते है कि (३) दिगम्बर **जिनसेन** ने हरिवंशपुराण में कहा है कि—

"जम्बुद्वीप के भरतक्षेत्र में विशाल विख्यात और स्वर्ग के समान विदेह देश में कुंडपुर नाम का नगर ऐसा शोभायमान दिखाई देता है मानो वह जल का कुंड ही हो तथा जो इन्द्र के सहस्र नेत्र की पंक्ति रूपी कमल से मंडित है।"

(४) दिगम्बर गुणभद्र कृत उत्तरपुराण में कहा है कि– "इसी भरतक्षेत्र के विदेह नाम के देश में कुंडपुर के राजा के भवन में वसुधारा की वृष्टि हुई।[31]

उपर्युक्त नं. क में कुंडलपुर नगर को महाविदेह में कहा हैं। किन्तु यहां न तो भारतवर्ष के विदेह जनपद का संकेत है और न ही भगवान महावीर की जन्मभूमि कुंडपुर का ही उल्लेख है। यहां तो मात्र कुंडलपुर को महाविदेह क्षेत्र में कहा है जो कि जैनभूगोल के अनुसार १५ कुर्मभूमियां मानी हैं। ५ भरत, ५. ऐरावत और ५. महाविदेह जो कि (एक महाविदेह, एक भरत और एक ऐरावत जम्बूद्वीप में हैं। ये तीनों दो-दो घातकीखंडद्वीप में हैं और ये तीनों दो-दो आधा पुष्करवरद्वीप में है। भगवान महावीर का जन्म जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में हुआ था। परन्तु महाविदेह भरतक्षेत्र के भारत में नहीं हुआ था। जम्बूद्वीप में जो महाविदेह है वह भरतक्षेत्र के भारत में नहीं है। वह जम्बूद्वीप के मध्य में है और वह भरतक्षेत्र में बहुत दूर विद्यमान है। जो इस भरतक्षेत्र की पूर्वदिशा में है। न कि दक्षिणदिशा मे। यदि इस महाविदेह में कोई कुंडपुर अथवा कुंडलपुर है तो वह भगवान महावीर का जन्मस्थान नहीं हो सकता। अतः यह लेखक की कोरी कल्पना मात्र है। श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों की मान्यता है कि पांचों महाविदेहों में वर्त्तमानकाल में कुल मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। जबकि भरतक्षेत्र में वर्तमान में एक भी तीर्थंकर नहीं है। अतः इस प्रमाण से वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान मान लेना एकदम अनुचित है। श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों के साहित्य में महाविदेह केलिये विदेह शब्द का भी प्रयोग पाया जाता है। दिगम्बर साहित्य में उन पांचों महाविदेहों में विद्यमान बीस तीर्थंकरों की संस्कृत भाषा में रचित पूजाओं में विदेह शब्द का प्रयोग महाविदेह केलिये हुआ है जिसका अर्थ है–

१- जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप पुष्करार्द्धद्वीप में पांच विदेह हैं। प्रत्येक विदेह में चार-चार तीर्थंकर विद्यमान है। उन प्रत्येक तीर्थंकर की मैं पूजा करता हूं।[31]

२- मैं सीमंधर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूं। दुःख का दमन करने वाले युगंधर स्वामी को नमस्कार करता हूं। बाहु और सुबाहु स्वामी को नमस्कार करता हूं। चारों तीर्थंकर जम्बूद्वीप के विदेह में विद्यमान हैं (और मोक्ष निर्वाण प्राप्त करेंगे)।[32]

यहां पांचों विदेहों के बीस तथा जम्बूद्वीप के विदेह के सीमंधर आदि चार तीर्थंकर इस समय जो विद्यमान हैं उन की पूजा में महाविदेह के स्थान पर विदेह शब्द का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त नं. ख में जो स्व० दिगम्बर डा. हीरालाल जैन ने उद्धरण दिये हैं। उन में भी भगवान महावीर के वैशाली में जन्मस्थान का कोई उल्लेख नहीं है।

नं. १ में कुंडपुर किस जनपद में था न तो इस का कोई उल्लेख है और नहीं वैशाली का संकेत है।

न. २, ३ और ४ में विदेह कुंडपुर का उल्लेख तो है, पर वैशाली का नाम निर्देश नहीं है।

दिगम्बर आचार्यपुष्पदंतकृत महापुराण में वैशाली को सिन्धु जनपद में माना है। यथा–

"सिन्धुवसई वइसालीपुर वीर"

अर्थात्- वैशाली सिन्धु जनपद में है।

२. दिगम्बर संस्कृत उत्तरपुराण में कहा है–

"सिन्ध्वाख्य भूभृद् विशाली नगरेऽभवत्।
चेटक ख्यातोऽति विख्यातो विनीत परमार्हतः।।"

अर्थात्– सिन्धु जनपद में वैशाली नाम की नगरी थी। वहां अतिविख्यात परमार्हत (परमजैन) विनीत चेटक राजा था

१. उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि दिगम्बरों ने चेटक की वैशाली नगरी सिन्धदेश (वर्त्तमान पाकिस्तान) में मानी है। जो कि इतिहास और भूगोल से एकदम निराधार है। २. कुंडपुर भगवान महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ की राजधानी विदेह जनपद में थी जहां भगवान महावीर का जन्म हुआ था यह भी एकदम निराधार है। क्योंकि ऐसा उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। अत: जिन उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर वर्त्तमान दिगम्बर विद्वानों ने विदेह जनपद की वैशाली नगरी को महावीर का जन्मस्थान मानकर यहां अपने नये तीर्थ की स्थापना की है कितनी निराधार और हास्यास्पद है। अत: यह स्पष्ट है कि दिगम्बरमत के अनुसार भी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के भारतवर्ष में विदेह जनपद की राजधानी वैशाली को ही भगवान महावीर का जन्मस्थान मानना एकदम भ्रामक है और यह भी स्पष्ट है कि इन की प्राचीन मान्यता-मगध जनपद में नालंदा के निकट कुंडलपुर को महावीर का जन्मस्थान मानना इन्हीं के शास्त्र प्रमाणों से एकदम अप्रमाणिक सिद्ध होता है। ३. अर्द्धमागधी जैनागमों (श्वेताम्बर जैनों द्वारा मान्य) में यह कहीं भी निर्दिष्ट नहीं है कि कुंडपुर विदेह जनपद में था। परन्तु जिन दिगम्बर पुराणों और कथा-चरित्र-ग्रंथों के उपर्युक्त

प्रमाण दिये गये हैं वे सब विक्रम की नवीं से पंद्रहवीं शती के आचार्यों-विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिन्हें भूगोल का भी ज्ञान नहीं था इन्होंने भगवान महावीर के मामा (दिगम्बरमत से नाना) राजा चेटक को सिन्धदेश की वैशाली का लिखा है अतः भगवान की माता त्रिशलारानी सिन्धुदेश की बेटी और महावीर सिन्धुदेश के दोहित्र थे, ऐसा प्रमाणित करके अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन ही किया है। यह भी स्पष्ट है कि न तो भूतकाल में न वर्त्तमान काल में सिन्धुदेश में वैशाली नाम की नगरी का इतिहास पुस्तकों में उल्लेख पाया जाता है और न ही समस्त ऐतिहासिक, भौगोलिक उल्लेखों और घटनाओं से इसकी संगति बैठ सकती है।

भगवान महावीर के समय में सिन्धु-सौवीर जनपद में परमाहर्त महाराजा उदायण का राज्य था जो विदेह जनपद की राजधानी वैशाली के महाराजा चेटक का दामाद था। जिसने भगवान महावीर से मुनि दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया था। अतः चेटक यहां का निवासी नही था। यदि चेटक का उल्लेख विदेह में किया गया है तो २५०० वर्षों तक वे लोग अनभिज्ञ कैसे रह गये थे और नालंदा के निकट बडगांव के कुंडलपुर को महावीर का जन्मस्थान क्यों मानते रहे?

इन लोगों ने अपनी इस अर्वाचीन मान्यता को सत्य सिद्ध करने केलिये जैन श्वेताम्बर परम्परा मान्य अर्द्धमागधी के प्राचीन आगम साहित्य के जो प्रमाण दिये हैं, उन के वास्तविक अर्थों के मनमाने अर्थ करके कितना अनुचित किया है। इसका विवेचन हम आधुनिक पाश्चिमात्य एवं भारतीय विद्वानो के जन्मस्थान की मान्यता में आगे करेंगे।

३. कुछ आधुनिक पाश्चिमात्य एवं भारतीय इतिहासकारों की भ्रांत मान्यताएं

हम पहले लिख आये हैं कि डा. हर्मन जैकोबी ने कोटिग्राम डा. हार्नले, ने कोल्लाग, पं. कल्याणविजय ने बसाढ़ को और आचार्य विजयेन्द्र सूरि ने वासुकुंड, अथवा भ्रांतिक, अथवा वैशाली और कोटिग्राम के मध्य में कोई स्थान को जो वैशाली के अन्तर्गत भगवान महावीर का जन्मस्थान माना है। यह बात भी ध्यानीय है कि इन चारों की जन्मस्थान की मान्यता में मतैकता नहीं है। यह आश्चर्य की बात है।

१. इन की मान्यताओं को आधार मानकर कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी इन में से किसी एक स्थान को महावीर भगवान का जन्मस्थान स्वीकार करलिया

है। पर इनमें भी मतैकता नहीं है। इस का कारण यह है कि इन लोगों ने गंभीरता से निर्णय न लेकर मात्र अटकलपच्ची से काम लिया है।

२. डा. जैकोबी, डा. हार्नले ने जैनशास्त्रों की विवेचना करते हुए कुछ भ्रांत धारणाओं की स्थापनाएं की हैं। डा. हार्नले के मतानुसार वाणीयग्गाम (वाणिज्यग्राम) वैशाली का दूसरा नाम था[42], यानि वैशाली और वाणिज्यग्राम को एक माना है। अतः वैशाली भगवान महावीर का जन्मस्थान था।[43]

३. डा. जैकोबी ने ई. स. १९३० में एक लेख लिखा था, जिसमें वैशाली, वाणिज्यग्राम और कुंडग्राम का समूह ही वैशाली था। कुंडग्राम के निकट कोल्लाग एक मोहल्ला था ऐसा उल्लेख किया है। [44]

इन भ्रांत मान्यताओं की समीक्षा

१. त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र में भगवान के वैशाली से वाणिज्य ग्राम की ओर जाने का उल्लेख है। इस से स्पष्ट है कि ये दोनों प्रथक-पृथक थे।[45] यानि वैशाली से विहार करके भगवान नाव द्वारा वाणिज्यग्राम की ओर गये और रास्ते में उन्हें गंडकी नदी को पार करना पड़ा। अतः वैशाली और वाणिज्यग्राम के बीच में पानी से भरी हुई गंडकी नदी थी। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। इसलिये दोनों नगर अलग-अलग थे। एक गंडकी नदी के पूर्वीतट पर तथा दूसरा पश्चिमीतट पर था। इसलिये यह स्पष्ट है कि वैशाली और वाणिज्यग्राम एक नहीं थे। पर ये दोनों थे विदेह जनपद में ही।

२. शास्त्रों में क्षत्रियकुंड के पास गंडकी नदी अथवा इस के तट पर कुंडपुर अथवा क्षत्रियकुंड होने का एक उल्लेख भी नहीं मिलता। इसलिये क्षत्रियकुंड के पास गंडकी नदी थी यह भी सप्रमाण नहीं है। इसलिये मानना चाहिये कि वैशाली और कुंडग्राम एक नहीं थे। अतः वैशाली भगवान महावीर का जन्मस्थान नहीं हो सकता।

३. अतः वैशाली, कुंडग्राम एवं वाणिज्यग्राम एक नहीं हो सकते। क्योंकि इन्हें एक मान लेने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कोल्लाग वैशाली का मोहल्ला नहीं था। वैशाली गंडकी नदी के पूर्वीतट पर था, वाणिज्यग्राम पश्चिमीतट पर था। यहां से उत्तर-पश्चिम-कोण में कोल्लाग गांव था।

जैनशास्त्रों में कोल्लाग चार कहे हैं। यथा (१) विदेह के वाणिज्यग्राम के निकट कोल्लाग।[46] (२) क्षत्रियकुंड के पास कोल्लाग[47] (३) राजगृही के पास कोल्लाग और[48] (४) चम्पा के पास कोल्लाग[49]। (ये चारों अलग-अलग जनपदों

में हैं। आज भी एक नाम के नगर, गाँव आदि अलग अलग जनपदों में विद्यमान पाये जाते हैं। (क) जैसे कि कश्मीर की राजधानी श्रीनगर है और हिमाचल प्रदेश में भी श्रीनगर नाम का एक नगर है। ये दोनों हिमालय पर्वत पर हैं। (ख) गुजरात जनपद में कालोल के निकट बीजापुर नगर है और महाराष्ट्र में भी बीजापुर एक नगर है (ग) मध्यप्रदेश में नागपुर नगर है और उत्तरप्रदेश में हस्तिनापुर का एक प्राचीन नाम नागपुर था। (घ) गुजरात एक जनपद है और पंजाब (पाकिस्तान) में गुजरात नाम का नगर है। (ङ) पंजाब (पाकिस्तान) में लाहौर के निकट शाहदरा नाम का नगर है और दिल्ली का एक उपनगर भी शाहदरा है इसलिये समझदारी यही है कि एक नाम के नगरों में किसी एक की अवस्थिति का भौगोलिक, ऐतिहासिक परिधि के अनुसार ही निर्णय किया जावे तभी सत्य को जानना संभव है।

४. डा. हार्नले ने कोल्लाग के निकट एक दुइपलासचैत्य उद्यान बतलाया है और उसपर णायकुल (ज्ञातृकुल) का अधिकार बतलाया है। डा. महोदय के विचार से मगध जनपद में णायवंसखंड उज्जाण और दुइपलासचैत्यउज्ज़ाण एक ही है। डा. महोदय ने जैनग्रंथ के प्रमाण दिये हैं। उन ग्रंथ के अनुसार दुइपलासउज्जाण तो विदेह जनपद वाणिज्यग्राम के उत्तर में था और णायखंडवणउज्जाण मगध जनपद में लच्छुआड़ के क्षत्रियकुंड नगर के बाहिर था। इसलिये दोनों एक नहीं हो सकते। विपाकसूत्र में विदेह जनपद में वाणिज्यग्राम की उत्तर-पश्चिम दिशा[50] में दूहपलासचैत्य नाम का उद्यान था और कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका में वर्णन है कि "भगवान महावीर कुंडपुर (क्षत्रियकुंड) के मध्य में होते हुए (दीक्षा लेने के लिये) निकले और निकलकर ज्ञातखंड उद्यान में श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के पास गए।[51] इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों उद्यान भिन्न-भिन्न थे। एक विदेह में और दूसरा मगध में।

५. डा. हार्नले और डा. जैकोबी ये दोनों ही सिद्धार्थ को राजा न मानकर एक सामान्य उमराव सरदार मानते हैं। उन का विचार है कि दो एक स्थानों के सिवाय ग्रंथों में सिद्धार्थ के साथ क्षत्रिय शब्द का ही प्रयोग किया गया है परन्तु उसके विपरीत जैनग्रंथों में न केवल सिद्धार्थ को राजा ही कहा गया है परन्तु उसके अधीनस्थ सेना के २० प्रकार के अन्य कर्मचारियों का उल्लेख भी किया गया है। कल्पसूत्र में लिखा है कि १. सिद्धत्थेण रायो।[52] अर्थात् सिद्धार्थ राजा। २. तेएण से सिद्धत्थे राया त्रिशला खत्तियाणीए[54] अर्थात्— वह सिद्धार्थ राजा और त्रिशला क्षत्रियानी इन दोनों उद्धरणों में सिद्धार्थ को राजा बतलाया है।

आगे चलकर सूत्र ६२ में लिखा है[54] कि राजा सिद्धार्थ श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान मुकट, अलंकार, छत्र, सफेद चादर आदि से अलंकृत नरेन्द्र थे। प्राचीन साहित्य में नरेन्द्र का प्रयोग राजाओं केलिये हुआ है। उस सिद्धार्थ के अधीनस्थ निम्नलिखित अधिकारी थे।

१. गणनायक २. दंडनायक ३. युवराज ४. तलवर ५. माडम्बिक ६. कौटुम्बिक ७. मंत्री ८. महामंत्री ९. गणक १०. दौवारिक ११. अमात्य १२. चेट १३. पीठमर्द्धक १४. नागर १५. निगम १६. श्रेष्ठि १७. सेनापति १८. सार्थवाह १९. दूत २० संधिपाल

यदि सिद्धार्थ केवल उमराव होते तो उस के लिये श्रेष्ठि शब्द का प्रयोग होता न कि नरेंद्र अथवा राजा का।

क्षत्रिय शब्द का अर्थ साधारण क्षत्रिय के अतिरिक्त राजा भी होता है। ऐसा अभिधान-चिंतामणि कोश में कहा है। अत: सिद्ध है कि क्षत्रिय आदि शब्दों का प्रयोग राजा केलिये भी होता है। प्रवचनसारोद्धार सटीक[55] में भी क्षत्रिय शब्द का प्रयोग महासेन राजा केलिये हुआ है। इसपर टीकाकार ने लिखा है कि चंद्रप्रभस्य महासेन क्षत्रिय राजा।" स्पष्ट है कि प्राचीन परम्परा में राजा के स्थान पर ग्रंथकार क्षत्रिय शब्द का भी प्रयोग करते थे। हमारे इस मत की पुष्टि टाइम्स इन ऐंशेंट इंडिया में डा. विमलचरण ला ने भी की है–

"पूर्वमीमांसा सूत्र द्वितीय भाग टीका में शंकरस्वामी ने लिखा है कि राजा तथा क्षत्रिय शब्द समानार्थक हैं। टीकाकार के समय में भी आंध्रप्रदेश के लोग क्षत्रिय शब्द का राजा केलिये प्रयोग करते थे।

निरियावलिआओ सूत्र ६ (पृ. २७) के अनुसार- वाज्जिगणतंत्र का अध्यक्ष महाराजा चेटक था। उन की सहायता के लिये संघ में से नौ लिच्छवियों और नौ मल्लों को गणतंत्र का शासन चलाने के लिये चुन लिया जाता था। वे संघ-गण राजा कहलाते थे। बौद्ध जातकों के अनुसार इस गणसंघ के ७७०७ सदस्य थे जो राजा कहलाते थे। उन प्रत्येक के अधीन एक उपराजा, सेनापति, भांडागारिक (स्टोरकीपर संग्रहकार) भी थे।[56]

चेटक के गणराज्य की कार्उसिल नौ लिच्छवियों और नौ मल्लों (१८) गणराजाओं की थी। इन प्रत्येक गणराजा की अपनी-अपनी चतुरंगनी सेना थी। जो महाराजा चेटक की सेना के बराबर थी। जब अजातशत्रु (कोणिक) ने वैशाली पर आक्रमण किया तब यहा के वज्जी गणराज्य के शासक चेटक ने अपनी काउंसल के १८ गणराजाओं की सामूहिक सेनाओं और अपनी सेना को

साथ में अपने गणतंत्र राज्य की रक्षा के लिये १२ वर्षों तक कंटकशिला महाप्रलयंकारी युद्ध किया। इस से स्पष्ट है कि चेटक उमरावों का नेता नहीं था। उसकी काउंसल उमरावों की नहीं थी। वह १८ मुकटबद्ध राजाओं की थी। उस काउंसल का प्रधान चेटक था। अतः वह राजाओं का भी राजा-महाराजा था। और वह व्रतधारी दृढ़ जैनधर्मी परमार्हत जैनश्रावक था। इसका विशेष विवरण हम वैशाली के परिशिष्ट में करेंगे।

राजा सिद्धार्थ किसी भी गणतंत्र राज्य में शामिल नहीं था। वह एक स्वतंत्र सत्ताधारी राजा था और उस की राजधानी मगध जनपद में कुंडपुर महानगर थी। वह उमराव नहीं था परन्तु समृद्धिशाली राज्य का स्वामी था और इसका सारा परिवार चुस्त दृढ़ जैनधर्मी था। जब राजा सिद्धार्थ के यहां भगवान महावीर का जन्म हुआ तब उसने बन्धीखानों (जेलों) से कैदियों को मुक्त कर दिया था। कल्पसूत्र में कहा है कि धन, धान्य, राज्य, रथ, सेना, वाहन, कोष, कोठार, नगर, अन्तःपुर तथा यश आदि से उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।[57] स्वर्ण, प्रीति, सत्कार धीरे-धीरे बढ़ने लगें तथा सामंत और राजा वश में होने लगे।

भगवान महावीर ने दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले गृहस्थावस्था में दान देना शरू किया। पूरे वर्ष में उन्हीं ने तीन अरब अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख (३८८००००००००)मोनैयों (सोने के सिक्कों) के मूल्य की सब वस्तुओं को दान में दिया।

यदि सिद्धार्थ साधारण उमराव या सरदार होता या एक मुहल्ले का नेता होता तो न उसके जेलखाने होते, न सेना होती और न उसके राजदरबारी होते। न इतनी ऋद्धि-समृद्धि होती तथा न इतने ठाठ-बाठ से भगवान का जन्म महोत्सव मनाया जाता और न महावीर इतनी धनराशि से वर्षीदान कर पाते। अतः उपर्युक्त विवरण से मानना पड़ता है कि सिद्धार्थ एक बड़े समृद्ध-राज्य के एकसत्ताक स्वामी शक्तिशाली राजा थे।

अब हम इस बात का भी स्पष्टीकरण करेंगे कि राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला केलिये शास्त्र में अधिकतर क्षत्रिय क्षत्रियाणी शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है, राजा-रानी का प्रयोग क्यों नहीं किया गया? इस का खुलासा यह है कि आवश्यक निर्युक्ति की टीका में कहा है कि महावीर आदि पांच तीर्थंकरों ने राजकुल में, विशुद्ध वंश में, और क्षत्रियकुल में जन्म लिया। कई राजा क्षत्रिय कुल मे जन्म नहीं लेते— जैसे नन्द राजा का जन्म आदि। इसलिये यहां क्षत्रियकुल और राजकुल भी कहा है।[58]

यह बात ध्यानीय है कि क्षत्रियकुल के राजवंशीय राजकुमार में ही तीर्थंकर बनने की योग्यता और सामर्थ्य होता है। उत्तम कुल, जाति, खानदान के उत्तम संस्कारों का जन्म से ही उत्तम प्रभाव रहता है। इसलिये प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महावीर तक सब क्षत्रिय राजकुल के ही सपूत थे।

पुनः कहते हैं कि **"क्षत्रियवंशविनाऽपि राजकुलानि स्युरित्याह क्षत्रियकुलत्वरित।"**

अर्थात् क्षत्रियकुल के बिना भी राजकुल होते हैं। (यथा-ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र कुलों के भी राजा होते हैं।) इसलिये यहां क्षत्रियकुल कहा है। यानि क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ और क्षत्रियाणि रानी त्रिशला।

७. डा. हार्नले का मत है कि कोल्लाग सन्निवेश भगवान महावीर का जन्म स्थान था। यह विदेह जनपद की राजधानी वैशाली का एक मोहल्ला था। कोल्लाग वैशाली का मोहल्ला होने से वैशाली में ही भगवान महावीर का जन्मस्थान माना जाएगा।

हम लिख आये हैं कि विदेह का कोल्लाग और वैशाली दोनों अलग-अलग नगर थे। वैशाली गंडकी नदी के पूर्वीतट पर थी। और कोल्लाग एवं वाणिज्यग्राम गंडकी नदी के पश्चिमीतट पर थे। शास्त्रों के प्रमाण देकर हम यह भी स्पष्ट कर आये हैं कि भगवान महावीर की जन्मभूमि न तो कोल्लाग थी न वैशाली, परन्तु मगध जनपद में जमुई सबडिविजन में लच्छुआड़ के निकट कुंडलपुर नगर (क्षत्रियकुंड) में थी। यहां भगवान ने ३० वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन बिताया था। इस नगर के बाहर णायखंडवणउज्जाण में भगवान ने दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा लेने के बाद उसी दिन यहां से स्थलमार्ग से वे कुमारग्राम पहुंचे एवं रात वहीं व्यतीत की। अगले दिन प्रातःकाल वहां से कोल्लाग सन्निवेश गये। यहां बहुल ब्राह्मण के घर उन्होंने छठ (दो उपवास) तप का पारणा खीर से किया।

शास्त्र में कहा है कि खंडवणउद्यान में दीक्षा लेने के बाद भगवान महावीर विहार करके कुमारग्राम गये। वहां जाने केलिये दो रास्ते थे- एक जलमार्ग, दूसरा स्थलमार्ग। भगवान स्थलमार्ग से गये तब दिन का एक मुहूर्त (४८ मिनट) शेष था।[59]

८. जेकोबी का मत है कि जैनग्रंथों में त्रिशला माता को सर्वत्र क्षत्रियाणि रूप में लिखा गया है देवी रूप में नहीं। हम ऊपर लिख आये हैं कि कोशकारों और टीकाकारों ने क्षत्रिय शब्द का अर्थ राजा भी किया है। उसी के अनुसार

क्षत्रियाणी का अर्थ रानी भी होता है और देवी भी होता है। सामान्यतः भारतीय शब्द प्रयोग की परम्परा यह है कि क्षत्रियवंश से सम्बन्धित होने के कारण नाम के पीछे पुनः पुनः क्षत्रिय शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। परन्तु यदि क्षत्रियवंश से संबोधित होने पर जब कोई वीरोचित कार्य करता है अथवा राजकुल से संबोधित होता है तो कहा जाता है कि क्षत्रिय ही ऐसा ही हो! यह उसके प्रति सम्मान प्रकट करने केलिये क्षत्रिय शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त जैन ग्रंथों में कितने ही स्थानों पर त्रिशला माता केलिये देवी शब्द का भी प्रयोग किया गया है। दिगम्बर पूज्यपाद कृत दशभक्ति में यह पंक्ति इस प्रकार है–

(क) **देव्यां प्रियकारिण्यां** सुस्वप्नान संप्रदर्शय।।
(ख) दधार **त्रिशलादेवी** मुदिता गर्भमद्भुतम्।।३३।।
(ग) उपसृत्यांगतो **देव्याश्चास्वामिकां ददौ**।।३४।।
(घ) **देव्या** पार्श्वे च भगवन्प्रतिरूपं निधाय सः।।५५।।
(ङ) उवाच **त्रिशलादेवी** सदने क्षमस्त्वागमः।।१४१।।
(च) तस्स घरे तं सहार **तिसला-देवी** कुच्छंसि ।।५१।।
(छ) सिद्धत्थो य नरिंदो **तिसला देवी** रायंतो ओ य ।।६८।।
(नेमिचंद्र महावीर चरित्रं)

त्रिशला माता के नाम के साथ सात संदर्भों में **देव** शब्द का प्रयोग यहां पर दिया ही है। खोज करने से बहुत कुछ और भी मिल सकता है। अतः त्रिशला-रानी अवश्य थी। अब संदेह को कोई अवकाश नहीं रहा।

९. डा. हार्नले ने सन्निवेश का अर्थ मोहल्ला लिखा है और डा. जैकोबी ने इस का अर्थ पड़ाव लिखा है। दोनों ने ही इस का अर्थ भ्रामक किया है। क्योंकि सन्निवेश के जहां बहुत से अर्थ हैं वहां एक अर्थ **नगर** भी है– (पाइय. सद्द-महण्णवो कोश पृ. १०५४) में सन्निवेश के निम्न अर्थ किये हैं।

(क) १- नगर के बाहर का प्रदेश। २. **गांव-नगर आदि स्थल**। ३. यात्रियों का डेरा। ४. ग्राम-नगर आदि। ५. रचना आदि।

(ख) भगवतिसूत्र सटीक प्रथम खंड पृ. ८५ में सन्निवेश का निम्न अर्थ किया हैं।

सन्निवेशोघोषादि एषां द्वन्द्व सतत्सति अथवा **ग्रामादयो** ये सन्निवेशस्ति तथा तेषु।।

(ग) निशीथचूर्णिमें सन्निवेश का अर्थ दिया है कि–
सत्थवासण थाणं सन्निवेसो **गामो** वा पीडितो सन्निवेट्ठो जत्तागतो वा लोगे सन्निवेट्ठो सो सन्निवेसं पण्णते।। अभिधान राजेन्द्र भाग ७

(घ) बृहत्कल्पसूत्र विभाग २ पत्र २४२-४५ में लिखा है कि निवेशो नाम यत्र सार्थवा वसितः आदि ग्रहणेन ग्रामे वा अन्यत्र प्रस्थिताः सन् यत्रान्ते वासमधिवस्ति यात्रियो ःवागतो' लोके। यत्र अधिष्ठति एष सर्वेऽपि निवेश उच्यते।।

१० पटेल गोपालदास जीवाभाई द्वारा संपादित-श्री महावीर कथा पृ. ७९ से ८५ में (१) डा. हार्नले के आधार पर राजा सिद्धार्थ को सामान्य क्षत्रिय बतलाते हुए भी उन के राजत्व को स्वीकार कर लिया है (पृ. ७९) (२) इसी प्रकार विदेह, मिथिला, वैशाली और वाणिज्यग्राम को एक मान लिया है इस का प्रतिवाद हम पहले कर चुके हैं कि ये सब नगर अलग अलग थे। (३) पृ. ८१ पर कुल का अर्थ घर किया है। कुल का अर्थ घराना होता है घर नहीं (४) पृ.२८९ में आनन्द श्रावक को ज्ञातृकुल का लिखा है। जो कि नितांत भ्रामक है। आनन्द कौटुम्बिक था न कि ज्ञातृक। बिना आगे-पीछे का विचार किये लिखने से ऐसी भूलें पग-पग पर होना संभव है।

११. उवासगदसाओ आगम में प्रयुक्त **'उच्च-नीच-मज्झिम कुलाई'** के आधार पर डा. हार्नले ने वाणिज्यग्राम के तीन विभाग करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार दुल्व के आये वैशाली वर्णन के साथ उसका मेल बैठाने का प्रयत्न करके वैशाली और वाणिज्यग्राम को एक बनाने की चेष्टा की है। जैसे साधुओं केलिये नियम है कि साधु कहीं भी ग्राम, नगर, सन्निवेश या कर्वट आदि में भिक्षार्थ जावे। वहां बिना वर्ण और वर्ग विभेद के ऊंच, नीच और मध्यम सभी वर्गों में भिक्षा ग्रहण करने से जिस प्रकरण को डा. महोदय ने उद्धृत किया है, वहां भी भगवान ने गौतम स्वामी को भिक्षा केलिये अनुज्ञा देते हुए ऊंच, नीच और मध्यम सभी वर्गों में भिक्षा करने का आदेश दिया है। दशवैकालिक सूत्र (हरिभद्रीय टीका पत्र १६३ में साधु ःकेलिये' निर्देश है कि—

"गोचरः मध्यमाधमोच्च-कुलेष्व रक्ताद्विष्टस्य भिक्षाटनम्।।

इसलिये इसे अपनी मान्यता को पुष्ट करने केलिये डा. महोदय का प्रयत्न व्यर्थ है। आगम अंतगढदसाओं में भी कहा गया है कि भगवान ने पुलासपुर द्वारिकादि में ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया है। ऐसा ही वर्णन भगवतीसूत्र आदि अन्य आगमों में भी आये हैं। अतः इसे वैशाली के प्रकरण में कैसे जोड़ा जा सकता है?

१२. डा. जेकोबी ने कोटिग्राम और हार्नले ने कोल्लाग, वसुकुंड आदि को ध्वनात्मकसाम्य के आधार पर कुंडग्राम से मिलाया है। किन्तु जैनसूत्रों में कुंडग्राम का बौद्धसूत्रों के कोटिग्राम में रूपांतरण किसी भी युक्ति से संभव नहीं

है। कुंड अथवा कोटि सर्वथा भिन्न हैं। कोट से कोटि का विकास हो सकता है। पुंड्रवर्धनभुक्ति में कोटिवर्ष नामक स्थान का विकास उसके प्राचीन नाम देवीकोट के कोट से हुआ था। संभव है कि वैशाली के इस दक्षिण सीमांत पर कोई कोट या किला रहा हो जिससे कोटिग्राम नाम का विकास हुआ हो। किन्तु कुंड से तो इसकी कोई संगति स्थापित नहीं होती।ब्राह्मणकुंड और वासुकुंड में भी केवल कुंड शब्द की समानता हैं। अन्यथा ब्राह्मण और वसु सर्वथा भिन्न शब्द हैं। ब्राह्मण का एक प्राकृत रूप 'माहण' जैनसूत्रों में मिलता है और दूसरा प्राकृत रूप बमन आदि अशोक के शिला लेखों में मिलता है। ये दोनों प्राकृत रूप बिहार राज्य के कुछ ब्राह्मण ग्रामों के **'माहना और बमनगामा'** जैसे आज भी मगध जनपद के लच्छुआड़ के आस-पास विद्यमान हैं। अतः ब्राह्मणकुंड से वासुकुंड का विकास नहीं हो सकता। वासो का वासव या वसु का विकास हो सकता है। इस प्रकार ब्राह्मणकुंडग्राम अथवा क्षत्रियकुंडग्राम का इससे कोई संबंध नाम के अधार पर नहीं बन पाता है।

भूगोल की दृष्टि से भी कोटिग्राम वैशाली का एक मोहल्ला नहीं हो सकता क्योंकि जब बुद्ध अपनी अंतिम यात्रा में अम्बपालिका उद्यान से वैशाली को जा रहे थे तो रास्ते में अम्बपालिका, नालंदा, पाटलीग्राम, कोटिग्राम, नादिका, वैशाली ये नगर आये थे। इसलिये सब नगर-ग्राम अलग अलग थे। एवं कोटिग्राम से वैशाली तीसरा नगर था।(७)

१३. इतिहासकारों ने जिन प्राच्यविदों के मतों को प्रमाणिक मानकर वैशाली को भगवान महावीर का जन्मभूमि मान लिया है। उन में भी वैशाली में कुंडग्राम की पहचान के संबंध में मतभेद है, एक मत नहीं है। (१) बिसंटस्मिथ ने बसुकुंड को ब्राह्मणकुंडग्राम माना है। क्षत्रियकुंडग्राम केलिये वह एकदम मौन है। संभव है कि क्षत्रियकुंडग्राम के संबंध में वह जेकोबी के मत से सहमत हो। लेकिन बौद्धसूत्रों के कोटिग्राम, नादिका और आधुनिक वसुकुंड (प्राचीन नाम वासोकुंड) की भौगोलिक स्थिति यह नहीं है। जो जैनसूत्रों में क्षत्रियकुंड और ब्राह्मणकुंड की है। जैनसूत्रों में क्षत्रियकुंड उत्तरदिशा में और ब्राह्मणकुंड दक्षिणदिशा में निर्दिष्ट है। जब कि वैशाली के मानचित्र में कोटिग्राम और आधुनिक वसुकुंड की स्थिति सर्वथा विपरीत है। वासोकुंड मुख्य वैशाली या विशालगढ़ से ठीक उत्तर में है। बौद्ध महापरिनिव्वाण सुत्त से पता चलता है कि **कोटिग्राम** पटना के सामने वैशाली की दक्षिण सीमान्त पर गंगा तटवर्ती (संभवतः हाजीपुर के समीप) अवस्थित था। बुद्ध पाटलीग्राम से विहार करने के बाद उसके समीप ही गंगा को पार कर कोटिग्राम गये। वहां से आगे बढ़ कर

नांदिका से विहार किया और नांदिका से अम्बपालिका के आम्रवन में पधारे। इस विवरण के अनुसार बुद्ध के इस यात्रा पथ पर क्रमशः पाटलीग्राम (आधुनिक पटना), गंगानदी, कोटिग्राम, नादिका, आम्रपालीवन अथवा वैशाली के भूभाग आते हैं। वैशालीसंघ ने भी जैकोबी के मत को मान्यता नहीं दी। उसने हार्नले के मत का अनुसरण किया है। किन्तु वासुकुंड भगवान महावीर की जन्मभूमि नहीं है।[61]

१४ श्रीमती स्टीवेंसन ने डा. हार्नले की भूलों को दोहराया है और उसने एक और भयंकर भूल की है। उसने अपने ग्रंथ (हार्ट आफ जैनिज्म) पृ. २१-२२ में भगवान महावीर को वैश्यकुलोत्पन्न बताया है। उस की इस स्थापना की पुष्टि किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। उस ने यह ग्रंथ विद्वान की दृष्टि से नहीं लिखा है। इस को पूर्णतः पढें तो लेखिका का विचार पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उसने ग्रंथ को एक मिशनरी की दृष्टि से लिखा है।[62]

वर्त्तमान भारतीय इतिहासकारों की भ्रांत मान्यताएं

१. **आचार्य विजयेन्द्र सूरि** (काशीवाले आ. विजयधर्म सूरि के पट्टधर)। भगवान महावीर के जन्मस्थान केलिये इनके तीन मत हैं- (१) वसाढ़ के निकट बसुकुंड (२) ज्ञातिका (३) वैशाली और कोटिग्राम के बीच कोई स्थान (इन का कोई एक मत निश्चित नहीं) भगवान महावीर का जन्म विदेह जनपद में हुआ था, इसकी पुष्टि के लिये इन्होंने आचार्य नेमिचन्द्र कृत महावीर चरियं का नीचे लिखा प्रमाण दिया है।

"अत्थि इह भारहे वासे मज्झिम देसस्स मंडनं परमं।।
सिरिकुंडग्गामंनयरं वसुमइ रमणी तिलयं भूयं।।"(पत्र २६)

अर्थात्- इस भारतवर्ष के **मध्यदेश में परममंडन श्री कुंडग्राम नगर** जो पृथ्वीतल पर एक अतिसुन्दर तिलकसमान है **ऐसा लगता है।**

ध्यानीय है कि आचार्य श्री ने अपनी खोखली मान्यता की पुष्टि केलिये उपर्युक्त उद्धरण के अर्थ में नीचे लिखी बातें और जोड़ दी हैं। १. **विदेह जनपद में** और २. **ऐसा लगता है।** यानि कुंडग्रामनगर (जो भगवान महावीर का जन्म स्थान है।) वह विदेह जनपद में है ऐसा (मुझे) लगता है। इन शब्दों से यह प्रतिध्वनित होता है कि- "कुंडग्रामनगर विदेह जनपद में था ऐसा संभव हो सकता है। ये शब्द इन की इस मान्यता से स्वयं ही शंकाशील बतला रहे हैं।[63]

२. पन्यास कल्याणविजय (दादा सिद्धिसूरि के शिष्य) का मत

वैशाली के एक मोहल्ले में भगवान महावीर का जन्मस्थान क्षत्रियकुंड था।

(क) इन्होंने जन्मस्थान वैशाली-विदेह के समर्थन जो दिगंबर साहित्य के प्रमाण दिये हैं इनकी निःसारता दिगंबरों के प्रकरण में कर दी है। इनके जो जन्मस्थान के विषय में अन्य मत हैं अब उन पर विचार करें। (क) इनका मत है कि भारतवर्ष के विदेह में कुंडग्राम में भगवान महावीर का जन्मस्थान है। क्योंकि कल्पसूत्र सूत्र ४०२ में लिखा है कि (ख) **णाए णाएपुत्ते णायकुलचंदे विदेह विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीसं वासाई विदेहसि त्ति कट्टु। यही पाठ आचारांगसूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध भावना अध्ययन सूत्र ४० में भी है।**

कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका में उपाध्याय विनयविजय जी ने विदेह शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है। **(विदेहे) वज्रऋषभनाराचसहनन समचतुस्र संस्थान मनोहरत्वाद् विशिष्टो देहा** (विदेहा = वि–विशिष्ट+देहा–शरीर) यस्य सः विदेहा।

अर्थात् ज्ञात, २. ज्ञातपुत्र, ३. ज्ञात-कुल-चन्द्र, ४. विदेह, ५. विदेहदत्त ६. विदेहजात और ७. विदेह-सुकमाल आदि विशेषण दिये हैं।

पहले तीन विशेषण पिता के पक्ष के हैं, और बाद के तीन विशेषण माता के पक्ष के हैं। एवं अंतिम दो विशेषण भगवान महावीर के पक्ष के हैं। मध्य के चार विशेषणों का अर्थ टीकाकार के आधार से ४. (विदेहे) वज्रऋषभ-नाराच-सहनन समचतुस्रसंस्थान शरीरवाला ५. (वैदेहीदत्त) महावीर ६. (वैदेहीजात) त्रिशला का पुत्र ७. (विदेहेसुमाले) कामदेव के समान सुकुमाल (अंतिम) ८. (तीसं) तीस ९. (वासाइ) वर्षों तक, १०. (वि+देहंसि) शरीर का ममत्व त्याग ११. (कटटु) करके।

भावार्थ- ज्ञातृवंशी, ज्ञातृपुत्र (राजा सिद्धार्थ का पुत्र) ज्ञातृकुल में चन्द्र के समान (शीतल स्वभाव तथा नयनाभिराम स्वभाव वाला) और सुडौल शरीर वाला) माता त्रिशला देवी का पुत्र, कामदेव के समान सुकोमल शरीर वाला, अपने शरीर के ममत्व को छोड़ कर भगवान महावीर तीस वर्षों तक घर में रहे।

आचार्य विजयेन्द्र सूरि जी का कहना है कि उपाध्याय विनयविजय जी का विदेह शब्द का अर्थ संगत नहीं बैठता। मालूम पड़ता है कि आवश्यक चूर्णि के पाठ की तरफ उनका ध्यान नहीं गया। आवश्यक चूर्णि का पाठ यह है।

"... ... नाते नातपुत्ते नातकुल विणिवट्टे (विदेहे) विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसुमाले सत्तुस्सहे समचउरस-संठाणे सहिते वज्जरिसहणाराय-संघयणे अणुलोम वायुवेगे कंकगहणी कवोयपरिणए। (आवश्यक निर्युक्ति पत्र २६२)।

इसमें विदेह शब्द अलग होने पर भी कल्पसूत्र के टीकाकार ने जो अर्थ विदेह का किया है, वह यहां पृथक रूप से है। जो समचऊरससंठाणे सहिते-वज्जरसिहणारायसंघयणे" इन शब्दों से निहत है। इससे मालूम होता है कि उनका लक्ष्य भगवान की जन्मभूमि की और (विदेह) जो मुख्य विषय था न जाते हुए उन के मुख्य लक्षणों पर ही चला गया है।" आचार्य श्री की यह धारणा भ्रमपूर्ण है क्योंकि इस पाठ में विदेह का अर्थ निर्युक्तिकार ने (वि+देह) देहातीत किया है। यानि मोहममता से निर्लिप्त शरीर वाला अर्थ करके उनके निर्दिष्ट शरीर के लक्षण रूप (समरचउरसं संठाण व वज्जरिसह नारायसंघयण अलग लिखा है।

जबकि उपाध्याय जी ने पहले विदेह शब्द केलिये भगवान के विशिष्ट शरीर तथा अंतिम विदेहंसि शब्द केलिये विदेहातीत यानि मोह-ममता से निर्लिप्त शरीरवाला अर्थ किया है। आचार्य श्री ने यदि पहले पाठ पर विशेष ध्यान दिया होता तो वे ऐसी भूल न करते। पहले पाठ में प्रथम विदेह शब्द तथा अंतिम विदेही शब्द का प्रयोग हुआ है। जबकि दूसरे पाठ में विदेह शब्द मात्र एक बार आया है और शरीर का लक्षण अलग दिया है। अतः इन दोनों पाठों में कोई असमानता का प्रसंग न होने पर भी आचार्य श्री ने अपनी मान्यता की पुष्टि केलिये ही वास्तविक अर्थ की तरफ लक्ष्य नहीं दिया। यह खेद का विषय है।

(ग) क्षत्रियकुंड को विदेह जनपद में सिद्ध करने केलिये वसुकुंड, ज्ञातिका या वैशाली-कोटिग्राम के मध्य का कोई स्थान (तीनों) मानकर किसी एक का निश्चय ही नहीं कर पाये- यह भी उनकी भ्रामक मान्यता की पुष्टि करता है।

(घ) अब हम यहां शास्त्र में प्रयुक्त भगवान महावीर केलिये वैशालीय शब्द पर विचार करेंगे।

"एवं से उदाहु अणुत्तर-नाणी अणुत्तरदंसी-अणुत्तर-नाणदंसणधरे अरहा णाएपुत्ते भगवं वेसालिए विथाहिये ।।२२।।

(१) टीका

विशालकुलोद्भवाद् वैशालिकः तथा चोक्तं
विशाला जननी यस्य, विशाल कुलमेव च।
विशालं प्रवचनं यस्य, तेन विशालको जिनः।।

(सूत्रकृतांग शीलंकाचार्य टीका)

अर्थात्- जिनकी माता विशाला है, जिनका कुल विशाल है, जिन के प्रवचन विशाल हैं, इसलिये वे (भगवान) महावीर वैशालिक जिन हैं।

(२) **विसालिअ सावयंति-** विशाला महावीरजननी तस्या अपत्यमिति, वैशालीको भगवान् तस्य वचनं श्रृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिक श्रावक: (भगवतीसूत्र अभयदेव सूरि कृत टीका भाग १ श. ३ उ. १)

अर्थात्– विशाला (विशाली पुत्री)– भगवान महावीर की माता त्रिशला रानी थी इसलिये भगवान वैशालिक नाम से प्रसिद्ध हुए, उनके रसपूर्ण प्रवचन (उपदेश) को जो सुनता है। वह वैशालिक श्रावक है।

(३) यहां श्लोक नं. १ के उत्तराध्ययन की चूर्णि में निम्न अर्थ किये हैं–

१. उन के गुण विशाल थे, २. वे ईक्ष्वाककुल में उत्पन्न हुए थे, ३. उनकी माता वैशाला थी, ४. उनका कुल और ५. प्रवचन विशाल थे। उपर्युक्त दोनों संदर्भों में **वैसालीये** शब्द से भगवान महावीर के जन्मस्थान वैशाली का कोई संकेत नहीं है।

पहले में भगवान की माता, कुल और प्रवचन को विशाल बतला कर भगवान को वैशालिक जिन कहा है।

दूसरे में वैशालिक श्रावकों का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि विशाला माता के पुत्र होने के कारण भगवान महावीर वैशालिक कहा ये एवं उनके रसपूर्ण प्रवचन सुन कर जो उनके सिद्धान्तों को स्वीकार करता है और उनका अनुयायी बनता है वह वैशालिक श्रावक है।

इसमें भगवान महावीर के श्रावकों को जो वैशालिक होना कहा है वह वैशाली नगर की अपेक्षा से नहीं परन्तु उनके प्रवचन की अपेक्षा से कहा है। आचार्य श्री एवं पन्यास जी ने **वैशाली** शब्द से भगवान का नाम पड़ने का कारण वैशाली नगर में जन्म होना मानकर उनका जन्मस्थान वैशाली माना है और अपने इस मत की पुष्टि के लिये आचार्य श्री यह भी कहते हैं कि यहां कुल का तात्पर्य जनपद ही है। इसकी पुष्टि के लिये **अमरकोष का प्रमाण देते हैं।** परन्तु ध्यानीय है कि वे यहां अमरकोश का वह पाठ ही नहीं दे सके।[५]

प्राकृतकोश– पाइय-सद्द-महण्णवो पृ. ३९१ में कुल शब्द के अर्थ "**पैतृकवंश, गोत्र, जाति किये हैं।** अत: आप भगवान महावीर का जन्मस्थान विदेह वैशाली को सिद्ध करने में एकदम असफल रहे हैं।

पं. कल्याणविजय का मत है कि

पन्यास जी भी आचार्य श्री की ही पुष्टि करते हैं। देखिये इन्हीं की पुस्तक श्रमण भगवान महावीर–

आप भगवान महावीर का जन्मस्थान **'वैशाली'** को सिद्ध करने केलिये एक और तर्क उपस्थित करते हैं। आप कहते हैं कि "भगवान महावीर का जन्म लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड में हुआ इस परम्परा को मैं सच्चा नहीं मानता। इस केलिये नीचे लिखे कई कारण है।"

(१) सूत्र में भगवान महावीर केलिये **विदेहे विदेहविन्ने विदेहजच्चे विदेहसुमाले**" आदि पाठ है और वेसालिये नाम भी मिलता है। इस से मानना पड़ता है कि भगवान का जन्मस्थान विदेह में वैशाली का एक मुहल्ला रूप है।

(२) क्षत्रियकुंड जो एक बड़ा नगर था, भगवान महावीर ने दीक्षा लेने के बाद वहां एक भी चौमासा नही किया। और न ही वहां पधारे

(३) भगवान महावीर ने दीक्षा लेने के बाद क्षत्रियकुंड मे विहार कर कुमारग्राम, कोल्लाग सन्निवेश, मोराक सन्निवेश आदि ग्राम नगरों में विहार कर अस्थिग्राम में (पहला) चौमासा किया। दूसरे वर्ष मोराक, वाचाला, **सुरभिपुर, श्वेतांबी** जाकर वहां से राजगृही वापिस आकर चौमासा किया। इस लेखानुसार भगवान (पहले) चौमासे बाद श्वेतांबी जाते हैं। (जो विदेह जनपद मे है।) और गंगानदी पार करके राजगृही (मगध जनपद मे) पधारते हैं। इससे सिद्ध होता है कि लच्छआड वाला क्षत्रियकुंड असली नही है। क्योंकि उसके पास श्वेताम्बी नगरी नही है और वहां से राजगृही जाते हुए उन्हें गंगानदी पार करनी पडी। यदि क्षत्रियकुंड लच्छुआड़ के निकट होता तो नदी पार नही करनी पड़ती। इसलिये मानना पडता है कि क्षत्रियकुड गंगा के उत्तर विहार मे था।" (४) वैशाली के पश्चिम में गंडकी नदी थी। उसके पश्चिम ब्राह्मणकुड, क्षत्रियकुंड, वाणिज्यग्राम, कुमारग्राम, कोल्लाग सन्निवेश आदि महल्ले थे। ब्राहमणकुंड-क्षत्रियकुंड पूर्व-पश्चिम मे थे। इन दोनो के बीच में बहुशालचैत्य था।

पन्यास कल्याणविजय जी की तर्कणाओं पर विचार

(१) इस पहली तर्कणा का समाधान हम आ. विजयेन्द्र सूरि के प्रकरण मे कर आये हैं।

(२) भगवान महावीर की लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड ब्राह्मणकुंड में पदार्पण—

भगवान ४२ वर्षकी दीक्षा पर्याय में अनेक बार ब्राह्मणकुंड और क्षत्रियकुंड पधारे थे, पर इस का व्यवस्थित उल्लेख नहीं मिलता तो भी यहां पधारेण के प्रसंगों के कतिपय उल्लेख मिल ही जाते हैं। जो इस प्रकार हैं—

(क) भगवान राजगृही में दूसरा चौमासा करके चम्पा जाते हुए ब्राह्मणकुंडग्राम में आए थे। वहां नन्द और उपनन्द ब्राह्मणों के दो मुहल्ले थे। भगवान के साथ रहने वाले गोशाल ने यहां उपनन्द के मोहल्ले को तेजोलेश्या से जला दिया था।

(ख) केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान ब्राह्मणकुंडग्राम में पधारे। यहां एक पर्वतघाटी पर बहुशालचैत्य उद्यान में समवसरण में विराजमान होकर धर्मदेशना दी पश्चात् इस अवसर पर ऋषभदत्त ब्राह्मण तथा उसकी भार्या देवानन्दा ब्राह्मणी को श्रमण-श्रमणी की दीक्षाएं दी। (ग) भगवान दूसरी बार यहां दूसरी पर्वतघाटी पर आकर समवसरण में अपने जमाता जमाली को ५०० क्षत्रियों के साथ दीक्षायें दी। (घ) भगवान तीसरी बार यहां तीसरीघाटी पर आकर समवसरे और अपनी पुत्री प्रियदर्शना को १००० क्षत्राणियों के साथ दीक्षाएं दी। "ब्राह्मण दम्पत्ति ब्राह्मकुंड के और जमाली एवं प्रियदर्शना सहित १५०० क्षत्रिय-क्षत्राणियां क्षत्रियकुंड नगर के निवासी थे। ब्राह्मणकुंड और क्षत्रियकुंड-कुंडपुर महानगर के दो विभाग थे। इसलिये दोनों के मध्यभाग की तीनों पर्वतघाटियों पर दीक्षाएं दी गयीं थीं।

(ङ) आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व १० सर्ग ८ श्लोक २८, २९ में लिखा है कि भगवान क्षत्रियकुंड पधारे उस समय क्षत्रियकुंड का राजा नन्दीवर्धन उनके दर्शन करने आये। यथा—

स्वामिनं समोसृतं नृपति नन्दीवर्धनः।
श्रद्धया महंत्या भक्त्या च तत्रोपेयाय वन्दितुः।।

(च) आचार्य गुणभद्र कृत महावीरचरियं प्रस्ताव ८ में भी ऐसा ही लिखा है।

भगवान महावीर ने क्षत्रियकुंड एवं ब्राह्मणकुंड में चौमासा इसलिये नहीं किया कि पूर्व-परिचित स्थान और परिवार में अधिक रहना उन्हें उचित नहीं लगा। चाहे अपने को ममता न हो तो भी दूसरे ममतालु जीव अथवा संबन्धी

आदि मोहवश दुःखी न हों ताकि अपना और दूसरों का अनिष्ट न हो जाय। इस काल में भी अनेक श्रमण-श्रमणियां ऐसे हैं जो दीक्षा लेने के बाद कभी भी अपने जन्मस्थान नहीं गये। जैसे-मुनि श्री बुद्धिविजय (बूटेराय) जी के शिष्य १. मुक्तिविजय (मूलचन्द) जी २. वृद्धिविजय (वृद्धिचंद) जी ३. आत्माराम (श्री विजयानन्द सूरि) जी। आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी के शिष्य (४) आचार्य श्री विजयललित सूरि (५) आचार्य विजय-उमंग सूरि आदि (ये सब पंजाबी मुनिराज थे) क्या ऐसा मानना उचित है कि वे अपने जन्मस्थान कभी नहीं गये इसलिये वे उनके जन्मस्थान नहीं हैं। ऐसा मान लेना भ्रम नहीं तो और क्या है? अतः यदि भगवान महावीर ने अपने जन्मस्थान क्षत्रियकुंड में चौमासा नहीं किया हो अथवा न भी आये हों तो लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड को उनका जन्मस्थान न मानना तर्कसंगत नहीं है।

गंगा पार विहार

भगवान महावीर ने ४२ वर्ष दीक्षित अवस्था में लम्बे लम्बे विहार भी किये थे। अनेक नगरों, ग्रामों, सन्निवेशों, जनपदों, नदियों, जंगलों में विहार किया था। चम्पा (अंग जनपद) वीतभयपत्तन (सिन्धु-सौवीर जनपद), काश्मीर, हस्तिनापुर (कुरुक्षेत्र जनपद), मगध, विदेह, वंग, राढ़, गंधार, आदि जनपदों में विचरे थे। वे ऐसे उग्र विहारी थे, यह बात आगमों से स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। रास्ते में अनेकानेक नदियों, नालों, पर्वतों, घाटियों आदि को पार करना पड़ा होगा। बीहड़ जंगलों में होकर जाना पड़ा होगा। प्रभु को कहां कहां से होकर गुजरना पड़ा होगा इसका कोई लेखा-जोखा शास्त्र में नहीं मिलता तो इससे ऐसा मान लेना कि यह विवरण शास्त्रों में न होने से कोई नदी-नाला पार नहीं किया होगा? इस बात का कोई सामान्य-अकल (बुद्धि) वाला भी नकार नहीं सकता कि अनेकानेक नदी नाले अनेक बार इन विहारों में प्रभु को पार करने पड़े थे। शास्त्र में तो जहां-जहां विशेष घटनाएं घटी थीं मात्र उस स्थान पर नदी आदि को लांघने का उल्लेख किया है। वह भी अतिसंक्षेप में, शेष का उल्लेख नहीं किया गया।

भगवान महावीर के विहार क्रमका विवरण इस प्रकार है— क्षत्रियकुंड के बाहर ज्ञातखंडवन उद्यान में दीक्षा ली, पश्चात् कुमारग्राम में पहला रात्रि निवास, ग्वाले का उपसर्ग, कोल्लाग सन्निवेश में बहुल ब्राह्मण के घर छठ तप का पारणा, आधा वस्त्र दान, मोराक सन्निवेश के कुलपति की विनती, आठ मास तक विहार, मोराक में पुनः आगमन, अस्थिग्राम में पहला चौमासा। यहां शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग, मोराक सन्निवेश में तप का पारणा, दक्षिण वाचाला

भगवान महावीर अपना आधा देवदुष्य वस्त्र दान देते हुए

में जाते स्वर्णबालुका नदी के किनारे बचे हुए आधे वस्त्र का पतन, स्वर्णबालुका एवं रौप्यबालुका नदियों का उल्लंघन उत्तरवाचाला के वनखंड में चंडकोशक सर्प का उपसर्ग और उसे प्रतिबोध, उत्तरवाचाला में प्रदेसी राजा द्वारा किया हुआ भगवान का भावभीना सत्कार, **गंगानदी के किनारे पर सूक्ष्म-मिट्टी में विहार करते हुए प्रभु के चरणबिंबित पद पंक्ति में चक्रध्वज, अंकुश आदि शुभ लक्षणों को देख कर पुष्पक नामक सामुद्रिक का भगवान के निकट आना और इन्द्र का पुष्पक की शंकाओं का समाधान करना।** सुरभिपुर से श्वेतांबी जाने वाले पांच रथवाले राजाओं द्वारा प्रभु को वन्दना, **गंगा पार करते हुए नौका में सुदंष्ट्र का उपसर्ग**, राजगृही के नालंदा पाड़े में दूसरा **चौमासा।** चौमासे बाद कोल्लग सन्निवेश में आकर चौमासी तप का पारणा करना इत्यादि (कल्पसूत्र)

हम लिख आये हैं कि पहले चर्तुमास के बाद जब भगवान सुरभिपुर जा रहे थे तब गंगा के तट पर उनके पदचिन्हों को देखकर पुष्पक सामुद्रिक प्रभु के निकट पहुंचा था और इन्द्र ने उसकी शंका का समाधान किया था। (मात्र इतना कहकर शास्त्र मौन है) विचारणीय है कि यह घटना तब घटी है जब भगवान सुरभिपुर से श्वेतांबी जा रहे थे। अतः भगवान यहां से गंगा पार कर श्वेतांबी गये थे क्योंकि सुरभिपुर गंगा के दक्षिण तट पर था यहां से श्वेतांबी उत्तर तट पर गंगा पार करके ही प्रभु गये थे यह मानना पड़ेगा और वहां से लौटते हुए दोबारा गंगा पार करके सुरभिपुर राजगृही आकर चौमासा किया था। यह बात निश्चय है। क्योंकि कुमारग्राम, मोराकसन्निवेश अस्थिग्राम, वाचाला, सुरभिपुर राजगृही, नालंदा, चंपा आदि ये सब नगर ग्राम आज भी गंगा के दक्षिण में हैं और भगवान ने क्षत्रियकुंड के बाहर ज्ञातखंडवन में दीक्षा लेकर उपर्युक्त नगर-ग्रामों से होते हुए श्वेतांबी गये थे। अतः कुंडपुर (क्षत्रियकुंड-ब्राह्मणकुंड) भी गंगा के दक्षिण में ही था। यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। गंगा के उत्तर में नहीं था। यह भी सच्च है।

(१) भगवान १६ वें चौमासे के बाद चंपा (अंगजनपद) से विहार करके वीतभयपत्तन (सिन्धु-सौवीर जनपद) में पधारे। वहां के राजा उदायन को दीक्षा दे कर वापिस लौट कर १७ वां चौमासा वाणिज्यग्राम (विदेह जनपद) में किया। इस विहार में हजारों मील आना जाना पड़ा।

(२) भगवान २७ वां चौमासा मिथिला (विदेह जनपद) में करके वहां से हस्तिनापुर (कुरु जनपद) में पधारे और लौट कर २८ वां चौमासा वाणिज्यग्राम (विदेह जनपद) में किया। इस विहार में प्रभु को हजारों मील आना जाना पड़ा।

उपसर्ग चण्डकौशिक नागने भगवानके पैरपर डंक मारा पर प्रभुने नागको प्रतिबोध देकर उसका आत्मकल्याण किया।

(३) भगवान ३० वां चौमासा वाणिज्यग्राम (विदेह जनपद) में करके वहां से काम्पिल्य (पांचाल जनपद) में पधारे वहां से लौटकर ३१ वां चौमासा इन्होंने वैशाली (विदेह जनपद) में किया। इस विहार में भी प्रभु को हजारों मील जाना आना पड़ा। इस प्रकार भगवान ने ४२ वर्ष की दीक्षा पर्याय में सैकड़ों छोटे बड़े विहार किये। इन विहारमार्गों में कितने कितने (बेशुमार) नदी-नाले आये होंगे और उन्हें कितनी बार पार करना पड़ा होगा। इस बात को भूगोल का विद्यार्थी भलीभांति जानता है। लेकिन शास्त्र इसके लिए एकदम मौन है। इससे यह मान लेना कि इन विहारों में भगवान ने कोई नदी-नाला पार नहीं किया क्योंकि इसका शास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है इसलिये ये सब स्थान गंगा की उत्तरदिशा में वैशाली (विदेह जनपद) की परिधि में ही होने चाहिये अन्यत्र नहीं। यह कितनी बेसमझी (अज्ञानता) की बात है। इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि शास्त्र में भगवान के विहार में आने वाले नदी नालों को पार करते समय यदि कोई उल्लेखनीय घटना हुई हो तो उसी का उल्लेख है अन्यथा नहीं।

अत: सुरभिपुर से श्वेतांबी जाने से पहले गंगा नदी के दक्षिणतट पर पुष्पक सामुद्रिक का प्रभु को मिलने की घटना का तो शास्त्र में उल्लेख है क्योंकि यह एक विशेष घटना थी। पर नदी पार करना कोई महत्वपूर्ण घटना न होने से शास्त्र में इसका उल्लेख न होना स्वाभाविक है, जैसे अन्य नदी-नालों का कोई विशेष घटना न होने से उल्लेख नहीं किया गया। पर गंगा नदी के दक्षिण तट पर श्वेतांबी जाने से पहले विहार करके पुष्पक घटना के तुरंत बाद भगवान का श्वेतांबी पहुंचना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि इस समय गंगानदी पार करके भगवान नदी के उत्तरतट पर पहुंचकर श्वेतांबी पधारे और वहां से लौटकर राजगृही में चौमासा किया।

(४) भगवान ने चौदह चौमासे राजगृही में किये, बारह चौमासे वाणिज्यग्राम और वैशाली में किये। यहां जाने-आने में गंगानदी और गंडकी नदी को कितनी बार पार करना पड़ा होगा? पाठक इसे स्वयं ही भलीभांति जान सकते हैं। आगम में तो मात्र इन नदियों के एक-दो बार ही पार करने का उल्लेख है। अन्य समय में नदी पार करने को नकारा नहीं जा सकता। सच्च बात तो यह है कि भगवान महावीर सोराक, अस्थिग्राम के चौमासे के बाद गंगानदी पार करके श्वेतांबी गये थे और वहां से लौटते हुए दूसरी बार गंगानदी पार करके राजगृही पधारे। इस बात की पुष्टि पुष्पक सामुद्रिक के प्रसंग से होती है।

क्षत्रियकुंड और वैशाली के मोहल्ले

पं. कल्याणविजय जी गंडकी नदी के पूर्व में वैशाली और पश्चिम किनारे कुंडपुर, वाणिज्यग्राम, कुमारग्राम और कोल्लाग सन्निवेश मानते हैं। जबकि विजयेन्द्र सूरि इस मान्यता को भ्रामक मानकर लिखते हैं कि गंडकी नदी के पूर्व में वैशाली तथा कुंडग्राम को तथा पाश्चिमी किनारे पर कुमारग्राम, कोल्लाग सन्निवेश और वाणिज्यग्राम मानते हैं। जोकि **कुंडग्राम की स्थापना केलिये दोनों में मतभेद हैं।** परन्तु शास्त्रों में कुंडग्राम और कुमारग्राम के बीच में जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों बतलाये हैं। इससे इन दोनों की मान्यताएं गलत सिद्ध हो जाती हैं। यह बात तो सच्च है कि वैशाली के निकट गंडकी नदी थी। क्षत्रियकुंड के पास गंडकी नदी होने अथवा गंडकी के कनारे कुंडपुर होने का शास्त्र में एक भी उल्लेख नहीं है। अतः क्षत्रियकुंड के निकट गंडकी नदी थी यह सप्रमाण नहीं है। फलस्वरूप मानना पड़ता है कि वैशाली और वाणिज्यग्राम के बीच में जलमार्ग ही था, स्थलमार्ग नहीं था।

वैशाली के ग्राम

दिग्घनिकाय बौद्धग्रंथ में बुद्ध का विहार इस प्रकार है- वैशाली, भंडग्राम, हस्तिग्राम, आम्रग्राम, जम्बुग्राम, भोगनगर और पावा। **सुत्तनिपात** में वर्णन है कि अजित आदि १६ जटाधारी अल्लक से निकल कर कौशांबी, साकेत, श्रावस्ति, श्वेतांबी, कपिलवस्तु, कुशीनारा, मंदिर, पावा। भोगनगर और वैशाली होकर मगधपुर (राजगृही) पहुंचे।

महापरीनिव्वाणसुत्त में बुद्ध का अंतिम विहार अंबला, अस्थिया, नालंदा, पाटलीग्राम (पटना), गंगानदी, कोटिग्राम, नादिका, वैशाली और भंडग्राम आदि में विहार माना है।

हेमी महावीर चरित्र में लिखा है कि भगवान महावीर वैशाली से निकल कर नाव में बैठकर वाणिज्यग्राम पधारे। (पर्व १० सर्ग ४ श्लोक १३९)

चीनी बौद्धयात्री फाहियान लिखता है कि बुद्धदेव अपने शिष्यों सहित परिनिर्वाण केलिये जाते हुए आम्रपाली वैश्या के बाग के पास से होकर भंडग्राम गये थे उनकी दाहिनी दिशा में वैशाली थी।

आचारांगसूत्र और कल्पसूत्र में उल्लेख है कि भगवान महावीर ने वैशाली और वाणिज्यग्राम में १२ चौमासे किये।

उपासकदशांग- सूत्र में वर्णन है कि वाणिज्यग्राम नगर था, वहां का राजा जितशत्रु था। भगवान दुतिर्पलाशचैत्य में समवसरो यह वाणिजग्राम के

ईशानकोण में था।वाणिजग्राम के बाहर ईशानकोण में ही कोल्लाग सन्निवेश था। गौतम इन्द्रभूति प्रभु की आज्ञा लेकर वाणिज्यग्राम में गोचरी के लिए गये और लौटते हुए पास के कोल्लाग सन्निवेश में जहां ज्ञातकुल के लोग थे और उनकी पौषधशाला थी वहां पधारे।

वैशाली नगरी का मानचित्र

उपर्युक्त पाठों के आधार से वैशाली का मानचित्र इस प्रकार तैयार होता है (१) वैशाली के दक्षिण में अणुक्रम से नादिका, कोटिग्राम और गंगानदी। नादिका का दूसरा नाम ञातिक था। (२) वैशाली के एक तरफ जल से भरी गंडकी नदी (३) उसके सामने किनारे वाणिज्यग्राम (४) उस के ईशानकोण में पास-पास में दूतिपलासचैत्य और कोल्लाग सन्निवेश। (५) वैशाली से संभवतः वायव्यकोण में भोगनगर था।

ञातिकग्राम में ज्ञातक्षत्रियों की बस्ती थी, कोल्लाग में ज्ञातक्षत्रियों के घर तथा उपाश्रय था। इन दोनों स्थानों में ज्ञातखंडवणउद्यान था ही नहीं परन्तु दूतिपलासचैत्यउद्यान था। इसके बीच में चैत्य था। वैशाली और वाणिज्यग्राम गंडकी नदी के आर-पार अलग-अलग तटों पर आबाद थे। वैशाली गंडकी के पूर्व में था और वाणिज्यग्राम पश्चिमतट पर था। उनके युग्मनाम भी मिलते हैं। जैसे वैशाली-वाणिज्यग्राम। वर्तमान में दिल्ली-आगरा आदि। ये निकटवर्ती सूचक हैं ,पर एक नहीं हैं। ऊपर दिये गये विवरण के अतिरिक्त दूसरे कौन कौन से ग्रामनगर थे उनका इसमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस स्थिति में वैशाली-कुंडपुर या वैशाली-क्षत्रियकुंड अथवा वैशाली ब्राह्मणकुंड से युग्मनाम कैसे संभव हो सकते हैं।

हम लिख आये हैं कि कुंडग्राम (क्षत्रियकुंड ब्राह्मणकुंड) पहाड़ियों से घिरा हुआ था। इसलिये यहां पहाड़ नहीं थे। जैसे गंडकी नदी और पहाड़ी नदी जुदा-जुदा हैं, वैसे ही उनके बहाव भी जुदा-जुदा दिशाओं में हैं। इसी प्रकार वैशाली और कुंडपुर-क्षत्रियकुंड का भी आपस में कोई संबंध नहीं है।

अतः आचार्य विजयेन्द्र सूरि एवं पं. कल्याणविजय जी की भगवान महावीर के जन्मस्थान की मान्यताएं भी सर्वथा भ्रामक हैं।

आचार्य तुलसी और मुनि नथमल

आचार्य तुलसी और मुनि नथमल ने विदेहे, विदेहदिन्न, विदेहदिन्ना

विदेहजच्चे, विदेहसुमाले आदि विशेषणों का भगवान महावीर के मातृपक्ष संबोधित तो माना है। किन्तु वैशाली के संबंध में उनकी अनिश्चित स्थिति है। उनका कहना है कि इसका निश्चित अर्थ भी अनवेषणीय हैं।[67] (अतीत का अनावरण पृ० १३१) वस्तुतः उत्तराध्ययनसूत्र की चूर्णि के दूसरे अर्थ ने उन्हें अनिश्चय में डाल दिया है। क्योंकि वे लिखते है कि वैशालिक विशेषण का संबन्ध भगवान की माता या जन्मभूमि से होना चाहिए।[68] लेकिन टीकाकारों ने इसके जितने भी अर्थ स्वीकार किये हैं, उनमें जन्मभूमि का कोई संकेत नहीं मिलता। अतः वैशालिक भी विदेह की तरह मातृकुल से संबंधित था। भगवान महावीर संबन्धित विशेषण हैं। उत्तराध्ययन चूर्णि का तीसरा अर्थ ही इस का वास्तविक अर्थ ज्ञात होता है। शेष विकसित और संभावित अर्थ ही प्रतीत होते हैं। ब्राह्मण परम्परा में भी जनपदवाची विदेह शब्द के अर्थ का विकास पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण माधवविदेघ ने नये जनपद की नींव डाली थी। यह उसके नाम पर आगे चलकर विदेह (विदेघ) कहा जाने लगा। विदेह जनपद के पुराण प्रथित राजा जनक के नाम के साथ यह शब्द विशेषण प्रयुक्त किया जाता है। तब इसका विशेष अर्थ भी होता है- मुक्त बन्धनरहित या देहातीत। यहां सूत्रकारों ने भी वैशालीय, विदेह, आदि विशेषणों का भगवान महावीर के लिये प्रयोग करते हुए अर्थबोध के एकाधिकस्तरों का उद्घाटन किया है।

यदि भगवान महावीर का सारा परिवार विदेह जनपद या वैशाली का निवासी होता तो उन के पिता, भाई केलिये "विदेहदिन्ना, विदेहदिता, विदेहच्च" के विशेषणों के प्रयोग की कोई सार्थकता नहीं देती? यानि उन केलिये शास्त्रकारों ने इन शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं किया? वस्तुतः वैशाली और विदेह से संबंधित विशेषण महावीर के मातृकुल की विशेषता और भगवान केलिये प्रयुक्त किये गये हैं और यह स्पष्ट सूचित करता है कि मातृकुल का जनपद उनके पितृकुल से सर्वथा भिन्न है और इसी कारण से उस के पृथक उल्लेख की सार्थकता भी है। प्रभु की माता त्रिशला क्षत्रियाणी वैशाली के महाराजा चेटक की बहन थी। चेटक की छोटी पुत्री चेलना का विवाह मगध के राजा श्रेणिक से हुआ था। यह अजातशत्रु (कुणिक) की माता थी। पाली ग्रंथों में अजातशत्रु केलिये वैदेहीपुत्र का प्रयोग किया गया है जो उसके मातृकुल को ज्ञापित करता है। यह दूसरी बात है कि भगवान महावीर के नाम के साथ प्रयुक्त मातृकुल सूचक विशेषणों में सूत्रकारों और टीकाकारों ने एकाधिक अर्थों का आधासन कर दिया है। भगवान केलिये विदेह विशेषण का प्रयोग कर सूत्रकारों ने भौगोलिक निर्देश नहीं किया, बल्कि उनकी महत्ता का उत्कीर्ण किया है। आचारांगसूत्र की

वीर-वाचना में कहा गया है कि माता के गर्भ में प्रवेश करते समय भगवान तीन ज्ञात (मति, श्रुत, अवधि) से युक्त थे। बचपन से यौवन तक की अवस्था का वर्णन करते हुए उन की विज्ञान संपन्नता का स्पष्ट निर्देश किया गया है। इसलिये तीस वर्ष तक गृहवास का उल्लेख करते समय विदेह शब्द का प्रयोग भौगोलिक क्षेत्र का निर्देशन नहीं करता, बल्कि उनकी आत्मस्थ अथवा देहातीत अवस्था का निर्देश करता है। आचारांग वृत्ति में उनके विदेह शब्द का अर्थ विशिष्ट देहग्रहण केलिये किया है। देहातीत का अर्थ भी ग्रहण किया गया है। त्रिशला माता केलिये विदेहदिन्ना आदि विशेषणों में विदेह का जनपद अर्थ किया है। हम पहले इस का विस्तार से विवेचन कर आये हैं। परम्परा से भिन्न एवं आगा-पीछा सोचे समझे बिना अर्थ को स्थापित करने केलिये ऐतिहासिक प्रमाण की आवश्यकता बनी ही रह जाती है।

डा. योगेन्द्र मिश्र

डा. योगेन्द्र मिश्र ने वैशाली के एक मोहल्ले वासुकुंड को भगवान का जन्मस्थान माना है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि केलिये वैशाली में प्राप्त गुप्तकालीन एक मिट्टी की मोहर के लेख की ओर संकेत किया है। जो इस प्रकार है- **वैशालीनामकुंडे कुमारामात्य अधिकरण**। उनका कहना है कि इस अभिलेख का **कुंड स्पष्टतः क्षत्रियकुंड है**। क्योंकि इस क्षेत्र में कुंड नामका और कोई स्थान किसी भी स्रोत से ज्ञात नहीं है।[69] लेखक के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि उन्होंने पहले ही यह मान लिया है कि कुंडग्राम-वैशाली में ही होना चाहिये और वैशाली में जहां भी कुंड शब्द स्थान के नाम के रूप में मिल जाता है उसे वह भगवान की जन्मभूमि कुंडग्राम अथवा क्षत्रियकुंड मान लेते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि मोहर के लेख का कुंड शब्द-क्षत्रियकुंड को ही अभिहित करता है ऐसा उसमें कोई संकेत नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त कुंड शब्द का प्रयोग स्थान के नामों में बहुत देखने में आते हैं। वाराणसी में लोल्यार्ककुंड, दुर्गाकुंड आदि मूलतः तालाब अथवा पुष्करणी हद (हृद) सागर आदि के नाम पर कतिपय स्थानों के नाम मिलते हैं। शाहकुंड पोखरामा (पुष्करग्राम) नागहद (हृद) चक्कदह (चक्कहृद) आदि ऐसे ही नामों के उदाहरण हैं। ये सारे नाम विहार राज्य में ही ग्रामों के नाम हैं। अतः इस अभिलेख के वैशालीकुंड का अपना भिन्न महत्व हो सकता है। इस का नामांतर वसुकुंड भी हो सकता है। किन्तु केवल कुंड शब्द की समानता के आधार पर उसे क्षत्रियकुंड या कुंडग्राम मानना संगत नहीं है।

बौद्ध-राहुल साकृत्यायन एवं अन्य विद्वान

पालिग्रंथों के कोटिग्राम एवं नादिकाग्राम जिन्हें जैकोबी का अणुकरण करते हुए राहुल सांकृत्यायन, भरतसिंह उपाध्याय आदि ने ज्ञातृ या णायकुल के क्षत्रियों के ग्राम माने हैं, ये बुद्धदेव के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं। पर यहां जिनशासन का कोई संकेत नहीं मिलता। नादिका को भगवान महावीर के क्षत्रियकुल का ग्राम मानना सर्वथा असंगत है। क्योंकि इस कुल में तीर्थंकरों की परम्परागत प्रतिष्ठा थी। भगवान के पिता सिद्धार्थ तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे, और स्वयं भगवान महावीर जैसे तीर्थंकर इस कुल में उत्पन्न हुए थे। जो बुद्धदेव के समकालीन थे। ऐसा महत्वपूर्ण संदर्भ नादिका के विवरण में अछूता छूट जाना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। क्योंकि बौद्धसूत्रों में अन्यत्र बुद्धदेव के उपदेशों के संदर्भ में भिन्न मतावलम्बियों का भी उल्लेख पाया जाता है।

पालिग्रंथों में नादिकाग्राम के दो प्रचलित नाम मिलते हैं। १. नादिका एवं २. ञातिका। भरतसिंह उपाध्याय का मत है कि यह ञातिक लोगों का गांव था जो वज्जिसंघ के ही एक अंग थे। ञातिक शब्द की कई व्याख्याएं की गयी हैं।

आधुनिक विद्वानों ने ञातिक का संबंध भगवान महावीर के ज्ञातृ नामक क्षत्रियकुल से स्थापित किया है और वैशाली में इस कुल के वंशधरों को भी ढूंढ निकाला है। काशीप्रसाद जयसवाल और राहुल सांकृत्यायन की यह धारणा कि मुज़फ्फरपुर के जेथरिया नामक भूमिहार ब्राह्मणों की एक शाखा भगवान महावीर के नाम या ज्ञातृ कुल से संबंधित थी। यह उनकी अटकल मात्र है। ज्ञातृ और जैथरिया में ध्वनिसाम्य देखकर यह धारणा बना ली गई है। वसुदेवशरण ने भी बिना जांच किये इस बात को मान लिया है। स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने यथेष्ठ प्रमाण से इस भ्रांत मान्यता को निरसन किया है। उन्होंने जेथरिया को मूलस्थान का वाचक माना है। कुल का वाचक नहीं। जेथर छपरा जिले में है और उस मूल के ब्राह्मण जेथरिया छपरा और मुजफ्फरपुर दोनों जिलों में पाये जाते हैं।[70] मूलस्थान छपरा में होने की बातें ज्ञात होते ही राहुल जी ने अपनी धारणा में यह संशोधन कर लिया कि ज्ञातृक क्षत्रियों का कुल मुजफ्फरपुर में नहीं छपरा में था।[71] राहुल जी के इस संशोधन से वैशाली में भगवान महावीर की जन्मभूमि होने की मान्यता स्वतः खंडित हो जाती है। यह दूसरी बात है कि ज्ञातृकों का संबन्ध होने का आग्रह उन्होंने नहीं छोड़ा। पालि में ञातिक शब्द का अर्थ ज्ञाति या नाति होता है। ञाति सेठ्ठे का अर्थ है- ज्ञाति श्रेष्ठ।[72] भगवान महावीर के कुल का नाम नाय (पालि-नात) का संबन्ध नादिकाग्राम के स्थापित करने का मूलकारण यह है कि इससे भगवान की जन्मभूमि वैशाली को सिद्ध

करने केलिये एक सबल आधार मिल जाता है। लेकिन अन्ततः यह आधार भी खोखला सिद्ध हो जाता है। जैनसूत्रों में भगवान महावीर के नाम केलिये प्राकृत में नाथ, णाय और नायपुत्त का प्रयोग हुआ है, एवं पालिग्रंथों में नातपुत्त का। संस्कृत ज्ञात के प्राकृत णाय, नाय और नात पाये जाते हैं। इसलिये जैनसूत्रों के टीकाकार ने प्राकृत नाय के लिये संस्कृत में ज्ञात और ज्ञातृ शब्दों को स्वीकार कर लिया है। इन संस्कृत शब्दों के कारण भी अटकलपच्चियां और भ्रांतियां फैली हैं। इस संदर्भ में आचार्य तुलीस और मुनि नथमल की धारणा सर्वाधिक विचारणीय हैं। उनका कहना है कि ''प्रतीत होता है कि ज्ञात और ज्ञातृ-ये दोनों यथार्थ नहीं हैं। भगवान का कुल नाम होना चाहिए णायपुत्त की संस्कृत छाया नागपुत्र भी हो सकती है। चूर्णियां प्राकृत में हैं, इन में नाय या णात ही मिलता है। क्वचित ज्ञात भी मिलता है। टीकाकाल में यह भ्रम पुष्ट हुआ है। अधिकांश टीकाकारों का ध्यान ज्ञात शब्द की ओर गया है। हमारी जानकारी में उभयदेव सूरि ही पहले टीकाकार हैं। जिन्होने नाय शब्द का अर्थ नाग भी किया है। उन्होंने औपपाकिसूत्र सूत्र १४ की वृत्ति ने नाय का अर्थ ज्ञात (इक्ष्वाकुवंश का एक भेद) अथवा नाग (नागवंशी) किया है। इसी आगम के सूत्र २७ वें की वृत्ति में उन्होंने नाग का अर्थ नागवंशी और गौण रूप से ज्ञातवंशी किया है। इसी आगम् के सूत्र २७ में वृत्ति में उन्होंने नागवंशी किया है। सूत्रकृतांग (२।१।९) में इक्खाग, इक्खागपुत्ता, नाया, नायपुत्ता, कोरुव्वा, कौरव्वपुता यह पाठ है। इस सूत्र के पाठ संशोधन केलिये हम जिन दो हस्तलिखित प्रतियों का अवलोकन कर रहे हैं उनमें एक प्रति जो वि. सं. १५८१ में लिखी है उसमें नाया-नायपुत्ता के स्थान में नाग-नागपुत्ता पाठ हैं। इतिहास में ज्ञात नाम का कोई प्रसिद्ध वंश हो पढ़ने-सुनने में नहीं आया।[73]

जैनागमों में भगवान महावीर केलिये नाय, णाय, नात शब्दों का प्रयोग हुआ है और बौद्धग्रंथों में नात-नाथ शब्दों का प्रयोग हुआ है। पालिभाषा में नाय, णाय शब्दों का प्रयोग नहीं है। नाय, णाय का संस्कृत में अर्थ ज्ञात, ज्ञातृ, नाग ये तीनों रूप होते हैं और नात, नाथ का संस्कृत में नाग रूप नहीं बनता। नात, नाथ के संस्कृत रूप ज्ञात, ज्ञातृ ही होते हैं, नाग नहीं। इसलिये भगवान महावीर का पितृकुल ज्ञात-ज्ञातृ ही होना चाहिए।

अब हम भगवान महावीर के जन्मस्थान के लिये निर्दिष्ट साहित्य की दृष्टि से परीक्षण करें।

पाश्चिमात्य और भारतीय आधुनिक विद्वानों का जो दावा भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली में कुंडपुर की मान्यता का है वह समाप्त हो जाता है। क्योंकि (१) इन दोनों के निकट कोई पहाड़ नहीं है। (२) न ही वैशाली के निकट ब्राह्मणकुंडग्राम, क्षत्रियकुंडग्राम, कुमारग्राम, कोल्लाग सन्निवेश, मोराक-सन्निवेश, अस्थिग्राम, स्वर्णखिल्ल, लोहागल आदि नगर-ग्राम हैं। (३) ये लोग वसुकुंड, वसाढ़ को क्षत्रियकुंड और कोलुहा को कोल्लाग-सन्निवेश मानते हैं और इन्हें वैशाली के मुहल्ले कहते हैं। यह सब गलत मान्यताएं हैं। मात्र अटकलों पर अधारित हैं। (४) इस साहित्यिक विश्लेषण से यही मान्यता सच्च सिद्ध होती है कि मगध जनपद में मुंगेर जिले में जमुई सर्बार्डविजन में लच्छुआड़ के निकट जो क्षत्रियकुंडनगर था वही वास्तव में भगवान् महावीर का जन्मस्थान था। यह बात निर्विवाद और निःसंदेह है।

२. भूतत्त्व विद्या (GEALOGICAL)

पावापुरी भगवान महावीर की निर्वाणभूमि और वैशाली की दूरी पावापुरी और लच्छुआड़ की दूरी से बहुत अधिक है। आगमों में वर्णन है कि पावापुरी में भगवान महावीर के निर्वाण के समाचार पाकर क्षत्रियकुंड के राजा नन्दीवर्धन (भगवान महावीर का बडा भाई) भगवान महावीर के पार्थिव शरीर को अग्निसंस्कार के समय पावापुरी में पहुंच गये। लच्छुआड़ से पावापुरी घुड़-सवारी से कुछ ही घंटों में पहुंचा जा सकता है। क्योंकि दोनों स्थानों में लगभग ३६ मील का अन्तर है। पावापुरी और वैशाली में इतनी अधिक दूरी है कि वहा एक दिन में नहीं पहुंचा जा सकता। आधुनिक विद्वान लच्छुआड़ के नजदीक माहना, कुंडघाट, कुमार, कोल्लाग, अस्थावन, जमुई, लोहागल, मोराक आदि ग्रामों नगरों को, सक्क-सक्कयानी, दिक्करानी, किन्दुआनी, चक्कणाणी पहाडियों को ढूंढने का कष्ट क्यों नहीं करते। जिनके नाम भगवान महावीर की जीवन घटनाओं की याद दिलाते हैं। इसी क्षेत्र में क्रमशः ब्राह्मणकुंडग्राम, क्षत्रियकुंडग्राम, कुमार, कोल्लाग, अस्थिग्राम, जम्भीयग्राम, लोहागल, और मोराक कुछ साधारण विकसित नामों से वर्त्तमान लच्छुआड़ कोठी से बीस मील के घेरे में अवस्थित हैं। जन्मस्थान के निकट पुराना खंडहर रूप किला भी है जो कि राजा सिद्धार्थ का है और पहाड़ी की गोदी में बना हुआ है।

जो नालंदा के निकट कुंडलपुर को दिगम्बर संप्रदाय दूसरा जन्मस्थान मानता है वह राजगृही के उत्तर में छह मील दूर स्थित है और वह भी पहाड़ों से

दूर है इसके निकट आस-पास कोई ऐसा ग्राम-नगर उद्यान भी नहीं है जहां भगवान के क्रीड़ास्थल, दीक्षास्थल, दीक्षा के बाद विहार स्थल हो। अतः हमें भूतत्व विधा के प्रमाण से भी लच्छुआड़ के निकट भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने में सहयोगी हैं।

३. इतिहास (HISTORICAL)

इस मामले में ऐतिहासिक तथ्य भी वैशाली के विरुद्ध हैं। विदेह जनपद वैशाली के राजा चेटक की सात पुत्रियां थीं। १. प्रभावंती, २. पद्मावती, ३. मृगावती, ४. शिवा, ५. ज्येष्ठा, ६. सुज्येष्ठा और ७. चेलना। तथा चेटक की बहन त्रिशला थी। त्रिशला का विवाह मगध जनपद में क्षत्रियकुंड के राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था जो भगवान महावीर की माता थी। १. प्रभावती का विवाह वीतभयपत्तन (सिंध-सौवीर जनपद) के राजा उदायण से हुआ था। २. पद्मावती का विवाह चंपा (अंग जनपद) के राजा दधिवाहन से हुआ था। ३ मृगावती का विवाह कोशांबी (वत्स जनपद) के राजा शीतानिक से हुआ था। ४ शिवा का विवाह उज्जैन के राजा चन्द्रपद्यौत से हुआ था। ५. ज्येष्ठा का विवाह क्षत्रियकुंड (मगध जनपद) के राजा नन्दीबर्धन (भगवान महावीर के बड़े भाई के साथ) हुआ था। और ६ चेलना का विवाह राजगृही (मगध जनपद) के राजा श्रेणिक (बिंबसार) से हुआ था। एवं ७. सुज्येष्ठा ने विवाह नहीं किया। उस ने दीक्षा ले ली थी और श्रमणीसंघ में शामिल हो गई थी।

वर्तमान के कुछ पाश्चिमात्य तथा भारतीय विद्वानों का मत है कि भगवान महावीर का जन्म विदेह जनपद के वैशाली नगर के एक मोहल्ले में हुआ था जिस मोहल्ले के स्वामी भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ साधारण सरदार (उमराव) थे। हम उनकी इस मान्यता का निराकरण बहुत विस्तार के साथ-साहित्य के प्रकरण में कर आये हैं कि उन की यह मान्यता एकदम भ्रांत और खोखली है।

(१) हम लिख आये है कि भगवान महावीर का पिता सिद्धार्थ एक स्वतन्त्र समृद्धिशाली राजा था। उसने भगवान का जन्ममहोत्सव बड़े आडम्बर और ठाठ-बाठ से मनाया था, उस समय अपने बन्दीखानों (जेलों) से कैदियो को मुक्त कर (छोड़) दिया था। उसके राजकोष (खज़ाने) से भगवान महावीर ने दीक्षा लेने से पहले पूरे एक वर्ष तक तीन अरब अठ्यासी करोड़ अस्सी लाख (३८८०००००००) सौनैयों का वर्षीदान दिया था। सिद्धार्थ के पास बहुत बड़ी

सेना थी, उस ने युद्ध में इन्द्र को भी हराया था। (ये सब जैनागमों-शास्त्रों के प्रमाणों के साथ साहित्यिक प्रकरण में लिख आये हैं।)

(२) ऐसे समृद्धिशाली स्वतंत्र राजा को एक सामान्य मुहल्ले का उमराव वह भी मात्र ज्ञातवंशियों का कैसे माना या कहा जा सकता है!

(३) भगवान महावीर के गर्भ में आने से लेकर दीक्षा के प्रसंगों में शास्त्रों में जो उल्लेख आये हैं, उनमें किसी भी प्रसंग के वैशाली के साथ कोई भी उल्लेख नहीं है। यदि क्षत्रियकुंड वैशाली का एक मोहल्ला होता तो किसी एक प्रसंग में भी वैशाली का उल्लेख अवश्य होता। पर ऐसा नहीं हुआ है। विदेह और वैशाली का कहीं भी उल्लेख नहीं होने से यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि वैशाली अथवा उसका कोई मोहल्ला या उसके आस-पास का कोई ग्राम भगवान महावीर का जन्मस्थान नहीं था।

(४) शास्त्रों में भगवान महावीर के च्यवन (गर्भावतरण), जन्म, दीक्षा कल्याणक जिस ढंग से मनाने का उल्लेख है, उस ढंग से एक मोहल्ले में मनाया जाना एक दम असंभव था। कदापि नहीं मनाये जा सकते थे।

(५) मात्र विदेहे, विदेहदिन्न, विदेह-दिन्ना, आदि एवं वेसालिए के सूत्र पाठों से इनका अर्थ क्षेत्र मान लेना सर्वथा भ्रांत है। बिना आग-पीछा सोचे प्रसंग-संदर्भ का बिना विचार किये मात्र कल्पना और अनुमान लगाने का कारण यही है कि इन गुणवाचक विशेषणों को क्षेत्र वाचक मानलेना यह कोई समझदारी नहीं है। यदि विदेह आदि शब्दों का संबंध भगवान महावीर के जन्मस्थान से है तो ये विशेषण उनके माता-पिता, भाई-बहन, पुत्री-दोहितृ तथा अन्य परिवार जनों के साथ क्यों प्रयुक्त नहीं किया गया? केवल भगवान के साथ ही क्यों प्रयुक्त है? इस से ये शब्द क्षेत्रवाचक न होकर केवल गुणवाचक हैं। रानी त्रिशला विदेह की राजकन्या थी और भगवान महावीर वैदेही राजकन्या के पुत्र थे। इसीलिये उनके नामों के साथ गुणरूप दोनों विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इस सारे प्रकरण का हम पूरे विस्तार के साथ पहले विवेचन कर आये हैं। अतः इन शब्दों का विदेह जनपद अथवा वैशाली में भगवान महावीर का जन्मस्थान मान लेना कोई समझदारी नहीं है।

(६) हम यहां एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं—

एकदा एक व्यक्ति अपने परमस्नेही मित्र को बड़े स्नेहपूर्ण भावोल्लास से चाय पिलाने के लिये प्याला भर लाया। परन्तु मित्र को चाय पीना पसंद नहीं था। मित्र कवि था। उसने मुस्कराते हुए हाथ जोड़ कर विनम्र भाव से कहा- भाइ साहब—

"इस चाह की मुझे चाह नहीं, इस चाह को चाह में डाल दो।"

यहां चाह शब्द का चार बार प्रयोग हुआ है। चारो शब्दों का अर्थ अलग अलग है। १. इस (चाह) चाय को, २. (चाह) कुंए में डाल दो ३. इस (चाह) प्यार-स्नेह की, मुझे ४. (चाह) इच्छा नहीं है। (यह वाक्य उर्दू भाषा के है)।

यहां यदि कोई व्यक्ति अपनी विशेष बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करने के लिये विदेह-वैसालीय के अनुसार बिना आगा-पीछा, प्रसंग-संदर्भ के सोचे कि चारों चाह शब्दों का एक अर्थ लगाकर सफल होना चाहे तो सर्वथा असंगत और असंभव है। समझदार लोग उसे एकदम अज्ञानी ही मानेंगे। यही बात विदेह आदि शब्दों के अर्थ लगाने में हुई है। शब्द प्रायः अनेकार्थवाची होते हैं। अतः किसी भी सत्य को समझने के लिये आगा-पीछा सोचकर संदर्भ के अनुकूल अर्थ को स्वीकार करने से ही सच्ची सफलता पाना संभव और बुद्धिमत्ता है (७) राज्य संबन्ध में भी सूचित करते हैं कि क्षत्रियकुंड नगर एक महत्वपूर्ण स्वतंत्र राज्य की राजधानी थी। विदेह वैशाली में तो भगवान महावीर की ननिहाल थी। वहां उन्होंने वैशाली और वाणिज्यग्राम में कुल मिलाकर बारह चौमासे किये थे। चार चौमासे मिथिला में किये थे। कुल मिलाकर विदेह जनपद में भगवान ने १६ चौमासे किये थे। इन चौमासों के अतिरिक्त विदेह जनपद में श्वेतांबी, वैशाली, श्रावस्ती, मिथिला, वाणिज्यग्राम कोसांबी आदि प्रसिद्ध नगरों में भगवान १७ बार पधारे थे। १४ चौमासे राजगृही (मगध जनपद) में एवं इसी जनपद में अन्य अनेक बार पधारे भी थे।

(८) इस से यह स्पष्ट है कि भगवान का अधिकतर विहार समय-अंग, मगध और विदेह जनपदों में रहा। यही कारण है कि इन क्षेत्रों में भगवान महावीर के प्रवचनों का आशातीत प्रभाव पड़ा। इसलिये उनके धर्म को यहां की जनता ने बड़ी श्रद्धा से अपनाया। यदि इस कारण से भगवान महावीर का नाम वैशालिक अथवा वैदेही भी प्रसिद्ध हो गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इन नामों के कारण भगवान महावीर का जन्मस्थान विदेह या वैशाली मान लेना कोई युक्तिसंगत नहीं है। कार्यक्षेत्र के कारण उस व्यक्ति को उस क्षेत्र के नाम से भी संबोधित किया जाता है। जैसे (१) मोहनलाल कर्मचंद गांधी (महात्मा गांधी) का जन्म पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में हुआ, पर उनका कार्यक्षेत्र साबरमती (अहमदाबाद) होने से साबरमती के बाबा कहलाये। (२) विनोबा भावे का जन्म महाराष्ट्र के किसी गांव में हुआ, परन्तु उनका आश्रम वर्धा में होने से वर्धा के सन्त कहलाये। ३. जैनाचार्य विजयबल्लभ सूरि का जन्म बड़ोदा (गुजरात) में हुआ, परन्तु उनका कार्यक्षेत्र प्रायः पंजाब होने से पंजाबी कहलाये। (४) आचार्य

विजयधर्म सूरि का जन्म वला (सौराष्ट्र) में हुआ किन्तु काशी में एक आदर्श शिक्षण संस्था "यशोविजय जैन पाठशाला" स्थापित कर **उसे अपना कार्यक्षेत्र बनाने से काशीवाले आचार्य कहलाये** (५) उन्हीं का शिष्य मुनि विद्याविजय जी का जन्म गुजरात प्रदेश में हुआ पर उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र-वीरतत्व प्रकाशक मंडल (जैनशिक्षण संस्था) शिवपुरी (ग्वालियर) को बनाया इसलिये वे **शिवपुरी के संत कहलाये।** (६) स्थानकवासी संप्रदाय के उपाध्याय अमरमुनि का जन्म उत्तरभारत में हुआ पर उन्होंने राजगृही (मगध जनपद) में **विरायतन को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, इस लिये वे राजगृही विरायतन के संत** कहलाये। (७) श्रावक हीरालाल दुगड़ शास्त्री (इस शोधग्रंथ के लेखक) का जन्म गुजरांवाला पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ पर वर्तमान में इनका **निवास कार्यक्षेत्र दिल्ली में होने से दिल्लीवाले कहलाये** (८) यदि कोई गृहस्थ पंजाब, राजस्थान, गुजरात अथवा अन्य किसी प्रदेश से जाकर मद्रास में आवाद हो जाय और उसे अपना कार्यक्षेत्र बना ले तो **वह मद्रासवाला** कहलायेगा। (९) कोई भारती अमरीका, केनेडा, इंग्लैंड आदि में जा कर आवाद हो जावे और उसे अपना कार्यक्षेत्र बना ले तो वह उसी देशवाला कहलायेगा। यानि अपने-अपने कार्यक्षेत्र के कारण **वह उस-उस क्षेत्र का कहलायेगा। (१०) भगवान महावीर के प्रवचन को सुनकर उनके धर्म को स्वीकार करने वालों को भी शास्त्र की टीकाएं करनेवाले आचार्यों ने वैशालिक श्रावक** कहा है। यानि अपने-अपने कार्यक्षेत्र के कारण वे लोग उस उस क्षेत्र के कहलाये। ऐसा होने पर भी यदि कोई शोधकर्ता उस क्षेत्र को ही उसका जन्मस्थान मान ले तो उसकी यह धारणा सत्य नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार यदि महावीर का कार्यक्षेत्र अधिकतर विदेह रहा है या वैदेही राजकन्या त्रिशला के कारण वैदेही रहा भी हो तो उनका जन्मस्थान विदेह अथवा वैशाली मान लेना भ्रामक और खोखलापन नहीं है क्या? अतः यहां ऐसा ही हुआ है। क्योंकि विदेह एवं वेसालिए शब्दों से भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली का एक मोहल्ला मानने में अन्य सभी शास्त्रीय प्रमाण इसके विरोध में हैं। इस मान्यता का कोई समर्थन नहीं करता। इसका विस्तार से हम पहले विवेचन कर आये हैं। यहीं कारण है कि आधुनिक शोधकर्ता भूल के पात्र बने हैं। पर इस में संदेह नहीं कि अंग-मगध-विदेह जनपदों में जैनधर्म की प्राचीनकाल में प्रधानता रही है। इसलिये विदेह जनपद में भी जैन धर्मानुयायियों की अधिक संख्या थी। कारण यह था कि यहां भगवान महावीर के पूर्ववर्ती तथा भगवान महावीर ने तथा उन के बाद उन की परम्परा के श्रमणसंघों ने इस जनपद में निरन्तर विचरण करके जैनधर्म का व्यापक प्रचार किया। जिस से जैनधर्म खूब फला-फूला और अनुयायियों में वृद्धि होती गयी।

(९.) यदि प्राचीन शास्त्र साहित्य में अथवा किसी विदेशी या भारतीय विद्वान ने विदेह जनपद में जैनों की संख्या अधिक लिखी या देखी हो और उससे अनमान किया हो कि भगवान का जन्मस्थान वैशाली है तो यह भी कोई तर्कसंगत नहीं है। ऐसा जरूरी नहीं है कि जिस प्रदेश में धर्मानुयायियों की संख्या अधिक हो वहां उसके धर्मप्रवर्तक का जन्मस्थान भी हो। हम वर्तमान में देखते हैं कि गजरात प्रदेश अहमदाबाद में जैनों की संख्या अधिक है तो इस का कारण यह नहीं है कि भगवान महावीर का जन्मस्थान गजरात या अहमदाबाद था।

(१०) शास्त्र और इतिहास कहता है कि भगवान महावीर अपने जीवनकाल में कभी भी गजरात नहीं गये इसलिये जैन जनसंख्या को अधिक देख कर मान लेना कि गजरात-अहमदाबाद भगवान महावीर का जन्म स्थान है कितनी भयंकर भल है। प्राचीनकाल में भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ का राज्य मगध जनपद में जमई सबडिविजन में लच्छुआड़ के निकट क्षत्रियकुंड में था यह बात आगम सम्मत होने हुए भी वर्तमान में वहां जैन धर्मानुयायी न होने से यह मान लेना कि न तो वहां सिद्धार्थ का राज्य था और न हीं भगवान महावीर का जन्म हुआ था। इससे बढ़कर और क्या भयंकर भल हो सकती है? शास्त्र के साथ इतिहास और भगोल भी स्वीकार करते हैं कि यहीं राजा सिद्धार्थ का निवासस्थान था एव यहीं भगवान महावीर का जन्म हुआ था। यदि इस दलील को न मानकर इस क्षत्रियकुंड को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने से नकारते है तो यह बात विदेह वैशाली पर भी लाग हो सकती है क्योंकि वर्त्तमान मे वहां जैनधर्मानयायी एकदम नहीं हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ऐसी भ्रामक-कल्पनाए एकदम खोखली हैं। ऐसी कुयुक्तियों से भी भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

राजा सिद्धार्थ का पुत्र राजा नन्दीवर्धन

(११) अंग-मगध के राजा अजातशत्रु (कोणिक) ने उग्र सेना लेकर वैशाली पर प्रलयकारी और विदेह जनपद के महाराजा चेटक (अपने नाना) के साथ १२ वर्षों तक प्रलयंकारी भयंकर युद्ध करके उन्हें परास्त किया। पश्चात् वैशाली में गधों से हल चलाकर उसे नष्ट-भ्रष्ट (तहस-नहस) कर दिया एवं उसका नामो-निशान मिटाकर विदेह गणतंत्र को अपने राज्य में मिला लिया। यदि यह घटना भगवान महावीर के जीवनकाल में हुई। यदि कुंडग्राम (क्षत्रियकुंड-ब्रहमणकुंड) वैशाली के मोहल्ले होते तो उस मोहल्ले के उमराव बड़ा भाई राजा नन्दीवर्धन होता तो उसका राज्यक्षेत्र भी वैशाली के साथ ही

समाप्त हो जाता और वह स्वयं भी मारा जाता या अपना निवासस्थान छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाता। न नन्दीवर्धन रहता न क्षत्रियकुंड रहता। वह भी अपने राज्य से हाथ धो बैठता। परन्तु वैशाली ध्वंस हो जाने पर भी राजा नन्दीवर्धन और उसका राज्य सुरक्षित रहे। क्योंकि राजा नन्दीवर्धन और उसका राज्य भगवान महावीर के समय में विद्यमान थे। तभी तो भगवान महावीर के पावापुरी में निर्वाण होने के समाचार पाते ही उनके दाहसंस्कार के अवसर पर शीघ्र पावापुरी पहुंच गये। यह बात भी ध्यानीय है कि यदि वैशाली में क्षत्रियकुंड होता तो यह पावापुरी से अधिक दूर होने से वे वहां दाहसंस्कार के समय पर कदापि नहीं पहुंच सकते थे। अतः नन्दीवर्धन और उसके राज्य का सुरक्षित रहना ही हमें लच्छुआड़ वाले क्षत्रियकुंड को ही भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने को बाध्य करती है।

(१२) विजयी अजातशत्रु ने अंग जनपद को पहले ही अपने राज्य में मिला लिया था। क्षत्रियकुंडग्रामनगर पहाड़ों से घिरा होने से प्राचीनकाल में राजा अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिये ऐसे स्थानों में ही राजधानी बनाया करते थे और ऐसी पहाड़ी पर ही मज़बूत किला बनाते थे। राजा सिद्धार्थ ने भी इन पहाड़ियों पर सुदृढ़ किला बनवाया था। जिस की टूटी-फूटी दीवारें आज भी इन पहाड़ियों पर देखी जा सकती हैं। अजातशत्रु केलिये इस किले को जीतना असंभव था। क्योंकि वैशाली के युद्ध में उसकी सैनिकशक्ति कम हो गई थी। इसलिये यह अजातशत्रु के अधीन नहीं हो पाया।

४. भाषाशास्त्र (LINGUSTICAL)

भगवान महावीर ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार अपनी स्थानीय भाषा अर्धमागधी में किया था। यदि वैशाली में उनका जन्म होता तो उनकी भाषा अर्द्धमागधी न होकर वज्जी अथवा वैदेही होती। अर्द्धमागधी भाषा का यह एक महत्वपूर्ण प्रमाण है जो कि भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान ढूंढने में अमोघ सहयोगी है। लच्छुआड़ का सभी पर्वतीय प्रदेश आज भी मागधी भाषा-भाषियों की परिधि में आता है।

कुछ लोगों का मत है कि भगवान महावीर के समय में सारे भारत की भाषा अर्द्धमागधी थी, पर यह मान्यता निराधार है यदि उस समय सारे भारत की भाषा अर्धमागधी होती तो समकालीन बुद्धदेव ने यह भाषा न अपना कर पालीभाषा में अपना उपदेश क्यों दिया? संस्कृत नाटकों में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग किया

गया है। वह भी अर्द्धमागधी से भिन्न है। दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों की प्राकृत भाषा भी अर्द्धमागधी नहीं है। अतः यह प्रमाण हमें मानने केलिये बाध्य करते हैं कि अर्द्धमागधी सारे भारत की भाषा नहीं थी अपितु अर्द्धमागधी मगध और इसके निकटवर्ती प्रदेश की भाषा थी। भगवान महावीर की यह मातृभाषा होने से उन्होंने इसी भाषा में उपदेश करने का निर्णय लिया कि जनता को मातृभाषा समझने में सुविधा रहेगी।

५. पुरातत्त्व (ARCHAEOLOGICAL)

वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान माननेवाले अपनी बात की पुष्टि केलिये कुछ पुरातात्विक प्रमाण भी देते हैं जो इस प्रकार हैं। ई. सन् १९०३-४ डा. ब्लाक की देख-रेख में यह खुदाई का काम हुआ। बाद में १९१३-१४ में डा. स्पूनर ने यहां खुदाई शुरू की। विशालगढ़ की खुदाई में बहुत सी मुहरें और पदार्थ मिले जिससे वैशाली की स्थिति पूर्णरूप से सुदृढ़ हो गयी और अब तो यहां बुद्ध की अस्थियां भी मिल गयी हैं अतः इसके बारे में किंचित भी शंका नहीं की जा सकती। इन अस्थियों की चर्चा बौद्ध चीनीयात्री ह्वेनसांग ने भी की हैं। उसके यात्रा विवरण के आधार पर पुरातत्ववेत्ता वर्षों से ढूंढ निकालने के प्रयास में थे। यह स्थान अब तक राजा विशालगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है यह आयताकार है और ईंटों से भरा है इसकी परिधि लगभग एक मील है। डा. ब्लाख के अनुसार यह गढ़ उत्तर की ओर ७५७ फुट दक्षिण की ओर ७८० फुट पूर्व की ओर १६५५ फुट और पश्चिम की ओर १६५० फुट लम्बा है। पास के खेतों की अपेक्षा खंडहरों की ऊंचाई लगभग आठ फुट है। दक्षिण को छोड़ कर इसके तीनों ओर खाई है। इस समय यह खाई १२५ फुट चौड़ी है। किन्तु कनिंघम ने इसकी चौड़ाई २०० फुट लिखी है इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस किले के तीन ओर खाई थी। वहां और जाड़ों में किले का रास्ता दक्षिण दिशा से रहा होगा। गढ़ से पश्चिम की ओर ५२ (बावन) पोखरों के उत्तरी भोटे पर एक छोटा सा आधुनिक मन्दिर है वहां बुद्ध, बोधिसत्व, विष्णु हर, गोरी गणेश, सप्तमातृका, तथा जैन तीर्थंकर की एक खंडित मध्यकालीन प्रतिमा प्राप्त हुई है। वह भी महावीर अथवा बैठक के काल की नहीं इससे १००० वर्ष बाद की है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त यहां से जो अत्यन्त महत्वपूर्ण चीजें मिली हैं वे राजाओं रानियों तथा अन्य अधिकारियों के नाम सहित सैकड़ों मुद्राएं हैं इनमें से कुछ मुद्राओं पर लेख उत्कीर्ण हैं।

१. महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त की पत्नी महाराज श्री गोविन्दगुप्त की माता महादेवी श्री ध्रुवस्वामिनी। अर्थात् महाराज श्री चन्द्रगुप्त की पत्नी, महाराज श्री गोविन्दगुप्त की माता महादेवी श्री ध्रुवस्वामिनी। २. युवराज भट्टारक पादीय बलाधिकरण। अर्थात् माननीय श्री युवराज की सेना का कार्यालय। ३. श्री परमभट्टारक पादीय कुमारामात्याधिकरण। अर्थात् राजा की सेना में लीन कुमार के मन्त्री का कार्यालय। ४. दण्डपाशाधिकरण। अर्थात् दण्डाधिकारी का कार्यालय। ५. तीरभुक्त्युपरिकाधिकरण। अर्थात् तिरहुत (तिरभुक्ति) के राज्यपाल का कार्यालय। ६. तीरभुक्तो विना स्थितिस्थापकाधिकरण। अर्थात् तिरहुत (तीरभुक्ति) के समाचार-संशोधक का कार्यालय। ७. वैशाल्याधिष्ठानाधिकरण। अर्थात् वैशाली नगर के राज्यशासन का कार्यालय।

जनश्रुति के अनुसार यहां बावन पोखरें (पुष्करणियां) थीं। किन्तु कनिंघम बावन में से केवल १६ का पता पा सके थे। वैशाली के राजाओं के राज्याभिषेक केलिए इन पोखरो का जल काम मे लिया जाना होगा।

बनियाऔर चक्रामदास

बसाढ़गढ़ के उत्तर-पश्चिम में लगभग एक मील की दूरी पर बनियागांव है इसका दक्षिणी भाग चक्रामदास है। एच. बी. डब्ल्यू गैरिक ने यहां से प्राप्त दो प्रस्तर मूर्तियों का उल्लेख किया है जो माप मे (१) १२ फुट २ इंच x १४ फुट २ इंच और (२) एक फुट १० इंच x १ फुट ३ इच थी। (ये प्रतिमाएं जैन नहीं थीं) यहां सिक्के, मिट्टी के पात्र आदि भी प्राप्त हुए हैं। यहां से मिली वस्तुओ मे मिट्टी का बना दीवट भी है। गले के आभूषण मिले हैं। गढ़ और चक्रामदास के बीच लगभग आधा मील लम्बा पोखर है जो घुडदौड़ के नाम से प्रसिद्ध है चक्रामदास के दक्षिण-पश्चिम में कुछ ऊंचे स्थल हैं जिनपर प्राचीन खंडहर है।

कोलुआ

गढ़ के उत्तर-पश्चिम में लगभग एक मील की दूरी पर **कोलुआ** नामक स्थान में अशोक का स्तम्भ (बरबरा की दक्षिण पूर्व में एक मील की दूरी पर स्तूप), मर्कट हृद (रामकुंड) है। वैशाली के संबंध में ह्युइन्सांग ने जो लिखा है उससे इन स्थानों का ठीक-ठीक मेल बैठता है। इसमें वैशाली के राजप्रासाद की परिधि ४-५ ली (५ ली = १ मील) लिखी है। वर्तमान गढ़ की परिधि ५ हजार

फुट से कुछ कम है। ये दोनों स्थितियां एक दूसरे से अत्यन्त निकट हैं। उसने लिखा है कि उत्तर पश्चिम में अशोक द्वारा बनाया हुआ एक स्तूप है और ५०-६० फुट ऊंचा पत्थर का एक स्तम्भ है इसके शिखर पर सिंह की मूर्ति है। स्तम्भ के दक्षिण में एक तालाब है जब बुद्धदेव इस स्थान पर रहते थे तब उनके उपयोग केलिए ही यह निर्माण किया गया था। पोखर से कुछ दूर पश्चिम में एक दूसरा स्तूप है यह उस स्थान पर है जहां बन्दरों ने बुद्ध को मधु अर्पण किया था। पोखर के उत्तर पूर्व के कोने पर बन्दर की एक मूर्ति भी है।

आजकल की स्थिति यह है कि कोलुआ में एक स्तम्भ है। जिस पर सिंह की मूर्ति है उसके उत्तर में अशोक स्तम्भ है इसके दक्षिण की ओर रामकुंड पोखर है जो कि बौद्ध इतिहास में मर्कटहृद के नाम से प्रसिद्ध है।

यहां की जनता अशोकस्तम्भ को भीम की लाठी कहती है यह भूमि से २१ फुट २ इंच ऊंचा है। स्तम्भ का शीर्षभाग घंटी के आकार का है। जो २ फुट १० इंच ऊंचा है। इसके ऊपर के प्रस्तर खंड पर उत्तराभिमुख एक सिंह बैठा है। जनरल कनिंघम ने चौदह फुट नीचे तक इसकी खुदाई की थी तब भी स्तम्भ उन्हें उतना ही चमकीला मिला था जितना कि वह ऊपर था। स्तम्भ के उत्तर में बीस गज की दूरी पर एक ध्वस्त स्तूप है यह १५ फुट ऊंचा है। धरती पर इसका व्यास ६५ फुट है इसमें लगी ईंटों का आकार १२ x ९ x २½ इंच है। स्तूप के ऊपर एक आधुनिक मंदिर है। इसमें बोधिवृक्ष के नीचे स्पर्शमुद्रा में बैठी बुद्ध की एक विशाल मूर्ति है। जो मुकुट हार और कर्णभूषण पहने है। (अलंकृत मूर्ति बोधिसत्व की कहलाती है ऐसी अलंकृत मूर्तियां बुद्धदेव की बोधि प्राप्ति से पहली अवस्था की हैं) इस मूर्ति के दोनों तरफ अलकारों से अंकित बैठी हुई मूर्तियां भी हैं। उनके हाथ इस प्रकार हैं कि मानो बोधि प्राप्ति के लिए प्रार्थना कर रहे हैं इन दोनों छोटी मूर्तियों के नीचे निम्नलिखित पंक्तियां नागरी में उत्कीर्ण है— १. देय धर्मोऽयार प्रवर महायान यायिनः कर्णिकोच्छाहः (उत्साहस्य) मा (णि) णक्य सुतस्स। २. यदत्र पुण्यं तदभवत्वाचार्यो-पाध्याय माता पितोरात्मानञ्च पर्वागमम (क्) ३ त्वा म कल (नु) त्वरारोत्तर (ज्ञाना वा धूयेति)। अर्थात् माणिक्य के पुत्र लेखक और महायान के परमानुयायी उत्साह का धर्म प्रवर्तक किया गया यह दान है। इससे जो भी पुण्य हो वह आचार्य उपाध्याय, माता पिता और अपने से लेकर समस्त प्राणिमात्र के अनन्तकल्याण केलिये हो।

स्तम्भ से ५० फुट की दूरी पर रामहृद अथवा मर्कटहृद है। इसके किनारे कूटागारशाला थी इसी शाला में ही बुद्ध ने अपने निर्वाण की अपने शिष्य आनन्द

को सूचना दी थी। यहां खुदाई करने पर पूर्व से पश्चिम की ओर आनेवाली एक मोटी दीवार है यह पक्की ईंटों की बनी है। इसकी ईंट ५ x९½ x २ इंच की है। दीवार के पश्चिमी छोर पर एक छोटे स्तूप के अवशेष पाए गए हैं। इसकी ईंटें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। जिसका ऊपरी भाग गोल था उसके बीच में एक चौकोर छेद था। कनिंघम का मत है कि यह स्तूप के ऊपर की ईंट रही होगी। कोलुआ, बनिया और बसाढ़ से पश्चिम में न्योरीनाला का पुराना घाट बहुत दूर तक चला गया है। अब इसमें खेती होती है।

यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि प्राचीन वैशाली के चारों कोणों पर चार शिवलिंग स्थापित थे। इस का आधार क्या है कहा नहीं जा सकता। इसके सम्बन्ध में कोई प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है। उत्तरपूर्वी महादेव जो कृपनछपरागाच्छी में है वह वास्तव में बुद्ध की मूर्ति है जो नागार्जुण है। उत्तरपश्चिम में एक संगमरमर का लिंग बना हुआ है। यह बिल्कुल आधुनिक है इन दोनों को यहां की जनता बड़ी श्रद्धा भक्ति भाव से पूजती है।

बौद्ध यात्रियों के काल में वैशाली

बुद्ध की अन्तिम यात्रा के कथन के बाद लोगों ने यह स्तूप बनवाया था। यहां से पश्चिम में तीन चार ली की दूरी पर एक स्तूप है। बुद्ध के परिनिवर्णि से सौ वर्ष बाद वैशाली के भिक्षुओं ने विनयदशशील के विरुद्ध आचरण किया था। इस स्थान से चार योजन चलकर पांच नदियों के संगम पर पहुंचे। आनन्द मगध से अपने परिनिर्वाण केलिए वैशाली को चले, देवताओं ने अजातशत्रु को सूचना दी। वह तुरन्त रथ पर बैठकर सेना के साथ नदी पर पहुंचा। जब वैशाली के लिच्छवियों ने आनन्द का आगमन सुना तो उन्हें लेने केलिए वे भी नदी पार पहुंचे। आनन्द ने सोचा कि आगे बढ़ता हूं तो अजातशत्रु बुरा मानता है यदि लौटता हूं तो लिच्छिवी रोकते हैं। परिणामस्वरूप आनन्द ने नदी के बीच ही तेजोकसिन (तेजाकृत्सन) योग के द्वारा परिनिर्वाण लाभ किया। इनके शरीर को दो विभागों में विभक्त कर एक-एक दोनों तटों पर पहुंचाया गया। दोनों राजाओं को आधा-आधा शरीर मिला। वे लौट आये और अपने स्थानों पर स्तूप बनवाये। युवांगच्यांड ने लिखा है कि इस (वैशाली) राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५००० ली (एक हजार मील) है। भूमि उत्तम तथा उपजाऊ है, फल फूल बहुत अधिक होते हैं। विशेषकर आम और मोच (केला) अधिकता से होते हैं। महंगे बिकते हैं। जलवायु सहज और मध्यम है। मनुष्यों का आचरण शुद्ध और सच्चा

है। बौद्ध एवं बौद्धेतर दोनों ही मिलजुल कर रहते हैं। यहां कई सौ संघाराम खंडहर हैं। तीन पांच ऐसे हैं जिनमें बहुत ही कम भिक्षु रहते हैं १०-२० मन्दिर देवताओं के हैं जिनमें अनेक धर्मानुयायी उपासना करते हैं जैन धर्मानुयायी काफी संख्या में हैं। वैशाली राजधानी कुछ-कुछ खंडहर है। पुराने नगर का घेरा लगभग ६०-७० ली (१२-१४ मील) है और राजमहल का विस्तार ४-५ ली (लगभग १ मील) के घेरे में है। बहुत थोड़े लोग इसमें निवास करते हैं। राजधानी के पश्चिमोत्तर ५-६ ली की दूरी पर एक संघाराम (बौद्धमठ) है उसमें कुछ बौद्धभिक्षु रहते हैं ये लोग सम्मतिय संस्था के अनुयायी हैं।

उपर्युक्त सारे विवरण में विशेषरूप से बौद्ध संप्रदाय केलिए ही लिखा गया है क्योंकि इस विवरण में बौद्ध यात्री ह्वेनसांग के लेखों का आधार है। जैनधर्म के विषय में कोई विशेषजानकारी नहीं है अतः यहां पर दो तीन मुद्दों पर ही विचार करना है-

१. लेखक ने विशालगढ़ के पश्चिम में ५२ पोखर के उत्तरी मोड़ पर एक छोटे से आधुनिक जैनेतर मन्दिर का उल्लेख किया है और इस क्षेत्र में बौद्ध, वैष्णव आदि संप्रदायों की मूर्तियों के प्राप्त होने का भी जिक्र किया है। एवं जैन तीर्थंकर की मध्यकालीन खंडित मूर्ति भी प्राप्त हुई है ऐसा लिखा है। २. सैकड़ों मुद्राएं मिली हैं जिन पर जैनेतर राजा रानी अथवा उनके कार्यालयों आदि के लेख अंकित हैं। ३. कोलुआ, बनिया और बसाढ़ एक ही पंक्ति में एक-एक मील की दूरी पर हैं। ४. इस क्षेत्र में आम और केले के वृक्षों की विशेष पैदावार है। ५. ह्वेनसांग के समय में वैशाली में जैन धर्मावलम्बियों की संख्या काफी थी। ६. विदेह में प्राचीनकाल में बौद्धस्तंभ और स्तूप विद्यमान थे जो वर्तमान में प्रायः खण्डित है।

आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि ने क्षत्रियकुंड को वैशाली में सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त इन बातों का आलंबन लिया है।

उपर्युक्त संदर्भ पर विचारणा

१. यहां जो जैनतीर्थंकर की मध्यकालीन खंडित मूर्ति मिलने का उल्लेख किया है। वह विक्रम की १२/१५ शताब्दी की है इस पर कोई लेख अथवा लांछन अंकित होने का भी उल्लेख नहीं किया गया अतः यह महावीर की प्रतिमा नहीं है और न महावीरकालीन है। यदि यह मूर्ति महावीर की होती तो आचार्य श्री इसका नाम और समय फोटो आदि अपने मत की पुष्टि केलिए अवश्य देते

दूसरी बात यह है कि एक अथवा अनेक तीर्थंकरों की प्राचीन अथवा अर्वाचीन खंडित या अखंडित मूर्तियां मिल भी जाती तो जरूरी नहीं है कि इस आधार से वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानलिया जाय। जहां जिसके अनुयायी होते हैं वहां वे लोग अपने ईष्टदेव की पूजा-अर्चा-भक्ति केलिये उनके स्मारक, मंदिर, प्रतिमाएं, स्थापित करलेते हैं। इसलिये जहां जिस तीर्थंकर का स्मारक, मंदिर, प्रतिमा हो उसे उस तीर्थंकर का जन्मस्थान होना ही है ऐसी मान्यता भ्रांत और खोखली है। (२) वैशाली में जो सैकडों मुद्राए व मुहरें मिली हैं उनमें जैनों संबंधी एक भी नहीं है। अतः जन्मस्थान की पुष्टि केलिये इनका कोई उपयोग नहीं है (३) **वैशाली में कोलुआ, बनिया और बसाढ़ एक ही दिशा में हैं।** और एक-एक मील की दूरी पर पंक्तिबद्ध होने से भी कोलुआ अथवा बसाढ़ को क्षत्रियकुंड की कल्पना करलेने से भी उन्हें भगवान महावीर का जन्मस्थान नहीं माना जा सकता क्योंकि प्राचीन जैनागम शास्त्रों की मान्यता इन्हें एक ही दिशा में मानना स्वीकार नहीं करती। हम पहले भी विस्तार से लिख आये हैं कि वैशालीगड़ नदी के पूर्वी तट पर था एवं बनिया (वाणिज्यग्राम) और कोलुआ (कोल्लाग) गडकी नदी के पश्चिमी तट पर थे अतः ये उस समय की भौगोलिक मान्यता के विरोध में जाते हैं (४) वैशाली क्षेत्र में आम और केले के वृक्षों की उपज बहुत संख्या में थी इस क्षेत्र में शाल, आंवला, आदि के उपज का कोई उल्लेख नहीं है। भगवान महावीर के दीक्षा लेने के बाद दीक्षा स्थान से चलकर जहां-जहां उनका विहार हुआ वहां वहां शाल, आंवला आदि वृक्षों की बहुतायत थी। बहुशालादि उद्यानों का जिक्र बार-बार आता है अतः इससे भी वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने की पुष्टि नहीं होती (५) कहीं पर जैनधर्मियों की अधिकता होने से ही उस स्थान को तीर्थंकर का जन्मस्थान नहीं माना जा सकता। क्योंकि जैन धर्मानुयायी प्राचीनकाल से वर्तमान तक यत्र-तत्र-सर्वत्र देश-विदेश के नगरों, ग्रामों में अधिक संख्या में भी रहते आये हैं और रहेंगे अत इस आधार से भी भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली मान लेना युक्तिसंगत नहीं है। इसपर हम विस्तार से लिख आये हैं (६) विदेह आदि जनपदो में जैनों के बहुत संख्या में स्तम्भ, स्तूप आदि थे जिन्हें विदेशी बौद्धयात्रियों ने बौद्धों के मानकर अपनी यात्राविवरणों में लिखकर बौद्धधर्मकी छाप लगा दी है और इसी को आधार मानकर इतिहासकार इस भ्रांत मान्यता को पुष्ट करते जा रहे हैं यह खेद का विषय है।

जैनशासन में स्तूपों का निर्माण

यह बात निर्विवाद है कि जैनधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है इसे कालकी परिधि में नहीं बांधा जा सकता (इसका हम जैनधर्म के प्रकरण में विस्तार से उल्लेख कर आये हैं) वर्तमान अवसर्पिणीकाल में इस धर्म के आदि प्रवर्तक भगवान श्री ऋषभदेव (आदिनाथ) हुए हैं और क्रमशः वर्धमान महावीर तक २४ तीर्थंकर धर्मप्रवर्तक हो चुके हैं। महावीर बुद्ध के समकालीन थे। शाक्यमुनि गौतमबुद्धदेव ने बुद्धधर्म की स्थापना की। तीर्थंकरों, श्रमणों, श्रमणियों की स्मृति में श्री ऋषभदेव से लेकर आजतक जैनों ने स्तूपों का निर्माण किया है। जैन साहित्य में अनेक जैनस्तूपों के उल्लेख मिलते हैं। आचार्य जिनदत्त सूरि के जैनस्तूपों में सुरक्षित शास्त्र भंडारों से कुछ ग्रंथ प्राप्त करने के उल्लेख मिलते हैं। जैनसम्राट संप्रति मौर्य ने अपने पिता कुणाल के लिए तक्षशिला में स्तूप का निर्माण कराया था। जैनसाहित्य में तक्षशिला, कैलाश (अष्टापद) पर्वत पर तीन स्तूपों, हस्तिनापुर में पांच स्तूपों, सिंहपुर (पंजाब), भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी आदि भारत में सर्वत्र जैनस्तूपों के निर्माण के प्रमाण मिलते हैं। मथुरा में सुपार्श्वनाथ के ध्वंस जैनस्तूपों की खुदाई से सैकड़ों जैनप्रतिमाएं आयागपट्ट आदि मिले हैं। वैशाली में अतिप्राचीनकाल से बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी का जैनस्तूप तथा अन्य भी स्तूप थे। जिसका जिक्र बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द से किया है। जिसकी पूजा अर्चा वहां के राजा चेटक तथा प्रजा करते थे। उस मुनिसुव्रतस्वामी के स्तूप को वैशाली विजय करते समय ध्वंस कर दिया गया था। तक्षशिला में बीसों जैनस्तूप थे। काश्मीर में ई. पू. १५वीं शताब्दी में राजा सत्यप्रतिज्ञ अशोक, उसके पुत्र जलोक, ललितादित्य आदि अनेक राजाओं, मंत्रियों आदि ने जैनस्तूपों का निर्माण कराया था। कलिंगाधिपति जैनराजा महामेघवाहन खारवेल ने (वि. पू.) उड़ीसा में खंडगिरि उदयगिरि पर्वत में जैनगुफाओं का निर्माण कराया। भरत चक्रवर्ती, सम्प्रति मौर्य, नवनन्दों आदि ने, महाभारत-कालीन कांगडा (हिमांचलप्रदेश) केलिये आदि में अनेक चक्रवर्तियों, प्रतापी राजा, महाराजा हुए है। जिन्होंने जैनस्तूपों, गफाओं, गगनचम्बी मन्दिरों, जैनतीर्थों का निर्माण कराया था। ऐसे उल्लेख जैनसाहित्य और शिलालेखों में भरे पड़े हैं। ऐसा होने पर भी बौद्ध-चीनीयात्रियों ने किसी भी जैनगुफा का उल्लेख नहीं किया। कवि-कल्हण ने राजतरंगिनी में कहा है कि काश्मीर के जैननरेशों द्वारा अनेक राजाओं महाराजाओं, मंत्रियों, गृहस्थों ने जैनस्तूपों, गुफाओं, मंदिरों का निमार्ण कराया था विदेशी बौद्ध यात्रियों ने भारत में आकर जहां भी कोई स्तूप पाया उसे बौद्धों केनाम की घोषणा कर दी। कनिंघम आदि पाश्चात्य पुरातत्ववेत्ताओं ने भी जैनस्तूपों, घेरों को हमेशा बौद्धों का कहा है। यह आश्चर्य की बात है। ई. सं. १८९७ में बूल्हर साहब ने जब मथुरा के

जैनस्तूप का पता लगाया और जब तक एक कथा शीर्षक उनका निबन्ध प्रकाशित नहीं हुआ तब तक ऐसी ही भ्रांति चलती रही ई. स. १९०१ में जब उनका यह निबन्ध प्रकाशित हुआ तब मालूम हुआ कि बौद्धों के समान बौद्धकाल से भी पहले जैनों के घेरे और स्तूप बहुलता से मौजूद थे।

भारतीय पुरातात्त्विक विद्वान दृढ़ता के साथ वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान शायद इसलिए भी मानने लगे हैं कि इस क्षेत्र में कुछ जैनतीर्थंकरों की खंडित अखंडित मूर्तियां प्राप्त हुई है परन्तु सैर्वश्री अजयकुमार सिन्हा रजिस्टरिंग पदाधिकारी पुरातत्व विभाग भागलपुर लिखते हैं कि पुरातत्ववेत्ता होने के नाते मैंने वैशाली, कुंडलपुर और लच्छुआड़ इन तीनों स्थानों का सर्वेक्षण किया है।

लच्छुआड़ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में भगवान महावीर की काले पाषाण की बैठी हुई कुछ आकर्षक मूर्तिया देखी हैं। जिनपर लेख अंकित हैं और काफी मूर्तियां जिनपर लेख अंकित नहीं हैं प्राचीनकाल की हैं वह जो मन्दिरों में पधारी हुई हैं और उनकी पूजा अर्चा होती है। निश्चय ही विक्रम की ९वीं शताब्दी की हैं तथा बहुत ही विशाल हैं। कुछ इन से भी प्राचीन हैं। ये सब बातें इस स्थान को जन्मस्थान मानने की पुष्टि करती हैं। परन्तु कोई भी ऐसा प्राचीन अवेशष वैशाली में नहीं पाया गया। ध्यानीय है कि परम्परायें मुश्किल से खतम हुआ करती हैं। प्राचीनकाल से ही इस परम्परा ने सुदूरवर्ती यात्रियों को लच्छुआड़ की ओर आकर्षित किया है। परन्तु वैशाली में भगवान महावीर का जन्मस्थान मान कर वहां कभी भी कोई जैनयात्रीसंघ या जैनयात्री नहीं गया और न हीआजतक इसका उल्लेख या विवरण ही मिल पाया है।

क्षत्रियकुंड की प्राचीन और अर्वाचीन मान्यताओं पर विचार

६-७ भौगोलिक और तर्क

(GEOGRAPHICALLY & LOGICALLY)

आर्यदेश और क्षत्रियकुंडनगर

(१) भारतवर्ष के मध्यखंड में २५।। (साढ़े पच्चीस) आर्यदेश (जनपद) हैं– जहां तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि शलाका-पुरुष जन्म लेते हैं, वे आर्यदेश कहे जाते हैं। तीर्थंकर, श्रमण-श्रमणियां प्रायः इन्हीं क्षेत्रों में विहार (आते, जाते और निवास करते हैं) इसलिए तीर्थंकरों की विहार-भूमियां, कल्याणक-भूमियां इन्हीं जनपदों में हैं। क्षत्रियकुंडनगर मगध जनपद में और वैशाली विदेह जनपद में हैं। ये दोनों आर्यदेश में हैं। यथा–

आर्यदेश नामावलि[62]

आर्यदेश	राजधानी	आर्यदेश	राजधानी	आर्यदेश	राजधानी
१. मगध	राजगृही	१०. जांगल	अहिछत्रा	१९. चेदी	शुक्तिमति
२ अंग	चम्पा	११. वत्स	कौशाम्बी	२०. सिधुसौवीर	बीतभयपतन
३. बंग	ताम्रलिप्त	१२. सौराष्ट्र	द्वारवती	२१. सुरसेन	मथुरा
४ कलिंग	कांचनपुर	१३. विदेह	मिथिला	२२. भंगी	पावा
५. काशी	वाराणसी	१४. मलय	भद्दिलपुर	२३. वर्त्त	मासपुरी
६. कोशल	साकेत	१५. मत्स्य	वेराट	२४. कुणाल	श्रीवस्ती
७. कुरु	हस्तिनापुर	१६ शांडिल्य	नन्दीपुर	२५. गड	कोटिवर्ष
८ कुशार्त	शौरीपुर	१७. अस्त्य	वारुणी	२५।। केकेय (पंजाब)	श्वेतांबिका (स्यालकोट)
९. पाचाल	कांपिल्य	१८. दशार्ण	मृतिकावती	के निकट एक नगर)	

बौद्धग्रंथों में १६ जनपद मध्यदेश में होना लिखा है। यथा– १. काशी, २. कौशल, ३. अंग ४. मगध ५. वज्जि, ६. चैतीय (चेटी) ७. मल्ल, ८. वंश (वत्स), ९. कुरु, १०, पांचाल, ११. मच्छ (मत्स्य) १२. शूरसेन १३. अस्मा (अश्यक), १४. अवन्ती १५. गांधार १६. कम्बोज।

जैनशास्त्रों २५।। आर्यदेशों, और बौद्धग्रंथों में १६ जनपदों को भारतवर्ष में मध्यदेश कहा है। यानि ये धर्मक्षेत्र हैं। अंग, मगध और वज्जि (विदेह) इन तीनों जनपदों को इन दोनों ने धर्मक्षेत्र कहा है।

भगवान महावीर की प्राचीन जन्मभूमि का मान्यता लच्छुआड़ के निकट कुंडग्राम मगध जनपद की है। अर्वाचीन मान्यता वज्जि (विदेह) जनपद की राजधानी वैशाली के एक मोहल्ले की है। ये दोनों मध्यदेश-आर्यक्षेत्रों में हैं।

विदेह की राजधानी वैशाली

भगवान महावीर के समय में वैशाली वज्जि गणतंत्र राज्य का केंद्र नगर एवं राजधानी थी। लिच्छवी क्षत्रिय जाति के चेटक यहां के महाराजा थे। उस समय लिच्छवियों का प्रभाव और प्रसिद्धि खूब थी। विदेह जनपद सभ्यता और संस्कृति की चरमसीमा पर थे। इतिहास में विदेह, वैदेही, विदेहदत्ता, लिच्छिवी दौहित्र, वैशालिक आदि विशेषण अथवा नाम विशेष आदरणीय एवं प्रशंसनीय थे। महाराजा चेटक के शासनकाल में वैशाली महावैभवशाली और उन्नत नगर था। यह भगवान महावीर की ननिहाल थी। महाराजा चेटक भगवान महावीर के मामा और नन्दीवर्धन के ससुर थे एवं दृढ़ जैनधर्मी थे।

वैशाली और वसाढ़

वैशाली ध्वंस हो जाने पर आज उसके स्थान पर वसाड़गढ़ है। जो पटना से २७ मील उत्तर की तरफ है। इसके वायव्यकोण में बनियागांव है। वायव्योत्तर में कोलुआगांव है। ईशान में वसुकुंडग्राम है और पूर्व में कामनगाच्छी है। नैऋत्य कोण में स्तप, बनिया और कोलुआ के पश्चिम में न्योगी नाला है। इसे नेवला नाम की नदी भी कहा जाता है। प्राचीनकाल की वैशाली, वाणिज्यग्राम और कोल्लाग के साथ अर्वाचीन वसाढ़, बनियां और कोलआ की मात्र नामसम्याता है। जबकि बनिया और वसाड़ के बीच गंडकी नदी है। यह भिन्नता है। नदी का बहाव बदल गया हो अथवा गांवों का स्थान बदल गया हो परन्तु यह बात चौकस है कि इस वसाढ़ और बनिया के बीच नदी नहीं है। ज्ञातिका अथवा नादिका गांव वैशाली के दक्षिण मे था, यह वसाढ के दक्षिण में नहीं है। वसुकंडग्राम वैशाली के ईशान में नहीं था। यह आज वसाढ़ के ईशान में है। क्षत्रियकुंड और ये दोनों एक कैसे बन सकते हैं? कुंडपुर के बदले वसुकुंड शब्द बने इसका आधार पाठ भी नहीं मिलता। कदाचित कल्पना करें तो भी कुंडग्राम के स्थान पर वसुकुंड बना हो ऐसा मानने के बदले वैश्यग्राम के स्थान पर वासुकुंड बना हो ऐसा मानना अधिक तर्कसंगत है। अलग प्रमाणों से यहां तो इतना ही कहा जा सकता है कि वैशाली के स्थान पर आज वसाढ़ गांव बसा हुआ है।

राजधानी कुंडपुर

आचारांग, भगवती, कल्पसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति में क्षत्रियकंड केलिये कंडपुरनगर, माहणकंडग्रामनगर, क्षत्रियकंडग्राम नगर, दक्षिण ब्राह्मणकंड सन्निवेश, उत्तरक्षत्रियकंडपुर सन्निवेश ब्राहमकुंडग्राम आदि शब्दों का प्रयोग है।[63] हमने यहां फुटनोट में आचारांग, कल्पसूत्र, भगवती, आवश्यक निर्युक्ति आदि के पाठों में आए कुंडपुर आदि शब्दों के प्रमाण दिये हैं।

इससे ज्ञात होता है कि कुंडपुर बड़ा नगर था। उस के दो भाग थे। पूर्व में ब्राह्मणकुंडनगर और पश्चिम में क्षत्रियकुंडनगर था। इन दोनों के भी दो-दो विभाग थे। १. उत्तर ब्राह्मणकुंडनगर और २. दक्षिण ब्राह्मणकुंडनगर। इन विभागों में ब्राह्मणों के घर विशेष थे। ३. उत्तर क्षत्रियकुंडनगर ४. दक्षिण क्षत्रियकुंडनगर इन दो विभागों में क्षत्रिय अधिक रहते थे। ब्राह्मणकुंड के पास **बहुशालचैत्य उद्यान** था। इस उद्यान के बीच में चैत्य था। क्षत्रियकुंड के पास **ज्ञातखंडवनउद्यान** था। इस उद्यान में चैत्य (मंदिर) नहीं था।[64] इसी उद्यान में भगवान महावीर ने दीक्षा ग्रहण की थी।

हम लिख आये है कि सन्निवेश के अनेक अर्थ है। सार्थवाह और मुसाफिर निवास जहां एक अर्थ यह भी होता है। जैसे वर्त्तमानकाल में अमुक-अमुक कोस के फासले पर मुसाफिरों की सुविधा केलिये डाकबंगले होते हैं। औरों केलिए पड़ाव स्थान होते हैं। मिनार होते हैं, सराय होती है, वैसे प्राचीन काल में मुसाफिरों केलिये बड़े-बड़े नगरों-गांवों में वैरान जंगलों में अमुक कोस के फासले पर बावडी, जलाशय, पुष्करणी के निकट सन्निवेश होते थे। क्षत्रियकुंड भी एक बड़ा नगर था, राजधानी भी थी। उसके बाहर सार्थवाहों, मुसाफिरो केलिये राज्य की तरफ से विश्रामस्थल बनाये जाते थे। इसलिए वे नगर-ग्राम सन्निवेश के नाम से भी प्रसिद्ध थे। कुंडपुर के राज्यपुत्र जमाली ने ५०० क्षत्रियों केसाथ और उसकी भार्या प्रियदर्शना ने १००० क्षत्रियाणियों के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षाएं ग्रहण की थीं। इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि यहा बहुत बड़ी सख्या में क्षत्रिय परिवार आबाद थे। इनकी ज्ञातृ प्रमुख अनेक जातियां थीं। इसी प्रकार ब्राह्मणकुंड में ब्राह्मणो के घर बड़ी सख्या में थे। इस प्रकार इस समुचय कुंडपुरनगर में मुख्य रूप से क्षत्रिय एवं ब्राह्मण और गौण रूप से वैश्य, शिल्पकार और अन्त्यज (चारों वर्णों के लोग रहते थे। इसलिए यह महानगर था। तथा ज्ञातृवंशीय सिद्धार्थ के पश्चात् उसके पुत्र नन्दीवर्धन की राजधानी था। इसलिये यह महानगर था)। कुंडपुर के नगर विभाग, घरों, उद्यानों, दुकानों, सन्निवेश के आंकड़ों से निःसंकोच कह सकते हैं कि भगवान महावीर के समय

कुंडपुर एक बड़ा जाहोजलाली वाला महानगर था। भगवान महावीर के स्वप्न, जन्म, वर्षीदान, दीक्षा आदि महोत्सवों के वर्णन भी कुंडपुर को बड़े महानगरों के रूप में समर्थन करते हैं।

कुंडपुरनगर के राज्यपरिवार के वर्णन में नरेन्द्र, दंडनायक, युवराज, सेनापति, कोतवाल, मंत्री, महामंत्री, दूत, द्वारपाल आदि बीस प्रकार के पदाधिकारियों के कल्पसूत्र में वर्णन से स्पष्ट है कि कुंडपुर को राजधानी के रूप में पूरा समर्थन मिलता है। (हम इस का वर्णन विस्तार पूर्वक पहले कर आए हैं)

जैसे वैशाली लिच्छिवियों (वज्जियों) का राजधानी थी, वैसे ही कुंडपुर भी एक महानगर और ज्ञातृक्षत्रियों की राजधानी था।

१. कुडपुर किस स्थान में था, शास्त्रों में इस का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु भगवान महावीर के विहार में ब्राह्मणकुंडग्राम का शास्त्रों में वर्णन आता है। यदि यह वही भगवान महावीर वाला ब्राह्मणकुंडपुर नगर हो तो निश्चय है कि कुंडपुर नगर गंगानदी के दक्षिण में था। क्योंकि भगवान राजगृही से विहार करते हुए कोल्लाग, स्वर्णखल, और ब्राह्मकुंडग्राम होकर चंपा पधारे थे और उन्होंने वहां चौमासा किया था। इसका उल्लेख हम आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७४-७५ मूलपाठ से कर आए हैं। इस संदर्भ में मान सकते हैं कि कुंडपुर गंगानदी के दक्षिण में राजगृही और चंपा के बीच में था। हम यह भी स्पष्ट कर आए हैं कि कुंडपुर एक स्वतंत्र राज्य था। उसके वायव्य में मगधराज्य उत्तर में मेदागिरि का प्रदेश और दक्षिण में मलय राज्य था।

२. हम विस्तार से लिख आए हैं कि कुंडपुरनगर पहाड़ी-घाटियों पर था। भगवान के गर्भावस्था में दोहलों की पूर्ति, जन्मोत्सव, क्रीड़ास्थल, दीक्षा; जमाली, प्रियदर्शना, ऋषभदत्त ब्राहमण दम्पत्ति की दीक्षाएं सभी इन्हीं घाटियों पर हुए थे और उन घटनाओं की स्मृति में उन घाटियों के नाम की दिक्करानी आदि आज भी इस क्षेत्र के आबाल-वृद्धों के मुख से मुखरित होते हैं। यद्यपि इन घाटियों के ये नामकरण क्यों हुए? इसे वे भूल चुके हैं।

३. ब्राह्मणकुंड के निकट बहुशालचैत्य उद्यान था जहां ऋषभदत्त आदि की दीक्षाएं हुई थीं। आज भी इस क्षेत्र में शाल-आंवला आदि वृक्षों की बहुतायत है। ये वृक्ष ऊंची पहाड़ियों पर ही पाए जाते हैं।

४. क्षत्रियकुंड से कुमारग्राम जाने के लिए जल-स्थल दो मार्ग थे ऐसी स्थिति पहाड़ी जमीन होने के कारण ही हो सकती है। क्योंकि नदियां पहाड़ों पर बल (मोड़) खाती हुई चलती हैं।

५. ऐसी स्थिति में कुंडपुर पहाड़ी-घाटी पर ही होना चाहिए। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। ऐसा भी हम लिख आए हैं कि प्राचीनकाल में अपनी एवं अपने देश की सुरक्षा केलिए अधिकतर पहाड़ियों पर ही राजधानियों का निर्माण होता था और उन्हें घेरते हुए किलों का निर्माण भी पहाड़ियों पर ही किया जाता था। जैसे चित्तौड़गढ़ आदि।

क्षत्रियकुंड और नाबिया (ज्ञातिक) गांव

आवश्यक निर्युक्ति में ज्ञातखंडवन से कुमारग्राम जाने केलिये जो नदीमार्ग है। उस नदी का नाम नहीं लिखा एवं यह भी नहीं पता चलता कि उसमें बारह मास पानी रहता था या नहीं। पर यह तो स्पष्ट है कि चौमासे में वर्षा के कारण सब नदियों में भरपूर पानी रहता है। इसलिये यह नदी कार्तिक-मगसिर मास में पानी से अवश्य भरपूर होगी। यह नदी पहाड़ी होने के कारण ऐसा बल खाती होगी कि थोड़ा अधिक चलने पर बल खाती हुई आगे चले जाने से कुमारग्राम को स्थलमार्ग से भी जाया जा सकता था।

नदी के सामने गांव हो तो नदी को पार करना ही पड़ता है। यदि नदी के इसी तट पर गांव-नगर हो और नदी बल खाती आगे बढ़ जावे और बीच में दूसरा बल खा कर पीछे चली जाती हो तब नदी के किनारे-किनारे स्थलमार्ग से चलकर सामने ग्राम पहुंच सकते हैं। यानि यदि ऐसा बल खायी नदी हो तो उसे लांघने की जरूरत नहीं पड़ती।

एक बात पहाड़ी नदियों की विशेष होती है- १. खानसमा और पीपर, २. लच्छुआड़ और क्षत्रियकुंड ३. खापा का बंगला और कालीकांकर, ४. वेतरबदनूर और एलचिपुर के बीच इसी प्रकार की नदियों में जलमार्ग और स्थलमार्ग पड़ते हैं।

क्षत्रियकुंड पहाड़ी-घाटी पर तो है ही। पहाड़ पर से समतल भूमि पर आने केलिये नदी किनारे का मार्ग अधिक सरल होता है। क्योंकि चौमासे में पहाड़ी नदियों का पानी अचानक वेग से तुफान बनकर बहता है। प्राचीनकाल में यहां नदी के पास एक ऐसा मार्ग होगा कि जहां से गुजरते हुए मुसाफिरों को नदी के खड़े-घाट चलना पड़ता होगा। अथवा नदी को दोबारा लांघ कर समतलभूमि पर आने केलिये उतार-चढ़ाव कठिन मार्ग भी होते हैं। अतः यहां नदी से दूर ऐसा रास्ता भी होगा कि जहां चलते हुए बीच में नदी नही आवे। क्षत्रियकुंड से कुमारग्राम जाने केलिये इसी प्रकार के दो मार्ग होना संभव है।

वैशाली वाली गंडकी नदी और क्षत्रियकुंड की पहाड़ी नदीये दोनों एक नहीं हैं। इन दोनों के बहने की दिशाएं भी अलग-अलग थीं। गंडकी द्वारा वैशाली से वाणिज्यग्राम जाने के लिए एक ही जलमार्ग था। एवं क्षत्रियकुंड से कुमारग्राम जाने केलिये जल-स्थल दो मार्ग थे।

जैसे गंडकी नदी और पहाड़ी नदी जुदा हैं वैसे वैशाली और कुंडपुर भी जुदा-जुदा नगर थे। वैशाली का राजा चेटक और कुंडपुर का राजा सिद्धार्थ परस्पर साला बहनोई थे। दोनों के राज्य भी जुदा जुदा थे। चेटक का राज्य गंगा के उत्तर विदेह में था और सिद्धार्थ का राज्य मगध जनपद में गंगा नदी के दक्षिण में था।

कुंडपुर और वैशाली के भौगोलिक परिपेक्ष में आगम में उल्लिखित नगरों, ग्रामों, नदियों का मेल नहीं खाता एवं दोनों के ग्रामों नगरों आदि के अन्तर और दिशाओं में भी मेल नहीं खाता। अत: ज्ञातिक (नदियागांव) क्षत्रियकंड नहीं हो सकता।

क्षत्रियकुंड और वसुकुंड

वसुकुंड क्षत्रियकुंड नहीं है और कुमारग्राम भी नहीं है। यदि कामनछपरगाछी को कुमारग्राम मान लिया जाय तो दिशा फेर है। वसुकुंड के वायव्य में कोल्हुआगांव है। अत: पहले कुमारग्राम चाहिए और बाद में कोल्हुआ। कामनछपरगाछी वसुकुंड के दक्षिण में है यह दिशा उल्टी पड़ती है। वसुकुंड और कुमारग्राम के बीच में नदी पड़ती है। कोल्लाग के बाद मोराक और अस्थिग्राम भी नहीं है। आ. विजयेन्द्र सूरि बौद्ध दिग्धनिकाय में बतलाए हुए वैशाली, भंडग्राम, हस्थिग्राम एवं जम्बग्राम में से **हस्थिग्राम को अस्थिग्राम मानते हैं**। जो वास्तव में शब्द भ्रममात्र है। भगवान महावीर अस्थिग्राम पधारे और बलदेव हस्तिग्राम यानि हाथीखाल गए। इन दोनों को एक मान लेना मात्र कल्पना नहीं तो और क्या है।

दूसरी बात यह है कि आचार्य श्री शक्तिसागर के आधार से पश्चिम में गंडकी नदी तक ही विदेह मानते हैं ऐसा मानने पर भी हाथीखाल को विदेह के अन्तर्गत मानते हैं। यह आश्चर्य की बात है। इस प्रकार चारों तरफ से विचार करें तो वसुकुंड को प्राचीन क्षत्रियकुंड के स्थान पर मानना प्रमाण संगत नहीं है।

यह बात ध्यानीय है कि इस प्रकरण में भौगोलिक दृष्टि से विचार चल रहा है। इसलिए प्राचीन क्षत्रियकुंड-लच्छुआड़ क्षेत्र के गांवों नगरों के परिपेक्ष्य पर भी भौगोलिक दृष्टि से विचार करना परमावश्यक है।

प्राचीन क्षत्रियकुंड और अर्वाचीन क्षत्रियकुंड में कुछ एकता भी मिलती है। प्राचीन क्षत्रियकुंड टूटकर अनेक छोटे-छोटे गांवों में बट गया है। गांवों में दीपाकरहर, गायघाट आदि सूचक नाम हैं। जन्मस्थान और माहना पास-पास में हैं। क्षत्रियकुंड के निकट कुराव-वन हैं। फिर बहवार (बहुवारि) नदी होकर कुमारग्राम जाते हैं। कुमारग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती है, लच्छुआड़ से वायव्यकोण में तीन मील की दूरी पर कुमारग्राम है और वहां से वायव्यकोण में पांच मील दूर कोनागग्राम है। वहां से दस मील की दूरी पर मोराग्राम है। इस के निकट बड़ नदी है। जो क्यूल नदी की शोखा रूप है। यह सब नाम भगवान महावीर के शुरूआत के विहार में ज्ञातखंडवण से जल-स्थल मार्ग से कुमारग्राम, कोल्लाग (कोनाग) सन्निवेश, मोराक (मोरा) सन्निवेश, अस्थिग्राम के पास की वेगवती (बहवार) आदि नामों के साथ (सामान्य परिवर्तन के साथ) बराबर मिलते हैं। लच्छुआड़ से अग्निकोण में बसबट्टी गांव है। वर्त्तमान में इस क्षत्रियकुंड के चारो ओर छोटे बड़े ग्रामों में जैनमंदिर थे। पर वर्त्तमान में नहीं है।

इस प्रकार यदि क्षत्रियकुंड तथा उसके समीप में भगवान के प्रथम विहार के अथवा घटनाओं के स्थान प्राचीन नामों अथवा साधारण अपभ्रंश केसाथ मिल जावें तो भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

भगवान महावीर का जन्म क्षत्रियकुंड में हुआ था। यह स्थान आज भी जन्मथान के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी शत-प्रतिशत यहां की स्थानीय जनता इसे जन्मस्थान (जन्मस्थान) के नाम से पहचानती है। किन्तु इसके वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ हैं। यहां एक प्राचीन जैनमंदिर भी है। यह स्थान बिहार राज्य के मुंगेर जिले के अन्तर्गत जमुई सबडिविजन के लच्छुआड़ नामक गांव के दक्षिण पर्वतश्रेणी के दक्षिण पार्श्व में अवस्थित है। उक्त मंदिर के ढाई कोस दूरी पर लोधापानी नामक स्थान है। यहां पुरातत्त्व के अवशेष प्राप्त होते हैं। लगता है कि यहां राजा सिद्धार्थ का महल स्थापित होगा। परन्तु आज यह पहाड़ी जंगली भीषणता के कारण वहां तक सभी यात्री नहीं जा पाते। सभी मंदिर तक पहुंचकर वापिस आ जाते हैं। विशेषतः क्षत्रियकुंड का उत्तरी भाग कितने ही छोटे बड़े और पहाड़ों और पहाड़ियों से घिरा है। देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि

उस समय के राजा ने बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से बचने केलिये अपनी राजधानी की सुरक्षा केलिए इस सुरक्षित स्थल को चुना होगा। ये छोटी बड़ी सुदृढ़ पहाड़ियां आज भी सुदृढ़ किले का काम कर रही हैं। उत्तर-पर्वत श्रेणी के उत्तर पश्चिम में कुंड नामक वह पवित्र स्थान है, जहां भगवान महावीर सर्वप्रथम माता के गर्भ में आए थे। यह स्थान आज भी गर्भ कल्याणक के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान के सभी कोड़ा-ब्राहमण जाति की बस्ती है जिसके नाम पर उस कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण के गोत्रका नाम कल्पसूत्र में आया है। जिस की स्त्री देवानन्दा के गर्भ में सर्वप्रथम भगवान महावीर आए थे। यहां पर दो जैनमंदिर हैं। जो क्रमशः गर्भ-कल्याणक और दीक्षा-कल्याणक के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान महावीर का दीक्षास्थान भी यही हैं।

भगवान महावीर देवलोक के पुष्पोत्तरविमान से च्युत होकर ब्राह्मणकुंडग्रामनगर में कोडाल गोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा की कुक्षी में अवतरित हुए थे। उसी गर्भ को शकेन्द्र ने दूत द्वारा क्षत्रियाणि माता त्रिशला के गर्भ में स्थापित कर दिया था।[64]

जिस क्षत्रियकुंडनगर का हम ऊपर जिकर कर आए हैं वहां पर जाने केलिये ब्राहमणकुंडनगर से बहुत बड़े और पांच छोटे-छोटे पहाड़ों तथा फिर एक बहुत बड़े सघणवण युक्त पहाड़ (सात पहाड़) लांघने पड़ते हैं। यह जन्मकल्याणक पर्वतश्रेणी के दक्षिण-पाश्र्व पर अवस्थित है।

हम लिख आए हैं कि अजातशत्रु ने वैशाली को ध्वंस कर दिया था। वहां की प्रजा को विवश होकर अपनी मातृभूमि को छोड़ना पड़ा। भगवान महावीर के बड़े भाई क्षत्रियकुंड के राजा नन्दीवर्धन जो लिच्छिवियों (राजा चेटक) के जंवाई (दामाद) थे इसलिए वैशाली से लिच्छिवियों के अनेक परिवार इन के संरक्षण में आकर बस गए। यह नगर लिच्छिवियों का निवासस्थान होने से लिच्छिआड़ नाम से प्रसिद्धि पा गया। वर्त्तमान लिच्छुआड़ नाम का नगर इस प्रसंग की पुष्टि करता है।

इसी लच्छुआड़ में मुर्शिदाबाद (बंगाल) निवासी बीसा ओसवाल (बड़े साजन) वंशीय दुग्गड़ गोत्रीय जैन श्वेतांबर धर्मानुयायी श्री प्रतापसिंह जी के सुपुत्र राय धनपतसिंह जी बहादुर के बनवाये हुए एक बहुत बड़ी जैनधर्मशाला और भगवान महावीर स्वामी का जैनमंदिर हैं। यहां जो यात्री जन्मस्थान क्षत्रियकुंड की यात्रा करने आते हैं, इसी धर्मशाला में निवास करते हैं।

इसी गांव के निकट जनसंघडीह नामक गांव है। जो जैन संघडीह का अपभ्रंश सर्वथा प्रतीत होता है। लच्छुआड़ से दो मील दूर बसकुट्टी गांव है जो

वैश्यपट्टी का द्योतक है। यहां से आठ मील पर **माहणागांव है**। जो ब्राह्मणकुंडग्राम का प्रतीक है। महावीरप्रभु के नाम पर **बीरडीह** है जो अपभ्रंश होकर **बरडीह** कहाजाता है। इसके समीप ही किसी टीले से मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। लच्छुआड़ के पूर्व में पांच मील की दूरी पर **महादेव-सिमरिया में पांच जिनालयों** (जैन मंदिरों) का उल्लेख भी मुनिश्री दर्शनविजय जी (त्रिपुटी) ने अपनी **पुस्तक क्षत्रियकुंड** में किया है। गिरुआ- परषंडा जो लच्छुआड़ से पाचमील दूर पूर्वोत्तर की ओर है, वहां एक प्राचीन जैन तीर्थंकर की मूर्ति है जिसे जैनेतर लोग किसी अन्य देवता के नाम से बड़ी श्रद्धा और भक्ति से पूजते हैं।

श्री नरेशचंद्र मिश्र 'भंजन' जो मननगांव निवासी है। वे लिखते हैं कि यायावर बनकर मैं इन गांवों में घूम-घूम कर देख चुका हूं और गेरुआपरषंडा में भी मुझे लगातार ११वर्षों तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसी गांव के समीप धनामागांव में एक छोटी पहाड़ी है। जिस पर लगभग ढाई हजार वर्ष के एक विशाल मंदिर के अवशेष हैं। नींव की ईंटें बहुत ही बड़ी हैं। जैसे ई. पू. तीसरी शती की होती हैं। उसी की बगल में एक गहरा कुंआ है। **जिस में जैन और जैनेतर मूर्तियां उपलब्ध होती रहती हैं।**। अगर प्रयत्न किया जाय तो इस कुए में जैनमूर्तियां का उद्धार संभव है और इस क्षेत्र के जैन इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। इसी पहाड़ी में एक गुफा है, जो संभवतः जैनमुनियों का ध्यानस्थान रहा होगा। पहाड़ी के नीचे विस्तृत क्षेत्र में प्राचीन आबादी के अवशेष हैं। ढाई हजार वर्ष पुराने कितने ही कुंए हैं। जो उस समय की बड़ी-बड़ी ईंटों से बने हैं।

काकंदी

गेरुआपरषंडा से केवल चार मील की दूरी पर काकंदी जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ (पुष्पदंत) के च्यवन (गर्भ), जन्म, दीक्षा तीन कल्याणक हुए हैं। भगवान महावीर के समय यहां का राजा जितशत्रु था। इस नगर के बाहर सहस्राभ्र वन उद्यान था। भगवान महावीर यहा कितनी ही बार आए थे। भद्र सार्थवाह के पुत्र धन्ना एवं सुनक्षत्र ने यहीं पर भगवान महावीर से दीक्षाएं ग्रहण की थीं। प्रभु महावीर के श्रमण शिष्य क्षेमक और धृतिधर गृहस्थाश्रम में यहीं के रहने वाले थे। स्थानीय सर्वसाधारण जनता आज इस गांव को **काकन** नाम से पहचानती है। यहां टीले पर एक विस्तृत भव्य जैनमंदिर है। टीले का बृहद् आकार सुरम्य स्थान तथा प्राचीन तालाब आदि इसकी प्राचीन महत्ता के प्रमाण है। प्राकृत भाषा में इस नगरी के नाम के कितने

ही रूप है। यथा– काकन्दी, कागंदी और काइदी कल्पसूत्र की स्थविरावलि में जैन श्रमणों के गणों, शाखाओं और कुलों की विस्तृत सूचि मिलती हैं। जिसके अनुसार **काकंदीय** शाखा का संबन्ध यहीं से ज्ञात होता है 'विक्रम संवत्' १४८९ में जिनवर्धन सूरि चतुर्विध संघ के साथ यहां यात्रा करने आये थे। पावापुरी, नालंदा, कुडंग्राम और काकंदी आदि जैनतीर्थों की यात्रा करने का उन्होंने उल्लेख किया है। इससे भी सिद्ध है कि **कुंडग्राम और काकंदी** समीप में अवस्थित थे। हाल में ही उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ है। मंदिर के आसपास प्राचीन भवनों के प्रस्तर, ईंटों, मिट्टी के बर्तनों के थोड़े बहुत अवशेष बिखरे पड़े हैं। भूमि की खुदाई से जो ईंटे मिली हैं वे १६ x११x३ की हैं। उपर्युक्त भव्य विशाल जैनमंदिर में तेईसवें तीर्थंकर श्री पाश्र्वनाथ की मूर्ति और नौवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ के चरणबिंब हैं। उनपर लेख भी अंकित हैं जो वि. सं. १५०४ के हैं। इस स्थान की पुष्टि तब और हो जाती है जब लच्छुआड़गांव से तीन मील की दूरी पर **लोहड़ाग्राम** को देखते हैं। उस समय यह भी राजा जितशत्रु के अधिकार में था। **प्राचीन लोहर्गला और आज का लोहडा** अपनी प्राचीनता को प्रकट करता है।

१. जैनसूत्रों से ज्ञात होता है कि भगवान महावीर बहुशालचैत्य उद्यान में कई बार पधारे थे। आज भी यह स्थान औषधियों का भंडार है और शालवृक्षों की बहुलता भी है। आज भी जो बहुशालचैत्य नाम को सार्थक करती है।

२. इस क्षेत्र में आमिलिकी (आवला) वृक्षों का आज भी आधिक्य है। यहां वाल्यकाल में राजकुमार वर्धमान महावीर अपने बाल मित्रों के साथ खेलने आते थे। जो जैनशास्त्रों में आमलिकी क्रीड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। शाल, आंवला, अर्जुन, पलाश, आदि के वृक्ष पहाड़ी भाग में ही पैदा होते हैं। मैदानी इलाके में पैदा नहीं होते। यह भी ध्यानीय है कि शास्त्र में क्षत्रियकुंडनगर से बहशालचैत्य उद्यान तक के वर्णन में जितने प्रकार के वृक्षों के वर्णन आए हैं वे मब पहाडी भाग में ही पैदा होते हैं।

३. यद्यपि आज यहां के स्थानीय लोग बहुशालचैत्य उद्यान और ब्राह्मणकुंडग्राम को भूल चुके हैं। ये लोग आज इसे **कुंडघाट** कहते हैं। क्योंकि आज यहां प्राचीन विशाल कुंड पर्वतश्रेणी की तलहटी में उस स्थान की सुंदरता मे चारचांद लगा रहा है। इसके बीच में एक बरसाती नदी बहती है जिसे लोग बहवार कहते हैं। बहंशालचैत्य उद्यान के पास इस नदी के किनारे के भाग निरीक्षण करने से काफी दूर तक ऐसा प्रतीत होता है कि अतिप्राचीन काल में कोई मजबूत दीवार रही होगी। क्योंकि विचित्र गारे के मसाले से बना हुआ किनारे का भाग सदृढ़ प्रतीत होता है।

४. इसके समीप ही ऋषड़ी नामक ग्राम है। ब्राह्मणकुंड के समीप होने से ऋषभदत्त ब्राह्मण के नाम पर इसका नाम सहज ही संभाव्य है।

५. भगवान महावीर दीक्षा लेने के बाद क्षत्रियकुंड के ज्ञातखंडवण उद्यान से कुमारग्राम गये। यह स्थान यहां से पांच मील की दूरी पर है। यह आज भी कुमार नाम से प्रसिद्ध है।

६. इसके अनन्तर भगवान कोल्लाग-सन्निवेश में गए थे।[66] आगम में चार कोल्लाग कहे हैं, इन नामसाम्य के कारण आज विद्वान निष्फल हो जाते हैं कि कुमारग्राम से विहार करके भगवान कौन से कोल्लाग में गये। उन्हें चाहिए कि आगे-पीछे का खूब गहरायी से विचार कर भौगोलिक दृष्टि से निर्णय लें। ज्ञातखंडवन से कुमारग्राम और वहा से कोल्लाग-सन्निवेश, वहां से मोराक सन्निवेश, अस्थिग्राम आदि समग्र का विचार करने से मगध-जनपद में लच्छुआड़ के समीप क्षत्रियकुंड के निकट जो कोल्लाग-सन्निवेश है, प्रभु ने दीक्षा लेने के बाद वहीं छठ तप का पारणा किया था। इसका निर्णय अवश्य कर पायेंगे। शेष तीन कोल्लाग भगवान महावीर के दीक्षा स्थल ज्ञातखंडवण से इतने दूर थे कि पारणे वाले दिन चंद घंटों में वहा पहुंच पाना एकदम असंभव था। अत: लच्छुआड़ के समीप भगवान कोल्लाग सन्निवेश में पारणा करके वहां से विहार करके स्वर्णखल नाम के ग्राम में पहुंचे।

७. स्वर्णखल, कोल्लाग से सात मील की दूरी पर सोनखार नामक ग्राम है। संभव है कि स्वर्णखल शब्द अपभ्रंश होकर सोनखार हो गया हो। इस प्रकार प्रभु भ्रमण करते थे।

८. प्रभु मोराक सन्निवेश पहुंचे और दूइज्जंत नामक तापस के आश्रम में आये।[67] लच्छुआड़ से १४ मील की दूरी पर आज भी मोरा नामक ग्राम है। संभवत: मोराक का अपभ्रंश मोरा हो गया है।

९. जैनागमों से ज्ञात होता है कि क्षत्रियकुंड से चलकर भगवान राजगृही पहुंचे तो दक्षिण-वाचाला से उत्तर-वाचाला होकर जाना पड़ता था। आज के नक्शे (मानचित्र) के अनुसार भी राजगृही क्षत्रियकुंड से उक्त दिशा में ही पड़ता है। क्या ऐसा दशा में भी क्षत्रियकुंड वैशाली का मोहल्ला या उपनगर माना जा सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि क्षत्रियकुंड वैशाली से बिल्कुल अलग-थलग प्रभुता सम्पन्न राज्य था। वैशाली भगवान के मामा चेटक के गणतंत्र की राजधानी थी। मामा के घर में भगवान महावीर के जन्म होने का कोई संकेत शास्त्र में अथवा इतिहास में नहीं मिलता

१०. हम लिख आये है कि भगवान महावीर के उपदेश की भाषा अर्धमागधी थी जो उस समय मगध तथा उस क्षेत्र के आस-पास की मातृभाषा थी। उनके उपदेशों का संग्रह रूप जैनागम भी इसी भाषा[67] में विद्यमान हैं। यदि भगवान का जन्म वैशाली में होता तो उनकी भाषा अर्द्धमागधी न होकर कोई दूसरी भाषा होती। पर ऐसा नहीं हुआ। हम इस का वर्णन पहले विस्तार से कर आए हैं।

११. उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भगवान की भाषा अर्द्धमागधी अंग, मगध, बंग-जनपदों में होने से उनका जन्मस्थान कुंडपुर क्षत्रियकुंडनगर मगध जनपद में ही था। यदि भगवान का जन्म वैशाली में हुआ होता गृहस्थावस्था के तीस वर्ष वहां व्यतीत किये होते तो उनकी भाषा अर्द्धमागधी न होकर कोई दूसरी भाषा होती। अतः मगध जनपद में ही लच्छुआड़ के निकट वाला कुंडपुर ही जन्मस्थान था। यह निःसंदेह है।

कल्पसूत्र में भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ के तीन नामों का उल्लेख है– १. सिद्धार्थ, २. श्रेयांस ३. यशस्वी। माता त्रिशला के भी तीन नामों का उल्लेख है– १. त्रिशला, २. विदेहदिन्ना और ३. प्रियकारिण।[68]

१२. भगवान महावीर की माता रानी-त्रिशला केलिये विदेहदिन्ना तथा भगवान के लिये विदेह, वेसालिए शब्दों का प्रयोग हुआ है। वह भगवान के जन्मक्षेत्र के लिये नहीं परन्तु उनके गुण-निष्पन्न हैं। इसलिये इन शब्दो से भगवान महावीर के जन्मस्थान की धारणा करना आधुनिक विद्वानों की एकदम भ्रांत मान्यता है। हम इस की विस्तार से विवेचना कर आए हैं। अतः यहां पिष्टपेषण करना अनावश्यक है।

१३. हमने यहां भगवान महावीर के प्राचीन पक्षधरों की क्षत्रियक्षेत्र की जन्मस्थान की मान्यता की सिद्धि भौगोलिक प्रमाणों का उल्लेख करके तर्कसंगत विवेचन से कर दिया है।

१४. वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने वाले अर्वाचीन पक्षधरों के पास अन्य प्रमाणों के अभाव के साथ भौगोलिक प्रमाणों का भी प्रायः अभाव ही है। इस विषय में आजतक वे मौन पाए जाते हैं। इनकी सारी भ्रांत मान्यताओ पर हम विस्तार से उहापोह कर आए हैं। अतः स्पष्ट है कि इन की वैशाली की जन्मस्थान की मान्यताएं मात्र अटकलों पर आधारित होने से स्वीकार नहीं की जा सकतीं।

१५. अतः सब दृष्टियों से विचार करने पर प्राचीन मान्यता ही सच्ची प्रतीत होती है। आधूनिक विद्वानों की खोखली, भ्रांत और गलत धाराणाओं और

प्रेरणा से प्रभावित होकर बिहार सरकार ने इन्हें सच्ची मानकर भगवान महावीर का जन्मस्थान वैशाली को स्थापित करने और विकास केलिए काफी प्रयत्न व प्रोत्साहन दिया है। वहां भगवान महावीर का जन्मदिन चैत्र शुक्ला १३ को भगवान महावीर की जयंती के रूप में मनाया जाने लगा है, वहां पहली जन्मजयंती के अवसर पर दस हजार लोग शामिल हुए थे और बड़े ठाठ के साथ जयन्ती महोत्सव मनाया गया था। इससे दिगम्बर संप्रदाय को डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। वह यहां जन्मस्थान मानकर भगवान महावीर का दिगम्बर संप्रदाय का मंदिर और जैन-शोधसंस्थान बनाने में सक्रिय हो गया। बिहार सरकार और श्वेतांबर जैनों ने भी इस शोधसंस्थान के निर्माण और संचालन में पर्याप्त आर्थिक आदि योगदान दिया। दिगम्बर संप्रदाय प्राचीनकाल से ही नालंदा के निकट बड़गांव को कुंडलपुर मानकर भगवान महावीर का जन्मस्थान मानता आ रहा था। पर इसके समर्थन में उन्हें कोई विशेष प्रमाण न मिल रहे थे इसलिए उनका झुकाव अर्वाचीन वैशाली को भगवान महावीर का जन्मस्थान मानने केलिये स्वाभाविक था। क्योंकि उन्हें अर्वाचीन विद्वानों और बिहार सरकार का समर्थन मिल रहा था चाहे यह मान्यता भी खोखली और भ्रांत थी।

परन्तु श्वेताम्बर जैन परम्परा के पास मगध जनपद में मुंगेर जिलांतर्गत लच्छुआड़ के निकट कुंडपुर-क्षत्रियकुंड की जन्मस्थान की मान्यता १. जैन आगम शास्त्र, साहित्य २. इतिहास ३. भूगोल ४. भूतत्त्वविधा, ५. पुरातत्त्व ६. भाषाशास्त्र एवं ७. प्राचीनकाल से ही इस महानतीर्थ पर यात्रा केलिए यात्रियों, यात्रासंघों के पधारने और लिखित समर्थित प्रमाणों के विद्यमान होने से भगवान महावीर के समय से ही उनकी वास्तविक जन्मस्थान की मान्यता स्थाई रूप से चली आ रही है। आज भी इसे ही तीर्थ रूप मानकर हजारों जैन श्रद्धालु यहां यात्रा करने केलिए आते रहते हैं और आराधना-साधना में आत्मकल्याण कर कृतकृत्य होते हैं। तथापि स्व. आचार्य विजयेन्द्र सूरि एवं स्व. पं. कल्याणविजय जी श्वेतांबर साधुओं ने भी वैशाली को जन्मस्थान मानने की आर्वाचीन खोखली और भ्रांत मान्यता का समर्थन कर दिया है तो भी श्वेताम्बर जैनपरम्परा का झुकाव वैशाली की ओर नहीं हो सका।

आज से ३७ वर्ष पहले तपगच्छीय श्वेतांबर जैन परम्परा के स्व. मुनि श्री दर्शन-विजय जी (त्रिपुटी) ने वैशाली के जन्मस्थान को अमान्य और श्वेताम्बर जैन परम्परा एवं जैनागमों की प्राचीन मान्यता क्षत्रियकुंड के भगवान महावीर के जन्मस्थान की पुष्टि में अकाट्य प्रमाणों से गुजराती में पुस्तक लिखकर

अहमदाबाद से प्रकाशित कराई थी। खेद है कि इसकी ओर विद्वानों ने ध्यान ही नहीं दिया और न हीं प्रकाशक संस्था ने इस के व्यापक प्रचार-प्रसार की जरूरत समझी। परिणाम यह हुआ कि पाश्चिमात्य और उनका अंधानुकरण करने वाले आधुनिक भारतीय अन्वेशकों के प्रभाव में ही सब बहते चले गए। अतः यह भ्रांत मान्यता सर्वव्यापक रूप धारण करती गई।

मुनि श्री दर्शनविजय जी (त्रिपुटी) ने अपने मुनियों के साथ कलकत्ता में चतुर्मास करने केबाद विहार करके **विक्रम संवत् १९८७** में इस प्रदेश में स्वयं पैदल भ्रमण कर प्रत्यक्ष वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन किया था। वर्त्तमान में एक.दो पुस्तकें इसी विषय के समर्थन में विहार प्रदेश के जैनेतर स्कालरों ने भी हिन्दी में लिखकर प्रकाशित की है।

८. यात्री (PILGRIMS)

यात्रियों द्वारा लिखित तीर्थमालाएं आदि

इस क्षत्रियकुंड के आस-पास कई नगरों गावों में प्राचीनकाल से ही जैनमंदिर थे। जिनका उल्लेख तीर्थमालाओं में हुआ है। महादेव-समरिया में (लच्छुआड़ को पूर्व दिशा में) पांच जैनमंदिर थे, जिन की प्रतिमाएं वहां के लोगों ने तालाब में डाल दी हैं। यद्यपि आसपास के गांवों में काफी जैन अवशेष नष्ट कर दिए गए हैं तो भी खोज करने से आज भी बहुत अवशेष मिल सकते हैं।

वर्तमान क्षत्रियकुंड बहुत प्राचीन स्थान है। कुंडघाट की नदी के किनारों पर दो प्राचीन जैनमंदिर हैं। एवं पहाड़ी पार करने पर जन्मस्थान का मंदिर है जहां सिद्धार्थ राजा का महल था। वर्तमान जन्मस्थान से दो मील दूर लोधापानी में जंगल-झाड़ियों के बीच इस महल के खंडहर विद्यमान हैं। यहां के मंदिरों की ईंटें १५०० वर्ष पुरानी हैं। प्राचीनकाल से जैन यात्रीसंघ यहां यात्रा केलिये आते रहे हैं। यद्यपि प्राचीन इतिहास के नष्ट हो जाने से और जो हैं उनकी नकलें करके प्रचारित न होने से अधिक लेख प्राप्य नहीं हैं। फिर भी यहां के यात्रीसंघों के यात्रा वर्णन मिलते हैं। यह प्राचीन अविच्छिन्न परम्परा को प्रभावित करते हैं।

१. युगप्रधान आचार्य गुर्वावली

यह एक प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथ है। जिसमें वि. सं. की १४ वीं शताब्दी तक की घटनायें देनदिनी की भांति समसामयिक लिखी हुई मिलती हैं। उसमें

लिखा है कि वि. सं. १३५२ में श्री जिनचंद्र सूरि के उपदेश से वाचक राजशेखर सुबुद्धिराज, हेमतिलक गणि, पुण्यकीर्तिगणि, रत्नमंदिर मुनि के साथ बडगांव नालंदा के निकट गौतमस्वामी के जन्मस्थान में पधारे। वहां के ठक्कर रत्नपाल, सा. चाहड़, प्रधानश्रावक प्रेषित भाई हेमराज वांचू श्रावक युक्त सा. बोहित्थ पुत्र मूलदेव श्रावक ने कौशांबी, वाराणसी, काकंदी, राजगृही, पावापुरी, नालंदा, **क्षत्रियकुंडग्राम**, अयोध्या, रत्नपुरी आदि जिनजन्म आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा की। उसी श्रावकसंघ के साथ समुदाय सहित राजशेखरगणि ने हस्तिनापुर तीर्थ आदि की यात्रा करके राजगृही के समीपवर्ती उद्दड़ विहार में चतुर्मास किया। यहां मालारोपन आदि नन्दीमहोत्सव हुए।

ध्यानीय है कि क्षत्रियकुंड की यात्रा नालंदा की यात्रा के बाद और अयोध्या की यात्रा से पहले का उल्लेख है। अतः **क्षत्रियकुंडग्राम** नालंदा, राजगृही के निकट गंगानदी के दक्षिण में था। इस **क्षत्रियकुंडग्राम** की भगवान महावीर के जन्मस्थान के रूप में संघ ने यात्रा की। इस से स्पष्ट है कि वैशाली को न तो जन्मस्थान की मान्यता थी और न ही इसे सामान्य तीर्थ की मान्यता थी। इसी लिये यात्रासंघ ने यहां की यात्रा नहीं की। यद्यपि कौशांबी की यात्रा के बाद अथवा पहले भी वैशाली रास्ते में थी।

२. श्री जिनोदय सूरि द्वारा विज्ञप्ति

वि. सं. १४३१ में अयोध्या स्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अनहिलपुर से श्रीजिनोदय सूरि द्वारा प्रेषित विज्ञप्ति महालेख से विदित होता है। कि लोकहिताचार्य इतः पूर्वमंत्रीमंडलीय वंशोद्भव ठक्कर चंद्रांगज सुश्रावक राजदेव आदि के निवेदन से विहार करके राजगृही आदि में विचरे थे। उस समय वहां कई भव्य जिनप्रासादों का निर्माण हुआ था। सूरि जी यहां से **ब्राह्मण कुंड, क्षत्रियकुंड** जाकर यात्रा कर आए और वापिस राजगृही आकर विपुलाचल वैभारगिरि पर जिनबिंबादि की प्रतिष्ठाएं कराईं।

इस लेख से भी यहीं संकेत मिलता है कि **क्षत्रियकुंड, ब्राह्मणकुंड** राजगृही के निकट गंगानदी के दक्षिण में थे।

३. जिनवर्धन सूरि कृत पूर्वदेश चैत्यपरिपाटी स्तवन

वि. सं. १४६१ से १४८६ के बीच में इस चैत्यपरिपाटी स्तवन में लिखा है कि–

> सिद्धगणराय सिद्धत्थकुल मंडनं रूद्द-दालिद खंडणं।
> **बमणकुंडपुरी** थुणऊं जणरंजण **खत्तियाकुंड गामम्मि** वीरजिण

४. श्री जिनवर्द्धन सूरि कृत रास

वि सं १४८९ में रचित इस रास में उनके पांच वर्षो तक पूर्वदेश में विचरण कर नाना धर्म प्रभावनाएं करने का उल्लेख है। जिन में पावापुरी, नालंदा. **कुंडग्राम, काकंदी** की यात्रा का भी वर्णन है। उन्होंने स्वयं १४६७ वि. सं. पूर्वदश चैत्यपरिपाटी की रचना की, जिस मे **ब्राह्मणकुंड, क्षत्रियकुंड और काकंदी** की यात्रा करने का उल्लख किया है।

५. उपाध्याय जयसागर द्वारा लिखित प्रशस्ति

उपाध्याय जी के वि सं १५२४ मे राजगृही में प्रतिष्ठादि कराने के अभिलख हैं। उन्होंने वहां से जाकर **क्षत्रियकुंड की यात्रा** की थी। इन के द्वारा लिखित वि. सं. १५२५ मे आवश्यक पम्पिका और दशवैकालिक वृत्ति की प्रशस्ति मे इस यात्रा का उल्लेख पाया जाता है।

६. कवि हंससोम कृत तीर्थमाला

इस तीर्थमाला मे लिखा है कि वि स. १५६५ में इन्होंने भगवान **महावीर** के जन्मस्थान **क्षत्रियकुंड** तथा नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ के जन्मस्थान **काकंदी** आदि तीर्थो की यात्राए की थीं

> "हवइ चालिया **क्षत्रियकुंड** मनि भावधरीजइ।
> तीस कोस पंथई गया देवल देखईजइ।।
> **निर्मल** कुंडइ करी स्नान धोअति पहिरीजइ।
> वीरनाह वंदी करी महापूजा रचीजइ।।
> **बालपणि क्रीड़ा करी ए देखि आंवला रूख।**
> राय सिद्धार्थ घरई निरखई पेखतां गइ त्रिस-भूख ।।२३।।
> दोह कोस पासइ अच्छइ माहणकुंडगाम

क्षत्रियकुंडकी पर्वत तलहटीमें च्यवनकल्याणक मंदिर में भगवान महावीरकी प्रतिमा।

जन्म स्थान क्षत्रिय कुण्ड

जन्मस्थान क्षत्रियकुंड के मंदिरमें भगवान महावीर की प्रतिमा।

क्षत्रियकुंड पर्वत की तलहटी में भगवान महावीर के दीक्षा कल्याणक मंदिर में भगवान महावीर की प्रतिमा
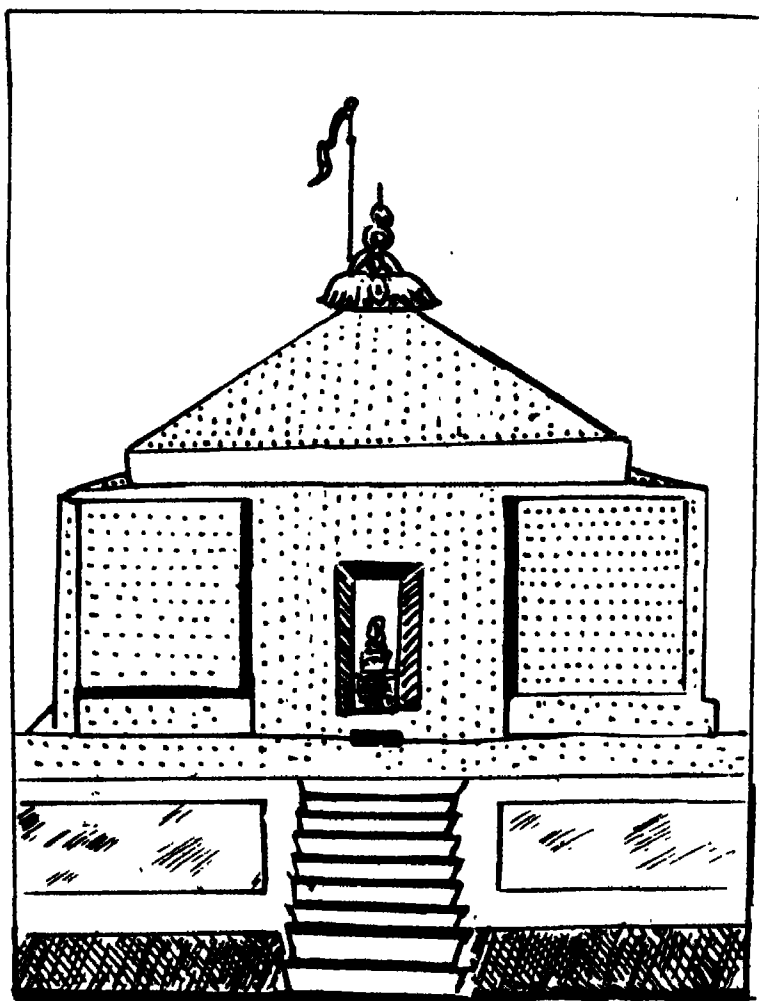
क्षत्रियकुंड स्थित भगवान महावीर का मंदिर

देवानंदा तणी कुखई अवतरया ठाम।।
ते पूरइ मुझ मन आस भावन भावई गोरडीए।
गाई नितु रास वीरनाह निहालताए।।
ते प्रतिमा वंदइ करइ सारिया सवि काम।
पांच कोश काकन्दीनगर श्री सुविधिइ जनम।।२४।।

अर्थात्- राजगृही -ऋजुबालुका से तीस कोस चलकर क्षत्रियकुंड महावीर जन्मस्थान पहुंचे। कुंड के निर्मल जल से स्नान करके पूजा के धोती आदि शुद्धवस्त्र पहनकर प्रभु वरिनाथ (भगवान महावीर) के मंदिर में श्रद्धा और भक्ति पूर्वक बड़े ठाठ-बाठ के साथ पूजा की। जहां भगवान महावीर ने बचपन में आमलिकी (आंवला के वृक्ष पर) क्रीड़ाएं की थीं। वहां आंवले के वृक्ष को देखा। राजा सिद्धार्थ का महल भी देखा। जिन्हें देख कर भूख-प्यास मिट गई। यहां से दो कोस चल कर ब्राह्मणकुंडग्राम में पहुंचे, जहां देवानंदा की कुक्षी में भगवान महावीर अवतरित हुए यहां भगवान महावीर की प्रतिमा की अर्चा-पूजन-वन्दन-गीतगान, गानाबजाना नृत्य आदि से भक्ति करके यह भावना की कि हे प्रभु मेरी मोक्ष पाने की भावना पूरी करो। यहां से पांच कोस चल कर नौवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ की जन्मभूमि काकंदी के तीर्थ की यात्रा की।

१. उपर्युक्त विवरण में १. क्षत्रियकुंडनगर जहां प्रभु का जन्मस्थान था में वि. सं. १५६५ में भगवान महावीर का मंदिर २. आंवले का वृक्ष जहा वर्धमानकुमार बचपन में बालसखाओं के साथ खेलने गये थे, ३. निर्मल जल का कुंड जहां यात्रियों ने स्नान किया, ४. राजा सिद्धार्थ का राजमहल विद्यमान थे। ध्यानीय है कि जलकुंड आज भी क्षत्रियकुंड पर्वत की तलहटी में विद्यमान है, जिस में से आज भी बहुवारि नदी निकल कर इस प्रदेश में बहती है। जिस का उल्लेख हम पहले कर आए हैं।

२. ब्राह्मणकुंड जहां भगवान महावीर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में अवतरित हुए थे। वहां भी यात्रियों ने प्रभु महावीर के मंदिर में बड़ी श्रद्धा भक्ति से पूजा गीतगान आदि किए।

३. इस से स्पष्ट है कि क्षत्रियकुंड और ब्राह्मणकुड पास-पास थे, दोनों जगह भगवान महावीर के मंदिर थे।

४. यहां से पांच कोस की दूरी पर काकंदी में नौवें तीर्थंकर भगवान सुविधिनाथ का जन्मस्थान था और वहीं टीले पर इन का मंदिर था।

५. इसी तीर्थमाला में लिखा है कि यहां से ६० मील चंपा नगर था। इसी तीर्थमाला में सम्मेतशिखर तीर्थ से ऋजुबालुका नदी के तट पर जंभीग्राम में भगवान के केवलज्ञान स्थल में भगवान महावीर के मंदिर का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

७. मुनिप्रभसूरि कृत तीर्थमाला

इस तीर्थमाला में **माहण— खत्तियकुंडगाम में** मंदिर का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

८. श्रीपति भैरव कृत तीर्थमाला

श्री विजयदान सूरि शिष्य श्रीपति नाम से युक्त भैरव कृत तीर्थमाला में अलवर के संघ के वर्णन में पावापुरी से विहार करके तुंगिया होकर **क्षत्रियकुंड-ब्राह्मणकुंड** यात्रा का उल्लेख है।

> **खत्रियकुंड** सोहमणउ जिहां जन्मया चरम जिनंद।
> आज तीर्थनउ राजियउ जसु सेवत हो चउसठी इंद।।६२।।
> कोश त्रिणि जिहां थी अच्छूइ माहणकुंड सुखेव।
> सुर सुख भोगीय अवतर्यो तिण वीरई किय ठाम पवित्त।।६३।।
> जिनहर ने नमि चालिया इम नगर उपरी अधकोस।
> **जन्मभूमि** जिन गुणथुनूं हिव रसिया बहु भव चो दोस।।६४।।
> **काकंदीनगरी** कही एक योजन गाउ एक (पांच मील)।
> सुविधिनाथ तिहां जनमियां ते थान कहो थुणउ धरिय विवेक।
> चउदस सहित मुनिवर भला तिहां मइं प्रशंसई धीर।।६५।।
> भद्रानंदन जोइ धन्य धन्ना हो साहस धीर।।६६।।

अर्थात्— क्षत्रियकुंड बहुत सुहावना है जहां अंतिम तीर्थंकर (महावीर) ने जन्म लिया। वे इस तीर्थ के स्वामी हैं जिन की चौसठ इंद्रों ने चरण पूजा-सेवा की है। यहां से तीन कोस **ब्राह्मणकुंडग्राम** सुखदाता है। जहां देवलोक का सुख भोग कर (महावीर) अवतरित हुए और इस भूमि को पवित्र किया। यहां प्रभु महावीर के मंदिर में वंदना-नमस्कार कर आधा कोस से अधिक चलकर भगवान महावीर की जन्मभूमि पर संघ पहुंचा। यहां प्रभु महावीर के मंदिर में प्रभु के गुणों की स्तवना कर बहुत भवों के कर्मदोषों की निर्जरा की। यहां से पांच मील चलकर काकंदी नगरी पहुंचे जहां नौवे तीर्थंकर सुविधिनाथ ने जन्म लिया।

सेठानी भद्रा के पुत्र महाश्रेष्ठि धन्ना ने भी यहीं जन्म लिया था। जिसने ३२ स्त्रियां, सब परिवार, अखूट लक्ष्मी संपदा आदि सब परिग्रह का त्याग कर भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। यहां संघ के जिनमंदिर की यात्रा करने का वर्णन है। कवि ने १४ साधुओं के साथ क्षत्रियकुंड, ब्राह्मणकुंड और काकंदी का यात्रा करने का वर्णन किया है।

९. कवि मुनि विनयसागर कृत-यात्रासंघ विवरण

वि. सं. १६७० में आगरा (उत्तरप्रदेश) के लोढ़ा गोत्रीय बीसा ओसवाल कंवरपाल सोनपाल के यात्रासंघ के वर्णन में इस प्रकार कहा है कि—

> **खत्रियकुंड** सुहामणउ तिहां जनम्या **वर्धमान** रे।
> **काकंदी**, परिवन्दयइ श्री **सुविधिनाथ** जिनभान रे।।७२।।

अर्थात्- क्षत्रियकुंड जहां भगवान महावीर का जन्म हुआ, काकंदी जंहा भगवान सुविधिनाथ का जन्म हुआ था। संघ ने इन तीर्थों की भी यात्रा की थी।

पुनश्च- इन्हीं कंवरपाल सोनपाल ने आगरा के मोतीकटड़ा के मेन-बाजार में भव्य जैनमंदिर का निर्माण और प्रतिष्ठा कराई और पौषधशाला का निर्माण कराया था।

१०. मुनि श्री पुण्यसागर जी कृत यात्रा विवरण

वि. सं. १६०९ में तपागच्छीय मुनि पुण्यसागर जी ने इस प्रकार लिखा है कि—

> **क्षत्रियकुंड** सुठाम महावीर जिन रामति रमइए।
> ए चउवीसई नाम इ पूरबदिसि जाणी संघ आवई यात्रा घणाए ।।१४३।।

अर्थात्- भगवान महावीर चौवीसवें तीर्थंकर के जन्मस्थान क्षत्रियकुंड में बहुत यात्रासंघ आते हैं।

११. मुनि शीलविजय जी कृत तीर्थमाला

वि. सं. १७११-१२ में मुनिश्री शीलविजय जी ने पूर्वदेश की तीर्थमाला में यात्रा के वर्णन में लिखा है कि—

तिहां थी आविया क्षत्रियकुंड वीर जी वन्दू **माहणकुंड।**
च्यवन-जन्म वीर ना अहिठाण पावापुरी पामया निर्वाण।।

इस में क्षत्रियकुंड के च्यवन-जन्म कल्याणक मंदिरों को वन्दना करने का और पावापुरी में भगवान महावीर के निर्वाण का वर्णन है।

१२. तपागच्छीय मुनिश्री विजयसागर कृत सम्मेतशिखर तीर्थमाला

वि. सं. १६४८ चैत्रशुक्ला त्रयोदशी (भगवान महावीर के जन्म कल्याणक) को आगरा (उत्तर प्रदेश) का यात्रासंघ **क्षत्रियकुंड** पहुंचा-मुनि श्री ने इसका वर्णन इसप्रकार है।

खांतिखरी **खत्रीयकुंड** नो जाणी जन्म कल्याण हो वीरजी।
चैत्रशुक्ल तेरसी दिने यात्रा चढ़ी सुप्रमाण हो वीरजी ।।खां०।।१।।
मास बसंति वन विस्तरइ मलयाचल ना वाय हो वीरजी।
वण-राजी फूली भली परिमल पुहवी न माय हो वीरजी।।२।।
मोअरिय मचकुंद 'मोगरा मरुआ मंजरी-वंत हो वीरजी।
'बउलसिरि वली पाडली भृंग-युगल विलसंत हो वीरजी ।। खां।।३।।
कुसुमकली मनि मोकली विमणा दमणा नी जोड़ी हो वीरजी।
तलहटीइ दोय देहरा पूजी जिन मनि कोड़ी हो वीरजी ।।खां।।४।।
सिद्धारथ घर गिरि-शिरि तिहां वंदु एक बिंब हो वीरजी।
बिहु कोशे **ब्राह्मणकुंड** छइ के वीरह मूल-कुटुंब हो वीरजी ।।खां०
।।५।।
पंजय गिरि थकी उतर्या **गामि** कुमारिय हो वीरजी।
प्रथम परिषह चउतरई वंद्या वीर ना पाय हो वीरजी ।।खां०।।६।।

इस तीर्थमाला में पर्वत की तलहटी में (१) प्रभु महावीर के दो जैनमंदिर (२) जन्मस्थान में एक मंदिर (३) पर्वतशिखर पर राजा सिद्धार्थ का राजमहल था। संघ ने वहां एक जिन बिंब की पूजा की। यहां से दो मील ब्राह्मणकुंड जाकर जहा प्रभु महावीर का मूल (ब्राह्मण ऋषभदत्त और उसकी भार्या देवानंदा जिसके गर्भ में प्रभु प्रथम आए थे) परिवार रहता था। वहां के जिनमंदिर में पूजा करके संघ पर्वत से नीचे उतरा और (४) कुमारग्राम में पहुंचा। वहां चबूतरे पर भगवान महावीर के चरणों की पूजा की यहीं पर प्रभु को ग्वाले ने प्रथम उपसर्ग किया था।

१. यहा कवि ने पद्य २ से ४ में क्षत्रियकुंड के पर्वत पर बसंत ऋतु में पुष्पवाटिका में नाना प्रकार को सुगंधित पुष्पों का वर्णन करते हुए वहां मलयाचल की चलती वायु द्वारा पुष्पों की सुगंध, सुगंधित पर्वतशिखर और सुगंधी से आकर्षित होकर पुष्पों पर भ्रमर वृद की शोभा का वर्णन लिखा है।

२. वहां से संघ भगवान सुविधिनाथ की जन्मभूमि काकंदी में पांच कोस गया वहां पूजा सेवा की। बिहार से काकंदी २६ कोस का उल्लेख है।

३. उपर्युक्त ग्रामों-नगरों के उल्लेख प्राचीन जैनागमों से भौगोलिक दृष्टि से बराबर मेल खाते हैं।

१३. मुनिश्री सौभाग्यविजय जी रचित तीर्थमाला

इस तीर्थमाला में विक्रम संवत १७५० में मुनिश्री सौभाग्यविजय जी ने लिखा है कि–

कोश छबीस बिहार थकी चित्त चेतो रे क्षत्रियकुंड कहवाय।
परवत तलहटीये बसे चित्त चेतो रे मथुरापुर छे जाय।।१३।।
कोश दोय परवत गयां। चित्तं चेतो रे माहणकुंड कहे नाम।
ऋषभदत्त ब्राह्मण तणो चित्त चेतो रे हतो तिणे ठामे वास ।।१४।।
हिवणा तिहां तटनी बहे चित्त चेतो रे गाम-ठाम नहीं कोय
जीरण श्री जिनराज ना चित्त चेतो रे वंदूं देहरा दोय।।१५।।
तिहां थी पर्वत ऊपरि चढ़या चित्त चेतो रे कोस जिमे छे च्यार।
गिरि कडखें एक देहरो चित्त चेतो रे वीर-बिंब सुखकार।।१६।।
तिहां थी क्षत्रियकुंड कहे चित्त चेतो रे कोश दोय भूमि होय।
देवल पूजी सहू वले चित्त चेतो रे पिण तिहां नांव जाय कोय ।।१७।।
गिरि फरसी ने आविया चित्त चेतो रे गाम-कोगर नाम।
प्रथम परिसह वीर ने चित्त चेतो रे बड़ तले छे ते ठाम ।।१८।।
तिहां थी चिहुं कोशे भली चित्त चेतो रे काकंदी कहवाय।
धन्ना अनगार ए नगर नो चित्त चेतो रे आज काकंदी कहवाय ।।१९।।

मुनि श्री सौभाग्यविजय जी ने लिखा है कि बिहार से क्षत्रियकुंड छब्बीस कोस है। वे मथुरापुर तलहटी के मार्ग से दो कोस गये और वहां नदी के दोनों ओर दो प्राचीन जीर्ण जैनमंदिर हैं। वहीं ब्राहमणकुंड और ऋषभदत्त का घर लिखा है। वहां से पर्वत पर वर्तमान जन्मस्थान के मंदिर में गये। फिर वहां से दो कोस पर क्षत्रियकुंड (सिद्धार्थ का महल जन्मस्थान) लिखा है। वहां कोई नहीं जाता। मंदिर के दर्शन करके ही लोग लौट जाते हैं। वहां से भगवान के प्रथम उपसर्ग स्थान कुमारग्राम जिसे आजकल कोराई कहते हैं वहां बड़ के नीचे उस स्थान पर गये जहां भगवान महावीर के चरणबिंब स्थापित हैं यात्रा की। यहां से चार कोस गए जहां का धन्ना अनगार (मुनि) था।

• १. उपर्युक्त सब तीर्थमालाओं के वर्णन से स्पष्ट है कि आठ-नौ सौ वर्षों की यात्राओं के प्रमाणों से वीरप्रभु की जन्मभूमि के सहस्राब्दि से चली आयी परम्परा का सबल संकेत देती है। वहां का ब्राह्मणकुंड-माहणा और कुमारग्राम (कोराईगांव) तथा पुरातत्त्व सामग्री इस बात की साक्षी है। कोल्लाग आज कोनाग कहलाता है। काकंदी आज काकन कहलाती है। आज जिस वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि बतलया जाता है वहा न तो पुरातत्त्व है न परम्परा और न ही जैनतीर्थ की मान्यता भी।

२. वैशाली जन्मभूमि न होने का यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रमाण है कि चेटक और अजातशत्रु के साथ जो महाशिलाकंटक महाभयंकर युद्ध हुआ था उस समय वैशाली का एकदम ध्वंस हो चुका था। यदि क्षत्रियकुंड वैशाली का ही एक मोहल्ला या उपनगर होता तो नन्दीवर्धन (भगवान महावीर के बड़े भाई) का स्वतंत्र राज्य कायम कैसे रह सकता था। नन्दीवर्धन जीवित रहे और उनका राज्य भी कायम रहा तभी तो वे भगवान महावीर के निर्वाण होने पर दाहसंस्कार के समय पावापुरी पहुंच गये थे। (इसका हम पहले विस्तार से वर्णन कर आए हैं)।

३. वस्तुतः भगवान महावीर की जन्मभूमि की पहचान के संबंध में सर्वाधिक प्राचीन मत श्वेतांबरजैनों का है इन के मतानुसार बिहार प्रदेश के मुंगेर जिला अंतर्गत जमुई सबडिविजन में लच्छुआड़ जो सिमरिया से पांच मील पश्चिम में और सिकंदरा से चार मील दक्षिण-पश्चिम के समीप कुंडग्राम क्षत्रियकुंड ही भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है। इसका समर्थन अर्द्धमागधी भाषा के प्राचीन जैनागम, इतिहास, भूगोल, भूतत्वाविधा, पुरातत्व, यात्रियों द्वारा लिखित प्राचीन तीर्थ मालायें, भाषा आदि से बराबर होता है। इन सब दृष्टियों के पूरे विवेचन, विश्लेषण और विस्तार से हम कर आए हैं।

४. हम लिख आये हैं कि यहां आनेवाले जैनयात्रियों की सुविधा केलिये मुर्शिदाबाद (बंगाल) के दूगड़ गोत्रीय बीसा ओसवाल श्वेतांबर जैन रायधनपत सिंह बहादुर ने लच्छुआड़ में ई. सं. १८७४ में एक विशाल धर्मशाला और भगवान महावीर के जैनमंदिर का निर्माण कराया था। जहां आजकल भी भारत के कोने-कोने से आनेवाले तीर्थयात्री यहां आकर ठहरते हैं और पहाड़ियों से घिरे हुए उस जन्मस्थान तथा इस क्षेत्र में विद्यमान अन्य तीर्थों की यात्रा करके अपने आप को धन्य मानते हैं और जीवन सफल करते हैं।

५. भगवान महावीर के दीक्षा लेने के बाद इस क्षेत्र में उन के विहार में आये नगरों, गांवों, सन्निवेशों के नामों में जो कुछ परिवर्तन पाया जाता है, ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि ढाई हजार वर्षों में कई उतार-चढ़ाव आये। इस केलिये सिकंदरा (मुंगेर) निवासी डा भगवानदास केसरी लिखते हैं कि इन नगरों, ग्रामों में क्यों परिवर्तन आये? इस का एक कारण यह भी है कि ई. सं. १५४० में इसी स्थान पर एवं इस के इलाके में शेरशाह और हुमायूं की सेना में घमासान युद्ध हुआ। हुमायूं अपनी विजय के बाद उस ने जहां जहां वैभवपूर्ण नगर पाया उसकी संस्कृति एवं कला का नाश किया तथा इस्लामी संस्कृति और कला में ढाल दिया। माहणकुंडग्गाम की एक मस्जिद में सन हिजरी ५७५ के फारसी में लिखे तीन शिलालेख मिले हैं। उस समय भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित नहीं हुआ था। यह काल हर्षवर्धन का था। उस समय भारत में जो भी मुसलमान आए वे लुटेरों की हैसियत से आये। संयोग ऐसा रहा कि एक ही रेंज में जैनतीर्थ रहने के कारण मुहम्मदगोरी ने उन्हें खूब लूटा और नाश किया। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद का युग दृढ़ता से विघटनशील प्रवृत्तियों का था।[7]

शोध-कर्त्ता का दायित्व

शोधकर्त्ता की दृष्टि पूर्वाग्रहक, दाग्रह, दृष्टिराग और पक्षपात-रहित उदार होनी चाहिए। इसी बात को लेकर वह सत्य को पा सकता है। इसी बात को लक्ष्य में रखकर भगवान महावीर के जन्मस्थान का विवादास्पद विषय पर हमने विचारणा की है। इस विषय को साहित्य, इतिहास, भूतत्त्व विद्या, भूगोल आदि आठ दृष्टिकोणों की कसौटी पर परख कर लिखा है। **भगवान महावीर का जन्मस्थान बिहार (मगध जनपद) में जमुई अनुमंडल के लच्छुआड़ गांव के निकट क्षत्रियकुंड ही भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है।** वैशाली और कुंडलपुर इस कसौटी पर खरे नहीं उतरे। अतः यह दोनों अस्वकृत हैं।

जन्मस्थान जाने के मार्ग

१. जन्मस्थान जाने का मुख्य मार्ग कुंडघाट से जाता है। जहां उस घाटी में दो मंदिर है। यहां से पर्वत की कठिन चढ़ाई शुरू होती है पांच छोटी, दो बड़ी पहाड़ियों को पार करके जन्मस्थान का मन्दिर मिलता है। पहाड़ियां बनों से आच्छादित हैं। जन्मस्थान का मंदिर इस पर्वतमाला की आखिरी ढलान की आधित्यका में है।

२. स्थलमार्ग— जांबियागांव (जमुई) से खेरा होते हुए चौदह मील पहाड़ी के किनारे से क्षत्रियकुंड जाने का मार्ग है। क्षत्रियकुंड की रक्षा केलिए जमुई से पांच किलोमीटर दूर पूर्व-खेरा के पास किले के दो भग्नवशेष हैं। जो २०१ से कम नहीं है। ये दोनों अवशेष इनपेगढ़ नवलखागढ़ के नाम से जाने जाते हैं।

३. तीसरा मार्ग पकरीबराना कौआकोल से होते हुए क्षत्रियकुंड आया जाता है क्षत्रियकुंड की रक्षा केलिए कोआकोल के एक प्राचीन किले का भग्नावशेष है इस सब रास्ते में पुरातत्व के काफी अवशेष हैं।[7]

४. पूर्व-रेलवे में पटना हावड़ा मुख्य-लाइन पर क्यूल जंक्शन और झाझा रेलवे स्टेशन के बीच जमुई रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन से जमुई शहर (अनुमंडलीय मुख्यालय) लगभग चार पांच मील दक्षिण में है। स्टेशन से शहर तक जाने के लिए बस, टैम्पो, टैक्सी, तांगा आदि उपलब्ध हैं। पैदल आने के लिए पक्की सड़क है।

५. जमुई स्टेशन से लच्छुआड़ की दूरी लगभग अट्ठारह मील है। जमुई-शहर से सिकन्दरा (अंचल-मुख्यालय) जानेवाली सड़क से तेरह मील चलकर लच्छुआड़ पहुंचा जा सकता है।

६. जमुई-शहर से लगभग ८ मील की दूरी पर महादेव सिमरियाग्राम पहुंचते हैं। वहां प्रसिद्ध शिवमंदिर, बाजार तथा धर्मशाला भी हैं।

७. महादेव सिमरिया से सीधे मुख्य सड़क पर आधा मील चलकर धघारे नामक ग्राम के निकट पहुंचते ही बायीं ओर सड़क के किनारे यक्षस्थान (जखराजस्थान) के सामने से एक रास्ता पगम्बर मुबारकपुर नामक ग्राम होते हुए लच्छुआड़ पहुंचता है। यह रास्ता बस, जीप, कार के योग्य है। घघारे के मोड़ से लच्छुआड़ की दूरी लगभग पांच मील है।

८. लच्छुआड़ जैनधर्मशाला से दक्षिण पर्वतश्रेणी तक पहुंच कर जन्मस्थान के दर्शनार्थ पहाड़ों के पार तक की चढ़ाई पैदल की जा सकती है। वहां डोली की सवारी भी मिलती है। अथवा जीप से भी पहाड़ों के पार तक की

यात्रा की जा सकती है। जीप जाने योग्य यह सड़क वन-विभाग द्वारा निर्मित है।

९. पटना- हावड़ा मुख्य रेलवे लाइन पर क्यूल से पहले लखीसराय रेलवे स्टेशन है यहां से सीधे दक्षिण बस, टैक्सी या किसी भी साधन से लगभग १७ मील चल कर सिकन्दरा नामक बाजार पहुंचा जा सकता है। सिकन्दरा से लगभग तीन मील दक्षिण चलकर लच्छुआड़ धर्मशाला पहुंच सकते हैं लच्छुआड से दक्षिण पर्वतश्रेणी तक आकर पैदल या जीप से पर्वतों के पार जलस्थान के पुण्य दर्शन किये जा सकते हैं।[72]

३

परिशिष्ट—१

मगध और जैन संस्कृति

वर्तमान भारतीय-संघ के बिहार राज्य के पटना कमिश्नरी (डिविजनल) विशेषकर इसके पटना, गया, हजारीबाग और शाहबाद जिलों के बहुभाग में व्याप्त् क्षेत्र- इतिहास में मगध के नाम से प्रसिद्ध था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में मगध जनपद का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जैनसाहित्य में वर्णित २५।। आर्यदेशों, महाभारत में उल्लिखित १६ जनपदों, भगवती सूत्र में १६ जनपदों और बुद्ध कालीन १६ जनपदों में मगध परिगणित है। जैन स्थानांगसूत्र एवं निशीथसूत्र में उल्लिखित भारत की दस राजधानियों और बौद्ध दिग्धनिकाय के महासुदर्शन सुत्त में वर्णित छह महानगरियों में मगध की प्रसिद्ध राजधानी राजगृही सम्मिलित् है।

सीमा और विस्तार— सामान्यतया मगध जनपद की उत्तरी सीमा गगावदी बनाती थी। जिसके पार (उत्तरबिहार) में विदेह जनपद अवस्थित था। मिथिला और वैशाली उसकी प्रसिद्ध नगरियां थीं। मगध के पूर्व में अंगदेश था। इसकी राजधानी चंपा थी। चंपानदी इन दोनों जनपदों को अलग करती थी। पड़ोसी अंगदेश के साथ मगध के कुछ ऐसे घनिष्ठ संबंध थे कि बहुधा अंग-मगध का एक युगल के रूप में भी उल्लेख हुआ है। मगध के दक्षिण मणि और मलय नाम के दो छोटे जनपद थे। पश्चिम में काशी जनपद, उत्तर-पश्चिम में कोशल (अपरनाम कुणालदेश-राजधानी श्रावस्ती) और दक्षिण-पश्चिम में वत्स (राजधानी कौशांबी) अवस्थित थे। वर्तमान मंगेरमडल का अधिकांश भाग भी मगध का उपांतभाग था। प्राचीन काल में ही यह क्षेत्र मगध माना जाता था। चंपेयजातक के अनुसार चंपानदी अंग और मगध राज्य विभावजक-प्राकृतिक सीमा थी।[1] पालकालीन अभिलेखों से यह प्रमाणित होता है कि पुराने मुंगेर जिले के अंतर्गत था[2] वर्तमान मुंगेर और दक्षिण

वेगूसराय का प्रायः सारा क्षेत्र श्रीनगर (पटना का एक प्राचीन नाम) भुक्ति के अंतर्गत था। मुंगेरमंडल के जमुईअनुमंडल का प्रायः सारा क्षेत्र प्राचीन जैनस्थानों, स्मारकों और अवशेषों से भरा पड़ा है। सिकन्दरा अंचल के जनसंघडीह (जैनसंघडीह), जैनडीह, आचारजडीह कुमारकुंड, माहना (माहण-ब्राह्मणकुंडपुर), परसंडा, रिसडीह (ऋषभदत्त डीह) महादेव सिमरिया अनेक ग्राम प्राचीन जैनक्षेत्र हैं जैनडीह, जैनसंघडीह, आचार्यडीह आदि ग्रामों के नाम से ही स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में कभी जैनों के संघ उनके आचार्य और धर्मस्थान विद्यमान थे। इसी अंचल में भगवान महावीर की जन्मभूमि कुंडग्राम या क्षत्रियकुंडनगर भी है। जहां भगवान के च्यवन (गर्भावतरण), जन्म, दीक्षाकल्याणक हुए हैं। उसके आसपास के कई ग्रामों ने प्राचीन जैनमंदिर थे। जिनका उल्लेख जैनयात्रीसंघों ने स्वलिखित तीर्थमालाओं में किया है। लच्छुआड़ के पूर्व महादेव-सिमरिया में पांच जैनमंदिर थे। जिनकी प्रतिमाएं लोगों ने कुएं में डाल दी थीं। परसंडा (सिकन्दरा अंचल) में एक जिनप्रतिमा थी जिसे अन्य नाम से वहां की जनता पूजती है[3]। सिकंदरा से पांच मील की दूरी पर भगवान महावीर की एक विशाल मूर्ति है। जिसकी हथेली पर चक्र का चिन्ह है। इसके अतिरिक्त कुमारग्राम, बोब, मसोज, आदि अन्य ग्रामों में भी जिनप्रतिमाएं पाये जाने की सूचनाएं मिलती रहती हैं। जमुईअनुमंडल में इन्दपे, गृद्धेश्वर और महादेव-सिमरिया में छोटे आकार की कई जैनप्रतिमाएं हैं। इन्दपेगढ़ के ध्वंसावशेष के समीप एक शिलापट्ट भी है जिस पर चौबीस तीर्थंकरों की कई आकार प्रकार की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं[4]

महादेव-सिमरिया में जिन पांच जैनमंदिरों का जैनयात्रियों की तीर्थमालाओं में उल्लेख पाया जाता है वे संभवतः वर्तमान में शिवमंदिर और उसके संलग्न मंदिर हैं और उस समूह के प्रमुख मंदिरके नाम पर उस ग्राम का नाम महादेव-सिमरिया प्रसिद्ध हो गया होगा। यह ग्राम जमुई से सात मील पश्चिम में जमुई सिकंदरा जनपथ के समीप है। यहां छह देवालयों का एक समूह है और यह स्थान तीन ओर से विशाल पुष्करणियों से घिरा है। इस समूह के मुख्य मंदिर में शिवलिंग स्थापित है और शेष मंदिरों में लघु आकार की जैन एवं अन्य प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। अनुश्रुति से स्पष्ट है कि सिमरिया के जैनतीर्थ पर शैवतीर्थ के आरोपण का कार्य गिद्धौर के राजा पूर्णमल ने किया[5] और इसका औचित्य सिद्ध करने के लिये स्वप्न में शिव का आदेश प्राप्त करने की कथा घड़ी गई। इस क्षेत्र में कुछ अन्य जैनस्थानों को विनष्ट करने में इस राजवंश का ही योगदान रहा हो तो आश्चर्य नहीं[6]। ऐसा प्रतीत होता है कि मगध

में जैनधर्म का पूर्णतः उच्छिन्न हो जाने से अनेक प्राचीन जैनतीर्थ भी विस्मृत हो गये थे और मध्यकाल में उनका उद्धार किया गया है[7]।

मगध की राजधानी राजगृही थी। यहां पांच पहाड़ियां हैं। उनके नाम १. विपुलगिरि, २. रत्नगिरि, ३. उदयगिरि, ४. स्वर्णगिरि एवं ५. वैभारगिरि हैं। ई. पू. पांचवीं शताब्दी में राजगृही से नवीन-नगर पाटलीपुत्र (पटना) में राजधानी स्थानांतरित हो गयी थी। मगध एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण जनपद होते हुए भी प्राचीन ब्राह्मणीय साहित्य एवं अनुश्रुतियों में मगध और मगधवासियों की निन्दा, भर्त्सना, तिरस्कार एवं उपेक्षा ही की गयी है। ऋग्वेद में मगध का उल्लेख नहीं है। किन्तु एक मंत्र (२/५३/१४) में कहा गया है।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहेन तपन्ति घर्मम्
आं नो भर प्रमगन्धस्य वेदो नेचा शाखं मघवन रन्धयाः नः।।

अर्थात्– वे क्या करते हैं कीकटो के देश में, वहां गाये पर्याप्त दूध नहीं देती और न उनका दूध (सोमयाग केलिए) सोमरस के साथ मिलता है। हे मघवन तू प्रमगन्ध के सोमलता वाले देश को भलीभांति जानता है।

यहां प्रमगन्ध से नेचा शाखा (नीच जाति-अनार्य: स्थान पर्व) की ओर संकेत है। यह याद रहे कि इस समय वैदिक आर्यों की आवास-भूमि भी मध्यदेश था। (यहां मगध शब्द का उल्लेख नहीं है। पर कीकटो का देश ही मगध है। मगध के प्रति हीनभावना। मगध मध्यप्रदेश के पर्व में है।

२. अथर्ववेद मे (५।२२।१४) ज्वरनाशक-देव से प्रार्थना की गयी है कि "गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽअंगेभ्यो मगधेभ्य प्रेष्यन जनमिवशेवो तक्मन परिदद्मसि।।"

अर्थात्- हे ज्वरनाशक-देव ! तम तक्मन (ज्वर) को गन्धारियो मजवन्तवासियों, अगवासियों तथा मगधवासियों के पास उसी प्रकार सरलता से भेजते हो जिसप्रकार कि व्यक्ति या कोष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजते हो।

३ फिर अथर्ववेद मे ही (१५।२।४५) में कहा है कि–

.... प्रियधाम भवति तस्य प्राच्य दिशि ।।४।। श्रद्धापंश्चली मित्रोमागधो विज्ञान वासो· हस्त्णीष रात्रि केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मली कर्माणि।।५।।

अर्थात्- (व्रात्योंका) प्रियधाम प्राची दिशा, उसके पंश्चली (रखैल) के श्रद्धा और मित्रमागध (मगधवासी) बतलाये गये हैं।

४. शतपथ ब्राह्मण (१।४।१०) में मागधों को ब्राह्मण या वेदधर्म के बाहर बताया गया है।

५. कात्यायन (२२।४।२२) और लास्यायन (८।६।२८) के श्रौत सूत्रों में कहा गया है कि व्रात्यधन या तो पतित ब्राह्मण को अथवा मगध के ब्राह्मणों को दिया जाय।

६. मनुस्मृति आदि अनेक ब्राह्मणीय गंथों में स्पष्ट लिखा है कि गांधार (भारत का उत्तर-पश्चिमी) सीमाप्रान्त, मध्यप्रदेश (मंजूवन-अंग और मगध) को वैदिकआर्य पाप भूमि कहते हैं और इन जनपदों में आने-जाने का निषेध करते थे। यहां तक कह दिया गया था कि काशी में कोई कौवआ भी मरे तो सीधा वैकुंठ जाय और यदि (मगध) में मनुष्य भी मरे तो गधे की योनी में जन्म लेता है। मगधवासियों को अपज्वयन, अकर्म, अन्यव्रत, देवपियु आदि अपशब्दों से संबोधित किया जाता था। वहां के क्षत्रियों को घृणापूर्वक व्रात्य क्षत्रिय, दास, क्षत्रियबंधु, वृषल आदि संज्ञायें दी जाती थीं। मध्यप्रदेशीय वैदिकआर्य उन्हें बहुत ही नीच समझते थे। इतना ही नहीं, मगध के ब्राह्मणों को भी पश्चिमी-ब्राह्मणों की अपेक्षा इन्हें अतिनिम्न कोटि का समझा जाता था। उनके विषय में धारणा थी कि ये लोग वेद और वेदानुमोदित याग-यज्ञ एवं कर्मकांडो को सहज ही छोड़ देते हैं।

श्रमण संस्कृति का केन्द्र मगध

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत के प्राचीन सप्तखंडों में से प्राच्यखंड से सूचित भूभाग जिस में मगध और उसके पडोसी विदेह, अंग, बंग, कलिंग तथा गांधार आदि जनपद जो उस समय विद्यमान थे, वे वैदिकआर्यो की सभ्यता, संस्कृति और धर्म से बहुत पीछे के समय तक अछूता रहते आये थे। न केवल यहां के निवासी वैदिकआर्य ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की संतति नहीं थे परन्तु वे **वातरशना, मुनि, अर्हत्, व्रात्य, निर्ग्रंथ, श्रमण, तीर्थंकरों की परंपरा के उपासक तथा अनुयायी** थे। जो इतिहासातीत ही नही अनुमानातीत-काल से यहां रहते आए हैं। उनकी सभ्यता भी नाग, यक्ष, वज्जि, लिच्छवी, ज्ञातृक, झल्ल, मल्ल, मोरिय, कोलिय, भंगी आदि अनार्य-अवैदिक तत्वों द्वारा संपोषित एवं पल्लवित हुई थी। जो ज्ञान, विज्ञान कला, कौशल, शिल्पादि की दृष्टि से वैदिक आर्य सभ्यता की अपेक्षा श्रेष्ठतम एवं नागरिक सभ्यता महाउत्कृष्ट थी। चिरकाल तक नाग जाति का प्राधान्य रहने के कारण यह नाग सभ्यता भी

कहलायी। प्राचीनयुग की भाषामागधी या अर्द्धमागधी प्राकृत थी। जो यहां की लोक भाषा थी जैन श्रमण तीर्थंकर का उपदेश इसी भाषा में होता है।

श्रमण संस्कृति की विशेषताएं

१. इस धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा के प्रस्तोता जितेन्द्रिय होने के कारण जिन, जिनेंद्र, या जिनेश्वर २. समस्त पूज्य गुणों के युक्त होने से **अर्हत्** ३. निरन्तर योगपूर्वक साधना करते हुए कैवल्य प्राप्त करने के कारण **वातरशना**, ४. व्रत पूर्वक सदाचरण के मार्ग पर आरूढ़ होने के कारण **व्रात्य, ५. समस्त अंतरंग और बहिरंग से मुक्त होने से निर्ग्रंथ, ६. सम्पूर्ण समत्व के साधक और उद्घोषक होने के कारण समन ७. स्वेच्छा एवं श्रमपूर्वक तप-त्याग-संयम का मार्ग अपनाने के कारण श्रमण** ८. संसार को दु:खरूप जान और मानकर उससे पार होने केलिये धर्मरूपी तीर्थ का उद्घाटन करने के कारण **तीर्थंकर**, ९. रागद्वेष रूपी आंतरिक शत्रुओं पर विजय पाने के कारण **अरिहंत** १०. सब भवबीजाकुर क्षीण करने के कारण **अरुहंत** ११. चार घातियां कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करने के कारण **वीतराग सर्वज्ञ अर्हीत** कहलाते है। ये सब गुण जैनधर्मप्रवर्तक तीर्थंकरों के होते है।

१. यह आर्हतों की परम्परा अहिंसा पर आधारित- कदाचरण निवृत्ति प्रधान तथा सदाचार प्रवृत्तिप्रधान है। २. मनुष्य के बीच से किसी प्रकार का ऊंच-नीच आदि भेदभाव इसे अभिष्ठ नहीं है, यहां तक कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-वर्ण, स्त्री-पुरुष और नपुंसक तीनों में से कोई भी मानव-शरीरधारी परमसाधाना से मोक्ष निर्वाण तक प्राप्त कर सकता है। ३. सभी प्राणियों का हित सम्पादन एवं सर्वोदयमार्ग का प्रयोजक है। ४. इसकी दृष्टि उदार, सहिष्णु, और अनेकान्तिक है, इससे कदाग्रह दूर रहता है ५. आज्ञा प्रधानता की अपेक्षा परीक्षा प्रधानता पर बल देता है। ६. स्वपुरुषार्थ द्वारा परमप्रातव्य की प्राप्ति इसका लक्ष्य है। ७. यह वेदों, वैदिकहिंसा और वैदिकक्रियाकांडों का विरोधी है। साधना और तपस्या के ये प्रयोग मगध में भी हुआ करते थे इन्हीं एतिहासिक कारणों से जैनों ने मगध को पुण्यभूमि माना और वैदिक ब्राह्मणों केलिए पापभूमि हो गया।

महाभारतोत्तर काल के श्रमणधर्म पुनरुत्थान आन्दोलनका प्रधान केन्द्र मगध रहा और तदनन्तर लगभग भगवान महावीर के बाद दो हजार साल तक इस प्रदेश को जैनधर्म का मुख्यगढ़ रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा। इसलिए

कतिपय विद्वानों ने उक्त श्रमण या जैनसंस्कृति और इसके धर्म को मगधसंस्कृति और मगधधर्म भी नाम दिये हैं।

श्रमण परम्परा एवं मगध

जैनधर्म के अतिप्राचीन अर्द्धमागधी भाषा के आचारांग आदि आगमों में मगह (मगध) का उल्लेख है। प्रज्ञापना सूत्र (१ पद) सूत्रकृतांग और स्थानांगसूत्र में मगह को राजगृही का आर्य जनपद कहा है। आचारांगसूत्र में मगह और राजगृही का उल्लेख है। एक समय में तीर्थंकर महावीर साकेत में धर्मप्रचार कर रहे थे तो उन्होंने कहा कि जैनों का चरित्र और ज्ञान मगध और विदेह में अक्षुण्ण रह सकता है। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रमण संस्कृति में मगध को पवित्र माना है उसे आर्यश्रेष्ठ लोगों का जनपद कहा गया है। मगध में जैन ज्ञान और आचार की रक्षा मानी है। उस समय मगध खूब उत्कर्ष में था और आर्य राज्यों और उपनिवेशों की स्थापनाएं भी हो चुकी थीं। सुशासन और सुव्यवस्था से चोर-डाकुओं से सुरक्षित और सामाजिक आचार की सुविधा थी।

हम लिख आए हैं कि अथर्ववेद में व्रात्यों का प्रियधाम प्राचीदिशा को बताया है। वहां मगध का संकेत है। जैन श्रमण संस्कृति में व्रत धारक को व्रात्य कहा है। जैन निर्ग्रंथ व्रात्य थे। तपस्या से आत्मशोधन में विश्वास रखते थे। इसलिए उन्हें व्रात्य कहा गया है। ये व्रात्य मगध के अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य भागों में भी रहते थे तथा भारतवर्ष के बाहर के देशों में भी रहते थे।

वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम प्रस्तोत्ता आदिदेव ऋषभ थे। जो स्वयंभू, महादेव, ब्रह्मा और प्रजापति कहलाये। ऋग्वेद के कई मत्रों में उनके प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख हैं। सिंधुघाटी की सभ्यता के अवशेषों में उस युग में उनकी पूजा के प्रचलन के संकेत पाए जाते हैं। उनका च्यवन (गर्भावतरण), जन्म, दीक्षा अयोध्या में, केवलज्ञान प्रयाग में, मोक्ष (निर्वाण), कैलाश (अष्टापद) पर्वत पर हुआ। परन्तु उनका विहार प्राच्यखंड में भी हुआ था। वे चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम थे। बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमिका निर्वाण उज्जयंत (गिरनार) पर्वत पर सौराष्ट्र में हुआ था। शेष बाइस तीर्थंकरों का निर्वाण बिहार प्रांत में ही हुआ। जिसमें से १२वें तीर्थंकर वासुपूज्य का निर्वाण चंपा (अंग जनपद) में और अन्तिम तीर्थंकर महावीर का निर्वाण पावापुरी (मगध जनपद) में शेष बीस का सम्मेतशिखर पर्वत (पार्श्वनाथ पर्वत) पर निर्वाण (मगध जनपद में) हुआ।

नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ (पुष्पदंत) की च्यवन, जन्म, दीक्षा, भूमि काकंदी थी। दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ की च्यवन, जन्म, दीक्षा भूमि भद्दिलपुर (जिला हज़ारीबाग), बारहवें तीर्थंकर बासुपुज्य की च्यवन, जन्म, दीक्षा, भूमि चंपा थी। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी की जन्म दीक्षा, च्यवन भूमि राजगृही थी। अंतिम तीर्थंकर महावीर की च्यवन, जन्म, दीक्षा, भूमि कुंडपुर (क्षत्रियकुंड) (मुंगेर जिला अन्तर्गत) थी।

तीर्थंकर महावीर की केवलज्ञान भूमि ऋजुकूलानदी के तटवर्ती जृंभिकाग्राम के बाहर थी इनकी प्रथम देशना (धर्मोपदेश) चतुर्विधसंघ, साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका तीर्थ की स्थापना, इंद्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणों को दीक्षा देकर गणधरों की स्थापना, ये सब कार्य पावापुरी में हुए। ग्यारह गणधर राजगृही में वैभारगिरि पर निर्वाण पाए थे। इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति ये तीनों गणधर सगे भाई थे इनका जन्म नालन्दा के निकट गुब्बरगांव (वर्तमान बड़गांव) में हुआ था। गणधर इन्द्रभूति (गौतमस्वामी) को गुणाया (जिला नालन्दा) में केवलज्ञान हुआ था। ये सब घटनाएं भी मगध जनपद में हुई थी।

मगध नरेश बिंबसार श्रेणिक भगवान महावीर का परमभक्त क्षायिक सम्यतत्वधारी अगली चौबीसी में पद्मनाभ नाम का होने वाला प्रथम तीर्थंकर, भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर गणधर सुधर्मास्वामी इनके शिष्य जम्बूस्वामी (दोनों केवली) की जन्मभूमि भी मगध ही थी। भगवान महावीर के आगमों की प्रथम सम्मिलित वाचना केलिए श्रमण संगति स्थूलिभद्रकी अध्यक्षता में मगध की राजधानी पटना (पाटलिपुत्र) में हई, चौबीसों तीर्थंकर तथा उनके श्रमण-श्रमणियां मगध में विचरे। भगवान महावीर के उपरांत काल में भी श्रमण-श्रमणियों का इस प्रदेश में सतत विहार (आना-जाना) होते रहने से यह प्रदेश विहार नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रभु महावीर अपनी दीक्षा के बयालीस वर्षों में से चौदह चौमासे राजगृही में किये। दीक्षाकाल के बयालीस वर्षों में से अधिक समय मगध में ही व्यतीत किये।

जैनधर्म एवं मगध

मगध को शिशुनाग-वंशी बिंबसार श्रेणिक, अतातशत्रु (कोणिक) सिद्धार्थ नन्दीवर्धन, महानन्दी आदि राजवंशी और मौर्यवंशी सभी सम्राट व्रात्यक्षत्रिय थे। ये सब भगवान महावीर के अनुयायी तथा प्रवलपोषक थे। उनके अभयकुमार आदि शाकटायन, राक्षस और चाणिक्य महामंत्री भी

मगधनिवासी थे और जैनधर्म के अनुयायी थे। पूर्व मध्यकाल में जैनों को मगध छोड़ना पड़ा।

किन्तु जैनों ने अपनी पुण्यभूमि मगध को कभी विस्मृत नहीं किया। इसका चप्पा-चप्पा जैनों के सांस्कृतिक इतिहास से रंगा है। राजगृही पंचपहाड़ी, पावापुरी, बड़गांव, क्षत्रियकुंड, ब्राह्मणकुंड (कुंडपुर), काकन्दी, गया, गोरथगिरि (चराचर पर्वत), जंभीयग्राम, भद्दीय, गुणावां, नवादा, विहारशरीफ सम्मेतशिखर, पाटलिपुत्र (पटना) महसारनगर, पचारपहाड़, श्रावकपर्वत आदि अनेकों स्थानों में प्राचीन एवं मध्यकालीन जैन पुरातत्व अवशेष, जिनमंदिर, जिनतीर्थ, जिनप्रतिमाएं, पवित्रस्मारक आदि प्राप्त हैं। इनमें अधिकांश स्थल तीर्थक्षेत्रों के रूप में पूज्यनीय हैं। भारत के कोने -कोने से प्रतिवर्ष लाखों जैनयात्री चिरकाल से मगध के इन तीर्थस्थानों की यात्रा करने आते रहते हैं।

संक्षेप में मगधदेश का जैनधर्म और जैनसंस्कृति के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से ही अटूट घनिष्ठ संबंध है। एक को प्रथक करके दूसरे के विषय में सोचा समझा ही नहीं जा सकता।

मगध का अस्तित्व और उसका इतिहास, उसकी मगधसंस्कृति, श्रमणपरंपरा, अर्द्धमागधी प्राकृतआगम, साहित्यपंचागी, जैनधर्म के स्थापत्य और इतिहास के अभिन्न अंग हैं। इन दोनों के अभ्युदय और उत्थान एवं पतन ही अन्योन्याश्रित रहे हैं। मगध ने यदि जैनधर्म को पोषण दिया है और उसका वर्तमान इतिहास दिया है तो जैनधर्म ने भी मगध को सर्वतोमुखी उत्कर्ष साधन दिया है और उसे विश्वविश्रुत बना दिया है।[8]

परिशिष्ट-२
वैशाली गणतंत्र

आज से लगभग २६ सौ वर्ष पहले वैशालीनगर सभी प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न था जो नौ मील की परिधि में बसा हुआ था। सुन्दर चैत्यों, तालों तथा बाग-बगीचों से परिपूर्ण था। नगर की बहुत ही सुव्यवस्थित ढंग से तीन भागों में रचना की गई थी। पहले भाग में स्वर्णकलशों से युक्त सात हजार घर थे। दूसरे भाग में चांदी के कलशों से चौदह हजार घर थे। तीसरे भाग में तांबे के कलशों से युक्त २१ हजार घर थे। इन तीनों भागों में क्रमशः उत्तम, मध्यम और निम्न वर्ग के लोग अपनी स्थिति के अनुसार रहते थे उस समय वैशाली की जनसंख्या १ लाख ६४ हजार थी। (प्रति घर में लगभग चार जनसंख्या की

उ त थी।) इस विभाजन के आधार पर यहां का समाज भी तीन वर्गों में
वि भक्त था। इस नगर की सुन्दरता का बखान बुद्धदेव अपने शिष्यों से करते हा
ब र-बार यहां आने की बात कहते थे। यह वैशाली विदेह गणतंत्र की राजधानी
थी।

विदेह भारत के तत्कालीन गणतंत्र राज्यों में से एक प्रधान शक्तिशाली राज्य था। इस गणतंत्र के महाराजा चेटक लिच्छवी जाति के क्षत्रिय थे।

तीर्थंकर भगवान महावीर के वंश के साथ चेटक का संबंध

तीर्थंकर महावीर की माता रानी त्रिशला चेटक की बहन थीं। सबसे प्राचीन जैनागम आवश्यक चूर्णि में इसका उल्लेख मिलता है। त्रिशला (त्रिशला) के बड़े पुत्र (महावीर के बड़े भाई) नन्दीवर्धन की पत्नी ज्येष्ठा चेटक की पुत्री थी।१ जैनागमों में सबसे प्राचीन एवं प्रथम आचारांग सूत्र में भगवान महावीर की कुछ जीवनी मिलती है। उसमें एक स्थान पर महावीर की माता का एक नाम "विदेहदिन्ना" भी आया है। अर्थात् महावीर की माता के तीन नाम— **त्रिशला, विदेह-दिन्ना और प्रियकारिणी थे।**२ भगवान का भी एक नाम **विदेहदिन्न** है। अर्थात्- विदेहदिन्ना त्रिशला का पुत्र-विदेह दिन्न३— वर्धमान महावीर थे। इस प्रकार त्रिशला विदेह की कन्या महाराजा चेटक की बहन थी। कुडपुर के राजा सिद्धार्थ चेटक के बहनोई थे। नन्दीवर्धन एवं वर्धमान महावीर त्रिशला और सिद्धार्थ के पुत्र थे और महाराजा चेटक के भानेज थे। नन्दीवर्धन को चेटक की बेटी ज्येष्ठा४ ब्याही थी। अतः नन्दीवर्धन महाराजा चेटक के जवाई (दामाद) भी थे।

बौद्ध साहित्य में वैशाली और उसपर आधिपत्य रखने वाली लिच्छवी जाति का बहुत कुछ वर्णन तो मिलता है किन्तु इस जनपद और समाज पर सर्वोपरि अधिकार रखने वाले किसी खास व्यक्ति का नाम नहीं मिलता। पर यह वर्णन तो मिलता है कि यह नगरी वज्जि (वृजि) संघ गणतंत्र की राजधानी वैशाली थी। जैनग्रंथों के अनुसार वैशाली गणतंत्र के राजाओं द्वारा निर्वाचित महाराजा चेटक था। वह भगवान महावीर का मामा था। भगवान महावीर से पहले चेटक तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा का अनुयायी था। पहले बुद्ध ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परंपरा में दीक्षा ली थी और कठोर तपस्या की थी। पर यह इससे बर्दाश्त नहीं हुई। इसलिए इस परंपरा का त्याग कर

इसने अपना मध्यममार्ग का पंथ स्थापित किया जो आज विश्व में बुद्धधर्म के नाम से विख्यात है।

महाराजा चेटक बाद में भगवान महावीर का अनुयायी होकर दृढ़ जैनधर्मी परमार्हत श्रावक बना।

भारत में उस समय अनेक गणतंत्र राज्य थे। परन्तु वैशाली राज्य का इतिहास तथा कार्यप्रणाली का विस्तृत वर्णन ग्रंथों से मिलता है। संभवतः इसी कारण से श्री जैसवाल ने इस गणतंत्र को विवरणयुक्त गणराज्य Recorded Republic) शब्द से संबोधित किया है। क्योंकि अधिकांश गणराज्यों का अनुमान कुछ सिक्कों या मुद्राओं से अथवा पाणनीय-व्याकरण के कुछ सूत्रों से या कुछ ग्रंथों में उपलब्ध संकेतों से किया गया है। इसी कारण विद्वान लेखक ने इसे प्राचीनतम गणतंत्र घोषित किया है। जिसके लिखित साक्ष्य हमें प्राप्त हैं और जिसकी कार्यप्रणाली की झांकी हमें बुद्ध के अनेक संवादों से मिलती है।

वज्जि (वृजि) एक महासंघ का नाम है। जिसके अंग थे– १. ज्ञातृक २. विदेह ३. लिच्छिवी ४. वृजि ५. उग्र ६. भोग ७. कौरव एवं ८. इक्ष्वाकु इनमें से मुख्य थे वृजि और लिच्छिवी। बुद्ध दर्शन और भारतीय-भूगोल के अधिकारी विद्वान श्री भरतसिंह उपाध्याय ने अपने ग्रंथ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृष्ठ ३८३-८४ में अपना मत प्रकट किया है कि वस्तुतः लिच्छिवियों और वज्जियों में भेद करना कठिन है। क्योंकि वज्जि न केवल एक जाति के थे परन्तु लिच्छिवी आदि गणतंत्रों को मिलाकर उनका सामान्य अभिधान वज्जि था। वज्जि आर्यों के छः कुल थे। यथा– १. उग्र २. भोग ३. राजिन्य ४. इश्वाकु ५. ज्ञातृ और ६. कौरव[6] अर्थात् वज्जि महासंघ के आठ अंगों एवं आर्यों के छह कुलों पर विचार करने से भी ज्ञात होता है कि १. उग्र २. भोग ३. ज्ञातृक ४. कौरव तथा ५. ईक्ष्वाकु नाम दोनों में हैं परन्तु विदेह, लिच्छिवी और वज्जि इन तीनों अंगों का राजन्य में समुचय रूप से स्वीकार किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि लिच्छिवी जाति के राजा चेटक और ज्ञातृ जाति के राजा सिद्धार्थ (महावीर के पिता) भिन्न-भिन्न क्षत्रिय जातियों के थे।

परन्तु अलग जाति के रूप में वज्जियों का उल्लेख पाणिनी ने किया है और कोटिल्य ने भी ज्ञातृकों को लिच्छिवियों से अलग माना है। युवांगचांग (चीनी बौद्धयात्री) ने भी वज्जि देश और वैशाली में भेद किया है। उसने लिच्छिवियों को व्रात्य लिखा है। हम लिख आए हैं कि व्रात्य जैन धर्मानुयायियों को कहा जाता था।

कम्बोज, सुराष्ट्र आदि क्षत्रियों की श्रेणियां कृषि व्यापार तथा शस्त्रों द्वारा जीवनयापन करते थे और लिच्छवी, वृजि, मल्लक, भद्रक, कुरु, पांचाल एवं ज्ञातृ आदि श्रेणियां राजा के समान जीवन बिताती थीं।

रामायण और विष्णुपुराण के अनुसार वैशालीनगरी की स्थापना इक्ष्वाकु-पुत्र विशाल द्वारा की गई थी। इसलिए यह विशाला नाम से प्रसिद्ध हुई। वैशाली धन धान्य से समृद्ध तथा जन-संकुल नगरी थी। बौद्ध और जैन दोनों धर्मों के इतिहास से वैशाली के इतिहास से घनिष्ठ संबंध रहा है। पांच सौ वर्ष ईसापूर्व में भगवान महावीर और बुद्धदेव इन दोनों की पवित्र स्मृतियां वैशाली से निहित हैं

जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व १० श्ल १८४-८५ में कहा है कि धन धान्य एवं समृद्धियों से भरपूर वैशालीनगरी[7] थी उस पर चेटक का शासन था। वैसाली की जनसंख्या का मुख्य अंग क्षत्रिय थे। श्री रे चौधरी के शब्दों में– "कट्टर हिन्दूधर्म के प्रति उन क्षत्रियों का मैत्रीभाव प्रकट नहीं होता। इसके विपरीत ये क्षत्रिय जैन, बुद्ध, जैसे अब्राह्मण परंपराओं के प्रबल पोषक थे। **मनुस्मृति के अनुसार वे व्रात्य राजन्य थे।** सुविधित है **व्रातय का अर्थ यहां जैन है क्योंकि जैन साधु एवं श्रावक तप, अहिंसा, सयंम (अहिंसा,** सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) वतों का पालन करते हैं।"

सातधर्म

मगधराज अजातशत्रु (कूणिक) राज्यविस्तार केलिये लिच्छवियों पर आक्रमण करना चाहता था। उसने अपने मंत्री वस्सकार को बुद्ध के पास भेजा और कहलाया कि वाज्जिगण चाहे कितना ही शक्तिशाली हो, मैं उसे पूर्ण विनाश कर देना चाहता हूं। इस कार्य की सफलता केलिये उपाय बतलाइये। यह कहकर सावधान होकर उनके वचन सुनो और आकर मुझे बताओ। तथागत का वचन मिथ्या नहीं होता।

बद्ध ने मंत्री के वचन सुन कर उसे कोई उत्तर नहीं दिया। पर अपने शिष्य आनन्द के कुछ प्रश्न पूछे हुए निम्नलिखित सात परिहानिय धर्मों का वर्णन किया।

१. हे आनन्द! जबतकें वज्जि पूर्णरूप से निरंतर परिषदों का आयोजन करते रहेंगे:

२. जब तक वज्जि **संगठित होकर** मिलते रहेंगे, **संगठित होकर** उन्नति करते रहेंगे तथा **संगठित होकर** कर्तव्य-कर्म करते रहेंगे।

३. जबतक अप्रज्ञप्त (अस्थापित) विधाओं को स्थापित करते रहेंगे, स्थापित विधाओं का उल्लंघन नहीं करेंगे तथा पूर्वकाल में स्थापित प्राचीन वज्जि विधानों का अनुसरण करते रहेंगे।

४. जबतक वे वज्जि-पूर्वजों का तथा नागरिकों का सम्मान पूजा, समर्थन करते रहेंगे और उन के वचनों को सुनकर मानते रहेंगे।

५. जब तक वे वज्जिकुल की महिलाओं का सम्मान करते रहेंगे और कोई भी कुलस्त्री, कुलकुमारी उनके द्वारा बलपूर्वक अपहृत या निरुद्ध न की जाएगी।

६. जब तक वे नगर या नगर के बाहर वज्जि **चैत्यों (जिन-मंदिरों)** का आदर सम्मान करते रहेंगे। पूर्ववत सत्कार बहुमान पूजादि करते रहेंगे और पहले किये गये धर्मानुष्ठानों की अवमानना न करेंगे।

७. जब तक वज्जियों द्वारा **अरिहंतों की रक्षा-सुरक्षा, समर्थन** किया जाता रहेगा तबतक वज्जियों का पतन नहीं होगा, उनका कोई भी बालबांका न कर सकेगा। उन्नति और उत्थान ही होता रहेगा।

आनन्द को इसप्रकार बताने के बाद बुद्ध ने अजातशत्रु के मंत्री वस्सकार से कहा कि मैंने ये कल्याणकारी सात धर्म वज्जियों को वैशाली में बताये हैं। तब वस्सकार मंत्री ने बुद्ध से कहा कि हे गौतम! तो क्या तब तक वज्जियों को नहीं जीत सकते? जबतक कूटनीति द्वारा उनके संगठन को तोड़ नहीं दिया जाता? बुद्ध ने उत्तर दिया कि तुम्हारा विचार ठीक है। इसके बाद मंत्री वापिस चला गया और सारी बात अजातशत्रु से कह दी।

उपर्युक्त विवरण से वैशाली गणतंत्र की उत्तम व्यवस्था, अनुशासन, सच्चरित्रता, संगठन एवं धर्मनिष्ठा की पुष्टि होती है। इससे स्पष्ट है कि अरिहंतों और जैनचैत्यों के उपासक होने से वे जैनधर्मानुयायी थे। अतः ध्यानीय है कि २६०० वर्ष के प्राचीन गणतंत्रों में वैशाली गणतंत्र श्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट था। वज्जियों, लिच्छिवियों कुछ अन्य गणों ने भी इसे महान बनाया था। उनके जीवन में आत्मसंयम की भावना थी। वे लकड़ी के तख्त पर सोते थे और वे सदैव कर्तव्यनिष्ठ थे। यह सब जैनधर्म का ही प्रताप था। जब तक उन में गण रहे तब तक उन का कोई बालबांका न कर सका। वे वज्जि अरिहंतों (जैनतीर्थंकरों), उनके मंदिरों के उपासक थे, वे व्रात्य क्षत्रिय थे। वे जैन धर्मानुयायी थे। उन के आचरण पर जैनधर्म की अमिट गहरी छाप थी।

वैदेशिक संबंध

लिच्छिवियों के विदेशी संबन्धों का नियंत्रण अठारह (१८) गणराज्यों की परिषद से होता था। इस का वर्णन बौद्ध और जैनसाहित्य में मिलता है। नौ लिच्छिवियों और नौ मल्लों के साथ मिलकर यह महासंघ (Council) करता था। अजातशत्रु वैशाली पर आक्रमण के मुकाबले में उन्होंने अपने सन्देश भेजने केलिए दूत नियुक्त किए थे (बैशालिकानां लिच्छिविनां वचनेन)।

बुद्ध के समय में वैशाली गंगा से तीन योजन (लगभग सत्ताइस मील की दूरी पर थी।) और उन दिनों गंगानदी से वैशाली पहुंचते थे।[४] युवानच्याङ ने भी गंगानदी से वैशाली की दूरी १३५ ली (२७ मील) लिखी है।

वैशाली गणतंत्र का अन्त

वैशाली गणतंत्र पर मगधनरेश श्रेणिक बिंबसार की रानी चेलना (चेटक की पुत्री) के पुत्र अजातशत्रु (कोणिक) का वैशाली पर आक्रमण घातक प्रहार था।. उसकी साम्राज्य विस्तार अकांक्षा ने वैशाली का अन्त करदिया। बुद्ध की भेंट के बाद मन्त्री वस्सकार को अजातशत्रु ने वैशाली भेजा उसने वैशाली के लोगों में फूट के बीज बोए अजातशत्रु ने ई. पू. ५४४ वर्ष (भगवान महावीर की दीक्षा के चौबीस पच्चीस वर्ष बाद) बहुत बड़ी सेना लेकर वैशाली पर आक्रमण कर दिया जिसका वर्णन जैनागम निर्यावलियाओं में इस प्रकार है—

"तब राजा कोणिक (अजातशत्रु) हज़ारों हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सेना (चतुरंगिणी सेना) सहित सब सुविधाओं सहित अंग जनपद के बीच में से निकला एवं विदेह जनपद की वैशाली नगरी की ओर युद्ध केलिए गया।

वहां पहुंच कर उसने वैशाली को घेर लिया उधर से वैशाली नरेश चेटक अपनी और अपने सहयोगी १८ गणराज्यों की सेनाओं के साथ अजातशत्रु की सेना से अपने राज्य की रक्षा केलिए युद्धक्षेत्र में आ डटा। प्रलयंकारी घमासान युद्ध हुआ। १२ वर्षों तक युद्ध चालू रहा। अंत में अजातशत्रु की विजय हुई।"

आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिशष्टिशलाका परुष चरित्र पर्व दस सर्ग बारह में कहा है कि— अजातशत्रु की सेना ने वैशाली में निर्मित बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी के स्तूप को तोड़कर ध्वस्त कर दिया। जो परमार्हत महाराजा चेटक के उपास्यदेव का जैनमन्दिर था। अतः अजातशत्रु ने अपने मंत्री बस्सकार द्वारा कूटनीति से वज्जियों में फूट डलवाई और उनके उपास्य इष्टदेव

मुनिसुव्रतस्वामी का चैत्यस्तूप ध्वंस करवाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वाज्जियों का पतन हुआ। मुनिसुव्रतस्वामी जैनधर्म के २०वें तीर्थंकर थे।

हम लिख आये हैं कि– "वस्सकार को बुद्ध ने कहा था कि वज्जि जब तक संगठित रहेंगे एवं वज्जि चैत्यों की रक्षा और सम्मान करते रहेंगे तब तक वज्जियों का पतन नहीं होगा।

वैशाली पर विजय पाने केलिए अजातशत्रु ने वैशाली का ध्वंस किया और उसपर गधों से हल चलवाकर एकदम नष्ट-भ्रष्ट करवा दिया। युद्ध में ई. पू. ५३२ में महाराजा चेटक पराजित हुए एवं वैशाली ध्वंस और नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई। यहां की प्रजा को विवश होकर अन्यत्र जाना पड़ा। कुछ लिच्छिवी परिवार क्षत्रियकुंड के राजा नन्दिवर्धन (सिद्धार्थ का पुत्र, भगवान महावीर का बड़ा भाई, महाराजा चेटक का जवाई) की शरण में गए और उनके राज्यान्तर्गत नगर बसाकर स्थाईरूप से आबाद हो गए। तब उस नगर का नाम (लच्छु + वाल = लच्छुआल) पड़ गया पश्चात् अपभ्रंश होकर लच्छुआड़ प्रसिद्ध हो गया। यह नगर आज भी विद्यमान है जो इस घटना की याद दिलाता है।

जैन-परम्परा के आर्यावर्त (भारत वर्ष) से सबसे बड़ी जनसंहारक लड़ाई महाराजा चेटक को अपने दोहित्र, मगधराज अजातशत्रु (कोणिक) के साथ लड़नी पड़ी।

अजातशत्रु ने अपने पिता श्रेणिक की मृत्यु के बाद राजगृही से हटाकर अंग जनपद में चंपानगरी को अपनी राजधानी बनाया। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं तथा फूट से इतने वैभवशाली महागणतंत्र राज्य का विनाश हुआ। महाभारत ने भी गणतंत्रों के विनाश केलिए ऐसे ही कारण बतलाये हैं। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा था कि हे राजन! गणों तथा राजकुलों में शत्रुता की उत्पत्ति का मूल कारण है लोभ और ईर्ष्या-द्वेष जब कोई गण या कुल लोभ के वशीभूत होता है तब दोनों के मेल से पारस्परिक विनाश होता है।

वैशाली गणतंत्र के महाराजा चेटक तथा अंग-मगध के राजा अजातशत्रु दोनों भगवान महावीर के अनुयायी होने से जैन धर्मानुयायी थे। चेटक नाना था और अजातशत्रु दोहित्र था। युद्ध बारह वर्ष चालू रहते हुए बीच-बीच में भगवान महावीर के वैशाली में तथा गंडकी नदी के दूसरे तट पर वाणिज्यग्राम में चार चतुर्मास हुए। युद्ध समाप्ति के बाद ई. पू. ५३३ से ५२७ तक भगवान अपने निर्वाण तक फिर कभी वैशाली नहीं गए। इससे भी स्पष्ट है कि ई. पू. ५३२ में वैशाली ध्वंस हो चुकी थी।

हम लिख आए हैं कि लिच्छिवी और ज्ञातृ दोनों क्षत्रिय जातियां अलग-अलग हैं। कईयों ने लिच्छिवियों और वज्जियों को प्रायः एक माना है और इन्हें राजन्य क्षत्रिय माना है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह दोनों उच्चक्षत्रिय, राज ीय, व्रात्य शुद्धक्षत्रिय थे। महाराजा चेटक वैशाली के और सिद्धार्थ एवं नन्दीवर्धन (पिता-पुत्र) मगध जनपद में कुंडपुर के राजा थे। अतः ये दोनों स्वतंत्र राजा थे।

वैशाली पर आक्रमण का कारण

वैशाली पर आक्रमण के कई कारण बतलाए जाते हैं। १. एक जैनकथा के अनुसार सचेतक नामक हाथी और अट्ठारह लड़ियों का हार राजा श्रेणिक ने अपने छोटे पुत्र बहल्ल को दिया था। परन्तु अजातशत्रु इन दोनों को अपने छोटे भाई बहल्ल से हड़पना चाहता था। बहल्ल हाथी और हार को अपने साथ लेकर नाना चेटक के पास वैशाली चला गया और चेटक ने उसे संरक्षण दिया। इसलिए अजातशत्रु ने युद्ध किया। २. कुछ लोगों के अनुसार रत्नों की एक खान से अजातशत्रु ललचाया था। ३. मगधराज्य और वैशाली राज्य की सीमा गंगातट पर चुंगी के विभाजन के प्रश्न पर झगड़ा हो गया था। चाहे जो कुछ भी हो। इतना तो निश्चित है कि अजातशत्रु ने लोभवश इस युद्ध केलिए बड़ी तैयारियां की थीं। सर्वप्रथम इसने गंगातट पर पाटलिपुत्र (पटना) की स्थापना की। जैन विवरणों के अनुसार यह युद्ध बारह वर्षों तक चला। अन्त में वैशाली गणतंत्र मगध का अंग बन गया।

चेटक के भारत के राज्यों के साथ कौटुंबिक सम्बन्ध

महाराजा चेटक की एक बहन त्रिशला थी और प्रभावती आदि सात [illegible] यां थी। इनमें से छह पुत्रियों का विवाह हुआ था और एक ने विवाह नहीं [illegible] उसने दीक्षा ले ली थी। अब यहां चेटक का दूसरे राज्यों के साथ संबंध बताने के लिए उनकी राजधानियों सहित नामों का उल्लेख करते हैं— १. क्षत्रियकुंड का राजा सिद्धार्थ (बहनोई) २. वीतभय-पत्तन (सिंधु-सौवीर) का राजा उ[illegible]न ३. चंपा (अंग) का दधिवाहन राजा ४. कौशाम्बी का राजा शतानिक ५. उज्जैन (मालवा) का राजा चंद्रप्रद्यौत ६. क्षत्रियकुंड (मगध) का राजा नन्दिवर्धन ७. राजगृही (मगध) का राजा श्रेणिक-बिंबिसार। नम्बर दो से सात ये छह चेटक के दामाद थे। इस प्रकार सात राज्यों से चेटक के कौटुंबिक संबंध थे।

राज्य प्रणालियां

उस काल में दो प्रकार की राज्य प्रणालियां थीं। १. गणतंत्र राज्यप्रणाली २. एक राज्य की स्वतंत्र एक सत्ताक राज्यप्रणाली। महाराजा चेटक के बहनोई और छः दामाद (ये सातों) एक अपने-अपने राज्यों के एक सत्ताक राजा थे। एक सत्ताक राज्य की व्यवस्था वहां का राजा अपनी इच्छा के अनुसार स्वयं करता था। ये सब राजा भगवान महावीर के अनुयायी दृढ़ जैनधर्मी थे।

ध्यानीय है कि चेटक की छोटी पुत्री चेलना के साथ विवाह करने केलिए राजगृही के राजा श्रेणिक बिंबिसार ने स्वयं मांगा था। पर चेटक ने यह कहकर उसे मना कर दिया था कि "तुम शिशु नागवंशी हर्षकुल के वाहिकवासी।[10] हो इसलिए मेरी पुत्री का रिश्ता तुमसे नहीं हो सकता"। परन्तु चेलना ने श्रेणिक से स्वयं विवाह कर लिया था।[11] हम लिख आए हैं कि राजा चेटक ऊंचे राजन्यकुल के क्षत्रिय थे इसीलिए उन्होंने श्रेणिक के साथ चेलना का विवाह करने से इनकार कर दिया था। क्योंकि वह हीनकुल का था। यह भी स्पष्ट है कि शेष जंवाई उनके समान उच्चकुल के थे और समृद्धिशाली भी थे। हम पहले इन के बहनोई राजा सिद्धार्थ की समृद्धिशालीनता का उल्लेख कर आए हैं। अब हम सबसे बड़े जंवाई उदायन के राज्य विस्तार, जैनधर्म में दृढ़ता और उसकी समृद्धशालीनता का उल्लेख करते हैं–

सिंधु-सौवीर का राजा उदायन

भगवान महावीर के समकालीन सिंधु-सौवीर जनपद नरेश महाप्रतापी यथाख्यात नामा राजा उदायन वैशाली के महाराजा चेटक के सबसे बड़े जंवाई थे। जो राजकुमारी प्रभावती के पति थे। इनकी राजधानी सिन्धनदी के तटवर्ती वीतभयपत्तन नगरी थी। इनके अधीन ३६३ नगर ६८५० ग्राम अनेक खानें और १६ देशों के राजा थे। उदायन की आज्ञा से महासेन (उज्जैननरेश चंद्र-प्रद्योत) आदि १० महापराक्रमी मुकुटबद्ध राजा रहते थे। महारानी प्रभावती के महल में देवताप्रदत्त गोशीर्षचन्दन काष्ट की भगवान महावीर की जीवितस्वामी की कुंडलमुकुट आदि अलंकारों से अलंकृत अत्यंत सुन्दर महाचमत्कारी प्रभावित प्रतिमा घर चैत्यालय में विराजमान थी। राजा-रानी प्रतिदिन इसकी पूजा करते थे। राजा धर्मपरायण, प्रजावत्सल और महा सूर-वीर था। इसकी सूरवीरता के कारण शत्रु राजा इसके देश पर आक्रमण करने का साहस नहीं करते थे। इसलिए न तो स्वचक्र-परचक्र का भय था और

न ही प्रजा का उत्पीड़न था। सब निर्भय होकर सुख और शांति से निवास करते थे। यही कारण था कि राज्य शांत-धार्मिक-धन-धान्य से समृद्ध था।

अन्त में राजा उदायन और रानी प्रभावती ने राजपाट गृहस्थ परिवार सर्व परिग्रह का त्याग कर भगवान महावीर के शासन में निर्ग्रंथ श्रमण-श्रमणी की दीक्षाएं लेकर निरातिचार-चरित्र पालकर आयु समाप्त होने पर प्रभावती ने देवगति प्राप्त की और (राजा उदायन) राजर्षि केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बने और अन्त में सर्वकर्म क्षय करके निर्वाण प्राप्त किया।[12]

इसी प्रकार चेटक के बहनोई सिद्धार्थ तथा छहों ही दामाद सभी बड़े समृद्धिशाली राज्यों के स्वामी बने।

फुटनोट्स:-

१. ऋग्वेद १०, १०२, ६, १३६, २, ३३। भागवत ५, ६ विष्णुपुराण ३. १८ आदि। इनमें ऋषभ, केशी, वातरशना मुनियों के उल्लेख ध्यान देने योग्य हैं। विशेष जानकारी के लिये देखें— हमारा मध्यऐशिया और पंजाब में जैनधर्म-ग्रंथ अध्याय १ पृष्ठ १ से २१

२. जैनागम संमवायांग पृष्ठ २४६। और कल्पसूत्र। आ. हेमचंद्र कृत त्रि. श. पु. चरित्र आदि। दिगम्बर-तिलोयपण्णत्तिमताधिकार ४। जिनसेन कृत आदिपुराण, गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, पुष्पदंत कृत महापुराण (अपभ्रंश)

३. भागवतपुराण ४, ५, ९ | ११, २। विष्णुपुराण २३, १, ३१ वायुपुराण ३३, ५२। अग्निपुराण १, ७, ११-१२. ब्रह्मांड पुराण ५, ६२, लिंग पुराण ४७, २२ स्कन्द पुराण कौमार खंड ३७, २७, मार्कन्डे पुराण ५०। ४१ इन में स्पष्ट उल्लेख है कि ऋषभ के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

४. कल्पसूत्र एवं आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रि. श. पुरुषचरित्र

५. कल्पसूत्र।

६. देखें हमारा लिखा- मध्यएशिया और पंजाब में जैनधर्म ऐतिहासिक ग्रंथ में विस्तृत वर्णन।

७. दिगम्बरपंथी महावीर का विवाह नहीं मानते। इस भ्रांत मान्यता के स्पष्टीकरण केलिये मेरी पुस्तक-राजकुमार वर्धमान महावीर विवाहित थे- अवश्य पढ़ें।

८. दिगम्बर पं. फूलचंद सिद्धांतशास्त्री कृत जाति, वर्ण, और धर्म नामक पुस्तक पृ. २८० भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

९. डा. हीरालाल जैन M.A.D.Litt कृत महावीर पुस्तक।

१०. डा. हीरालाल M. A. D. Litt कृत पुस्तक महावीर।

११. भगवान महावीर के ६०९ साल बाद दिगम्बर संप्रदाय की स्थापना हुई।

१२. डा. भूपसिंह राजपूत- हांसी (हरियाणा) श्रमण हिन्दी मासिक पत्रिका वर्ष २२ अंक १२ पृ. ५ से ११

१३. उपर्युक्त सब घटनाओं का उल्लेख अर्धमागधी भाषा के प्राचीन जैनागमों कल्पसूत्र आचारांग आदि में आता है जिनकी ज्योतिष शास्त्र में पुष्टि करता है। यद्यपि दिगंबर भी इस जन्मकुंडली को अक्षरशः मानते हैं पर इस विषय में दिगम्बर शास्त्र मौन हैं।

१४. The Gains, both Svetambaras and Digambaras, state that Mahavira was the son of King Siddhartha of Kundapura or Kundagrama. They would have us believe that Kundagrama was a large town, and Siddhartha a powerful monarch. But they have misrepresented the matter in overrating the real state of things, just as the Buddhists did with regard to Kapilavastu and Suddhodhana. For Kundagrama is called in the Akaranga Sutra a samnivesa, a term which the commentator interprets as denoting a halting-place of caravans or processions. It must therefore have been an insignificant place, of which tradition has only recorded that it lay in Videha (Akaranga Sutra, II 15 & 17 Yet by combining occasional hints in the Bauddha and Gaina scriptures we can, with sufficient accuracy, point out where the birthplace of Mahavira was situated; for in the Mahavagga of the Buddhists[1] we read that Buddha, while sojourning at Kotiggama, was visited by the courtezan Ambapali, and the Likkhavis of the Neighbouring capital Vesali. From Kotiggama he went to where the Natikas[2] (lived). There he lodged in the Natika Brickhall[3], in the neighbourhood of which place the courtezan

Ambpali possessed a park, Ambapalivana, which she bequeathed on Buddha and the community. From there he went to Vasali, where he converted the general-in-chief (of the Likkhavis), a lay-disciple of the Nirgranthas (or Gaina monks.) Now it is highly probable that the Kotigama of the Buddhists is identical with the Kundaggama of the Gainas. Apart from the similarity of the names, the mentioning of the Natikas, apparently identical with the Gnatrika Kshatriyas ot whose clan Mahavira belonged, and of Siha, the Gaina, point to the same direction. Kundagrama, therefore, was probably one of the suburbs of Vaisali the capital of Videha. This conjecture is borne out by the, name Vesalie, i.e. Vaisalika given to Mahavira in the Sutrakritanga I, 3. The commentator explains the passage in question in two different ways, and at another place a third explanation is given. This inconsistency of opinion proves that there was no distinct tradition as to the real meaning of Vaisalika, and so we are justified in entirely ignoring the artificial explanations of the later Gainas. Vaisalika apparently means a native of Vaisali: and Mahavira could rightly be called that when Kundagrama was a suburb of Vaisali, just as a native of Turnham Green may be called a Londoner. If

then Kundagrama was scarcely more than an outlying village of Vaisali, it is evident that the sovereign of that village could at best have been only a petty chief. Indeed, though the Gainas fondly imagine Siddhartha to have been a powerful monarch and depict his royal state in glowing, but typical colours, yet their statements, if stripped of all rhetorical ornaments, bring out the fact constitution of Vessli..So we are enabled to understand why the Bddhists took no notice of him, as his influence was very great, and besides, was used in the interest of their rivals. But the Gainas cherished the memory of the maternal uncle and patron of their prophet, to whose influence we must attribute the fact, that Vaisali used to be a stronghold of Gainism, while being looked upon by the Buddhists.as a seminary of heresies and dissent.

That Sidhartha was but a baron; for he is frequently called merely Kshatriya - his wife Trisala is, so far as I remember, never styled Devi, queen, but always Kshatriyani. Whenever the Gnatrika Kshatriyas are mentioned, they are nerer spoken of as Sidhartha's Samantas or dependents, but are treated as his equals. From all this it appears that Sidhartha was no king, nor even the head of his clan, but in all probability only exercised the degree of authority which in the East usually falls to the share of landowners, especially of those belonging to the recognised aristocracy of the country. Still he may have enjoyed a greater influence than many of his fellow-chiefs; for he is recorded to have been highly connected by marriage. His wife Trisala was sister to Ketaka, King of Vasali[1] She is called Vaidehi or Videhdatta' because she belonged to the regning line of Videha

Buddhist works do not mention, for aught I know, Ketaka, King of Vaisali, but they tell is that the government of Vesali was vested in a senate composed of the nobility and presided over a king, who shared the power with a viceroy and a general-in-chief[3]. In Gaina books we still have traces of this curious government of the Likkhavis; for in the Nirayavali Sutra[4] it is related that king Ketaka, whom Kunika, al. Agatasatru, king of Kampa, prepared to attack with a strong army, called together the eithteen confederate kings of Kasi and Kosala, the Likkhavis and Mallakis, and asked them whether they would satisfy Kunika's demands or go to war with him. Again, of the death of Mahavira the eighteen confederate kings mentioned above, instituted a festival to be held in memory of that event[5], but no separate mention is made of Ketaka, their pretended sovereign. It is therefore probable that Ketaka was simply one

of these confederate kings and of equal power with them. In addition to this, his power was checked by the constitutin of Vesali. So we are enabled to understand why the Buddhists took no notice of him, as his influence was not very great, and besides, was used in the interest of their rivals. But the **Gainas** cherished the memory of the maternal uncle and patron of their prophet, to whose influence we must attribute the fact, that Vaisali used to be a stronghold of **Gainism,** while being looked upon by the Buddhists as a seminary of heresies and dissent.

1 see Oldenberg's edition PP 231, 232, the translation, P 104 seq of the second part Sacred Books of te East Vol xvii

2 The passages in which the Natikas occur seen to have been misunderstood by the commentator and the modern translators Rhys Davids in his translation of the Mahaparinibbana-Sutta (Sacred Books of the East vol xi) says in a note p 24 'At first Nadika is (twice) spoken of in the plural number but then

thirdly in the clause, in the singular Buddhaghosa explains this by saying that there were two villages of the same name on the shore of the same piece of water ' The plural Natika denotes in my opinion, the Kshatriyas the singular is the adjective specifying Gingakavasatha, which occurs in the first mention of the place in the Mahaparinibbana-Sutta and in the Mahavagga VI, 30 5 and must be supplied in the former book wherever Nadika is used in the singular I think the form Nadika is wrong and Natika the spelling of the Mahavagga is correct Mr Rhys Davids is also mistaken in saying in the index to his translation "Nadika nere Patna " It is apparent from the narative in the Mahavagga that the place in question as well as Kottigama was near Vesali

3 See Weber Indische Studien, XVI, p 262

1 See Kalpa Sutra my edition, p 113 Ketaka is called the maternal uncle of Mahavira

2 See Kalpa Sutra Lives of the Ginas, 110, Akaranga Sutra II, 15 15

3 Turnour in the Journal of the Royal As Soc of Bengal VII P 992

4 Id Warren P 27

5 See Kalpa Sutra Lives of the Ginas

१५. इहेव भरहेवासे पुव्वदेसे। विदेहे नाम जनवओ संपइकाले तिरहुत्तिदेसो त्ति भण्णइ। तत्थ .... मिहिला नाम नयरी होत्था। संपयं जमई त्ति प्रसिद्धा। (जिनप्रभ तीर्थ कल्प)

(४) तीरकत्युपरिकाधिकरणस्य। (५) तीरभुक्तौ विनयस्थिति स्थापिकाधिकरणस्य (६) तीरकुमारापत्याधिकरणस्य। वैशाल्याधिष्ठानाधिकरण (वैशाली मे मिली हुई मुद्राएं वैशाली पृष्ठ १६)

१६. वज्जी संघ, विदेहीपुत्र, आठसघ, वैशाली वज्जीसंघ की राजधानी थी। अजातशत्रु को वेदेहीपुत्र कहा जाता था। क्योंकि उस की माता विदेह की राजकन्या थी। मिथिला विदेह की राजधानी थी। बुद्ध के समय वज्जीसंघ आठ प्रमुख सघों मे मे एक था।

१७. चीनीयात्री फाहियान यात्रा (वैशाली पृष्ठ १९)

१८. इस पाठ मे विदेह का कोई उल्लेख नही है। विजयेन्द्र सूरि ने भगवान का जन्म विदेह जनपद में हुआ था इसकी पुष्टि के लिये अपनी कल्पना मात्र से लिख कर अनुचित प्रयोग करके अक्षम्य चेष्टा की है।

१९. P. C. Roy choudhary Jainism in Bihar पृ १३-१४.

दिगम्बर त्रैमासिक जैनसिद्धान्तभास्कर हिन्दी-आरा बिहार भाग १० किरण २ पृ० ३०

(भगवान महावीर का जन्मस्थान नालंदा से दो मील की दूरी पर।

२०. सन्निवेश का अर्थ नगर के बाहर का प्रदेश जहां अमराव वगैरह लोग रहते हैं, गांव, नगर आदि स्थान यात्रियों आदि का डेरा, मार्गस्थान, पड़ाव (पाइअ-सद्द-महण्णवो कोष)

२१. Jagdish Chandra Jain Life of Ancient India as dispitched in the Jain canons-Mahari as Itinrory Page 257

२२. उपासगदशांग १।६७ आचार्य तुलसी और नथमलमुनि अतीत और अनागत पृ. १३३-३४।

२३. इह खलु जंबुदीवेणं दीवे भारहेवासे दहिणड्डभरहे माहणकुंडपुर सन्निमेसं। आचारांग १।१७५ कल्पसूत्र सूत्र १५।

२४. Life of Ancient India as despited in the Jain Canon p. 248.

२५. डा. रामरघुवीर कृत मंगेर के प्राचीन जैनतीर्थ पृ. ३०.

२६. P. C.Ray Chaudhary Jainim in Behar P. 13/14

२७. Yogendra Misra. An carly History of Vaishali.

२८. P. C. Raj Chaudhary Jainism in Bihar 14.

२९. इन सब धारणाओं का विस्तारपूर्वक विश्लेषण हम आगे करेंगे।

३०. माहणकुंडग्गामे कोडालसगुत्तो माहणो अत्थि तस्सघरे उववण्णो देवानंदाई कुच्छंसि।।४५७।।

व्याख्या—पष्पोत्तरा च्युतो नगरे कोडालसगोत्रो ब्राह्मण: ऋषभदत्ताभिधानेऽस्तितस्या गृहे उत्पन्न: देवानंदाया: कुक्षोमिति गाथा।।४३७

३१ जबदीवे णंदीवे, भारहेवासे..... दाहिण माहणकुंडलपुर सन्निवेसाओ उत्तरखतिअकुंडपुर सन्निसम्मिणायाण खतियाणं। सिद्धत्थ-खत्तअस्स कासवगुत्तस्स तिसलाए खतियाणीए असभाणं पग्गलाण उवहारे करित्ता सुभाणं पग्गलाण पक्खेव करित्ता कुच्छंसि गब्भ सहारइ (अचारांगसूत्र टीका सहित पृ ३८८)

३२. कल्पसूत्र बालावोध गुजराती भाषातर व्याख्यान चौथा।(श्री विजयराजेन्द्र सूरि)

३३ अह चित्तसुद्धस्स तेरसी पुव्वरत्त कालम्मि हत्थुत्तराहिं जाओ कुडग्गामे महावीरो (आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य)

३४ तत्र तीर्थकृता जन्मन सूतिक कर्माणि प्रथमत: षट्पंचाशत दिक्कुमारिया समागत्य शाश्वतिक स्वचार कर्मकुर्वन्ति तद्यथा (१) दिक्कुमार्योऽष्टाधो लोके वासिन्य कम्पितासन अर्हज्जन्मावधेऽयेयमनन्समिवर्श्मन तत्वा प्रभ अवा चेशाने सूतिकागृह व्यधु संवर्तेनशोधयेन क्षमान्ताय जनसितो गेहात् (अष्टनामानि)। (२) अष्टोर्ध्वलोकस्थेनामन्वोऽहंत्त समानुको नत्रगधाम्बपर्पीणधवर्षोहर्षद्वतो नीरे (अष्टनामानि) (३) एतापर्वरुचकादेत्य विलोकनार्थं दर्पणं अग्रे धरन्ति (अष्टनामानि) (४) एता दक्षिणरुचकदेत्या: स्नानार्थं करे पूर्ण कलशा: धृत्वा गीतगान विधानि (नामानि) (५) एता पश्चिम रुचकदेत्य. वानार्थ व्यजनं पाणायोऽग्रे तिष्ठन्ति (नामानि)। (६) अष्टोत्तर दिक् एत रुचकादेत्य: चामराणि वीजयन्ति (अष्टादिक्कुमार्या: नामानि) (७) विदेक्षेत्यास्य विदिगरुचकस्यादित रुचक द्वीपतोऽभ्येयुश्च चतस्रोदिक्कुमार्यो (दिक्कमार्या नामानि)। (८) चतुरगलतो नाल च्छित्वा खानोदरे क्षिपेत। इत्यादि .

(कल्पसूत्र सर्वोधिका टीका) व्याख्यान पांचवा

३५ कल्पसूत्र व्याख्यान पांचवां।

३६ दिगधरपुष्पदंत कृत महापुराण संधि ९५ कडवक ६, ७।

३७, पूज्यपाद कृत निर्वाणभक्ति सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवासे विदेहे कुंडपुरे।

३८. दिगम्बर जिनसेन कृत महापुराण सर्ग २ श्लोक १-५।

"अथ देशोऽस्तिविस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते विदेह इति व्याख्यात: स्वर्गमंडनसम. श्रय तत्रह खंडलनेत्रऽील पयनी खंड मंडल सुरम्म: कुंडभाषाति नाम: कुंडपुरम परम

३९. भरतेऽस्मिन विदेह विषये भवनांगने राज्ञें: कुंडपुरस्य वसुधारा पतत्यु पुथ।

४०. दिगम्बर ज्ञानपीठ पूजांजलि पृष्ठ ५१।

४१. दिगम्बर जयमाला पूजा-ज्ञानपीठ पूजांजली पृष्ठ ६३

४२. पुष्पदंत कृत महापुराणु संधि ९८ कड़वक ९१।

४३. महावीर तीर्थंकर की जन्मभूमि (हार्नले) जै. सा. संशोधक खण्ड १ से ४ पृ. २१८

४४. उपर्युक्त लेख।

४५. भारतीयविद्यापीठ पृ. १८६।

४६. माथोऽपि सिद्धार्थप्राद वैशालीनगरी ययौ शंख: पितृ सुहतत्राभ्यर्चनगणराटप्रभुम्। तथा पृतस्थे। भगवान ग्राम वाणिज्यके प्रति मार्गे गंडकी नाम नदी नावोततारेत्रच (त्रि श. पुरुष चरित्र पर्व १०)

४७. कल्पसूत्र ३१. ३२'

४८. निर्युक्ति ३३२५

४९. निर्युक्ति ४७४

५०. निर्युक्ति ४७६.

५१. तस्सणं वाणियग्गामस्स उत्तर-पच्छिमे दिसिभाए दूइपलासे णामं उज्जाण होत्था। (विपाकसूत्र पृष्ठ १६)

५२. कुंडपुरणयर मज्झेणं निगच्छेइ। जणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणैव असोगवरपायव तेणेव उवागच्छेइ। (कल्पसूत्र निर्णय-सागर प्रेस पत्र २८१)

५३. कल्पसूत्र सूत्र ५५-५६.

५४. कल्पसूत्र ५१-५३

५५. कप्पतरूक्खाए विव अलंकिय विभूसिय नरिंदे मो, कोरिंट मल्लदामिण छत्तेण धरिज्जमाणेणं सें यवरं चामराहिं उद्धव माणिहिं मंगल जय सद्द गया लोए अणेग गणणायग, दंडणायग, राईसर, तलवर, मांडबिय मंति महामंति गणग दोवारिय अमच्च चड पीठमद्द नगर निगम सिट्ठि सेणावई सत्थवाह दूअ संधिवाल सिद्धि संपरिवुड्डे... (कल्पसूत्र सत्र ६२)

५६ क्षत्रं तु क्षत्रियो राजा राजन्यो वाहुसंभव:।।

महासेणेयं खत्तिए। (इसपर टीका लिखी है)

"चन्द्रप्रभस्य महासेन: क्षत्रियो राजा।। (प्रवचनसारोद्धार सटीक)।

५७ तत्थ निच्चकालं रज्जंकारेत्वा वसंताणंत एव राजाणं सत्तसहस्साणि सत्तं-सताणि सत्त राजानो (७७०७)। होंति सत्तकायेव उपाराजानो तत्तका सेनापति जो ततंका भाडागारिका। (अट्ठकथा पृ. ३३६)

५८. धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेण बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठगारेण पुरेण अंतेउरेणं जणपयेणं जसवाएणं वड्ढित्ता (कल्पसत्र सूत्र ८९) सोवणेणं धणेणं धन्नेणं रज्जेण जावं सहविज्जेणं पीइसक्कारेणं अईच अईच अभिवड्ढामो। मामतरायणो। वममागया (कल्सूत्र सूत्र १०६)

५९ वीर अरिट्ठणेमि पासं मल्लि व वासपज्ज च। ए ए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ।।२२।। राएकुलेसु वि जाया विसद्ध वंसेसु खत्तिए कुलेसु। (टीका) एव हि महावीर प्रभृत्य: पचतीर्थंकृता राजकुलेष्वपि विशुद्धवशेषु क्षत्रियकुलेषु- किंचित क्षीणेकुलेष्वपि भवति। यथा नन्दराज-कुलं अत उक्त कलेषु ।।२२२।। (आवश्यक निर्युक्ति २२२ आ. मलयगिरि टीका)

६०. बहिआ य णायसडे आपुच्छिताणं णाए सव्वे दिवसे मुहुत्त सेसे कमारग्गामं समणपत्तो।। भा. १११।। (हरिभद्र टीका) तत्र च पथंद्वयं एकों जलेन अपरः स्थल्ये। तत्र भगवान स्थल्यो गत्वान् गच्छंश्च दिवसे मुहुर्तशेषे कमारग्राममनुप्राप्तृ इति गाथार्थः। (पृ. १८८)

६१. गौतमबुद्ध की अंनिम यात्रा महापरिनिवाणसुत्त।

६२. डा. रामरघुवीरसिंह मुंगेर के प्राचीन जैनतीर्थ क्षत्रियकुंड पृ. ३२ से ३८

६३. स्टीवेंमन कृत दी हार्ट आफ जैनिजम। पृ. २१-२२.

६४. हम आगे इनका आचार्य जी तथा पन्यास जी दोनों की मान्यताओं पर साथ साथ विचार करेंगे।

६५. देखें आचार्य श्री कृत तीर्थंकर महावीर भाग १ पृ. ८३

६६. पं० कल्याणविजय जी कृत- श्रमण भगवान महावीर पृ. ५

६७ यद्यपि शास्त्र में ऐसा सकेत नहीं मिलता कि अलग-अलग स्थानों में दीक्षाएं हुईं। क्योंकि यहा के तीन पर्वतो के नाम चक्कणाणि हैं। जिस का अर्थ है कि भगवान ने इन तीनों पर्वतों पर धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया इस का विशेष खुलासा हम पहले कर आये हैं।

६८ आचार्य तुलसी और मुनि नथमल कृत अतीत का अनावरण पृ १३१

६९ उपरोक्त पृ १३२

70 An early History of Vaishali Page 224

७१ स्वामी सहजानद सरस्वती कृत ब्रह्मर्ण वंश विस्तार पृ ३४०, ३३१

७२. मज्झिमनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पृ १२७ पदमकेत १ पृ ६१९ में ज्ञातृक को वर्तमान मे जेदरडीह, मसरख जिला सारण (छपरा) से मिलाया गया है।

७३. अथ खो कपिलवत्थवामी मक्याकोमिका नारकनादृत पाइस् भगवा अम्हाक ञातिसेठो (महापरिव्वान सुत्त सूत्र १८५) यहा ञातिसेठो का अर्थ है- ज्ञाति श्रेष्ठ (उत्तम जाति)। ज्ञात या ज्ञातृकल नहीं है।

७४ अतीत का अनावरण पृ. १३३ (आ. तुलसी मुनि नथमल कृत)।

७५ आचार्य श्री विजेन्द्र सूरि कृत तीर्थंकर महावीर भाग १ पृ ७१ से ७७

७६. रायगिह मगध, २. चंपा-अगा, ३. तामलित्ति बगाय। ४. कचंनपुर-कलिंग, ५. वाराणसी चैव कासीय ।।१।। ६ साकेत-कोसला ७ गयपुर च कुरू ८. सीरिय कुसट्टाया। ९. कपिल-पाचाला १० अहिछत्ता-जागला चेव।।२।। ११. वारवइया-सोरठा १२. विदेह-मिथिला १३ वच्छ कोठ १४. नदिपुर-संडिब्मा, १५. भद्दिलपुर मेव मलया।।३।। १६. वराड-वच्छ १७ वरणा-अच्छा, १८. भत्तिइं दसन्ना। १९. सुत्तिवइ-चेदि, २० वीयभयं-सिन्धसौवीरा।।४।। २१ महुरा य-सूरसेना, २२. पावा भंगीय, २३. मासपुरी-बट्टा। २४ सावत्थिय कुणाला २५. कोडिवरिसं च कुणाला।।५।। २६. सेवियाविय नयरी केगइ अद्धं च आरिया भणिया। जत्य उत्पति जिणाणं चक्कीणं रांय कणहाणं। ।।६।।
(बृहत्कल्पसूत्र उद्देशा १ पृ. ९१३)

७७. (१) अह चित्तसुद्ध पक्खस्स तेरसि पुव्वरत्त कालम्म हत्थुत्तराहि जाओ कुडग्गामि महावीरो। (भा. ६१)
हत्थुत्तर जोएण कुडग्गाममिम खत्तिओ जच्चो।
वज्जरिसह संघयणो भविजन विवाहो वीरो। (आवशयक निर्युक्ति ४५९५)
एवं अभिन्थ् अंवं तो बुद्धो बुद्धारविदे सरिस मुहो।
लोगतिग देवेहि कुडग्गामे महावीरो।। भा ८८ ।।

जावयं कुंडग्गामो जावयं देवाणं भवणं आवासं।
देवेहिं या देवीहिं य अविर रहिअं संचरनेहिं
(मा. २२९) आवशयक निर्युक्ति हरि पृ० ८०-८४
कुंडग्गामनगरं, कुडपुरनयरं, कुंडग्गामनगरं (कल्पसूत्र ६६, १००, १०१-५)
अत्थि इह भरहवासे मज्झिम देसस्स मंडनं परमं।'
सिरि कुंडग्गामं नयरे वसुमई रमणि तिलय भूयं। (आ. नेमिचंद्र महा. च.)
(२) खत्तियकुंडग्राम नगर सन्निवेश। खत्तिअकुंडग्गामे सिद्धत्थो नाम खत्तिअ अत्थि।
सिद्धत्थ भारिआए साहर त्रिसलाइ कुच्छंसि।। (आ.नि. पृ. १७८)
गमनिका क्षत्रियकुंडग्रामे सिद्धार्थो नामे क्षत्रियोऽस्ति तत्र सिद्धर्थ भार्यायां संहर त्रिशलाया: कुक्षाविति गाथार्थ: (भा. ५२)

उत्तर-खत्तियकुंड सन्निवेस (आचारांग, श्रु० २ चूर्णि ३, भा. वना सूत्र ३९९, ४८२ ४०३)
खत्तिअकुंडग्गामनयर कल्पसूत्र २०, २५, २७, २९, ६७).
३ माहणकुंडग्गाम, नयर, सन्निवेस।
बाहिण-माहणकुंड सन्निवेस (आचारांग चू. ३ भा. सू. ३९१-९९)
माहणकुंडग्गाम नयर (कल्पसूत्र २, १४, १९, २०, २२, २५, २७, २९)
माहणकुंडग्गामे कोडालस्सगुत्तस्स माहणो अत्थि।
तस्स घरे उव्वण्णो देवानदाई कुच्छिंसि।। ।।४५७।।
— अस्या-व्याख्या- पुष्पोत्तराच्चुयतो **ब्राह्मणकुंड ग्रामे नगरे** कोडालस गोत्रो ब्राह्मण. ऋषभ दत्ताभिधाननोऽस्ति तस्य गृहे उत्पन्न: देवानन्दाया: कुक्षाविति गाथार्थ: ।।४५७ (आवश्यक निर्युक्ति हारि. वृत्ति पृ. १५८)
४ **बमनगाम**- रायगिहि तंतुसाल मासखमणे च गोसाले। (नि. ४९२) कोल्लाग बहुल पायल दिव्वा गोसाल दिट्ठा पावज्जा।।
— बाहिं सुवण्णखलए पायस थाली नियद्ध गहण। ४७४ **बमनगामे** नंदोवनद तय पच्चद्धे। चंपा दुमासखमणे वासावासं मुनि खमई।। (आ. नि. ४७५)
६४. १. आसम पयम्मि विय जिणिंदो **णायसंडम्मि।**
अवसेसा निक्खत्ता सहसंव वर्णम्मि उज्जतेण।। (नि. ३३१)
— एवं सदेव मणुआ-सुराए परिवुढो भयवं।
अभिद्युवंतो गिरीहिं संपत्तो **णायसंडवण**।। (भा. १०५)
बहिया या **णायसंडे** आपुच्छिताण णाये सव्वे।
दिवस मुहुत्त सेसे कुमारग्गामं समणुपत्तो।। (भा. १११)
(आवश्यक निर्युक्ति भावना हरि. टीका १३७ १८६-८७)
२. जैणेव **णायसंडे उज्जाणे** तेणेव उवागच्छेइ।। (आचारांग सूत्र ४०२ श्रु. २ चू. ३
३. **कुंडपुर नगर** मज्झं मज्झेण णिगिच्छेइपामिगच्छेइ जेणेव **णायसंडवणे उज्जाणे** जेणेव असोगवर पायवेण उवागच्छेइ।। (कल्पसूत्र)
४. **बहुसाल अ चेइये, बहुसालए चइए।।** (भगवती सूत्र)
६५. माहणकुंडग्गामे कुंडालिस गुत्तस्स माहणो अत्थि।
तस्स घरे उववण्णो देवानंदाई कुच्छिंसि।।४५७।।
अस्यांव्याख्या- पुष्पोत्तराच्चुतो ब्राह्मणकुंडग्रामे नगरे कोडालस गोत्रो ब्राह्मण ऋषभदत्ताभिधानोऽस्ति तस्य गृहे उत्पन्न: देवानंदाया: कुक्षाविति गाथार्थ: (आव. नि. हारिवृत्ति पृ. १७८)

क्षत्तिअकुंडग्गामे सिद्धत्थो नाम खत्तिओ अत्थि।
सिद्धत्थ भारिआए साहर तिसलाई कुच्छिंसि।।५२।। (हरिणगमेसी दूतेण) आ. नि. पृ. १७९
६६. वीरपुरं बारवई, को अंगऊ कोल्लायग्गामो (आ. नि. २३२५)
६७ विहरतो मोराक सन्निवेस प्राप्तस्य भगवतः सन्निवासी दुईज्जंत नामाभिधाना पाषंडस्थो। (कल्पसूत्रटीका)
६८ भगवं य अद्धमागहीए भासाए धम्म-माखई।। (श्यामाचार्यकृत प्रज्ञापणा सूत्र)
६९. समणस्स भगवओ महावीरस्स पिया कासवब गुणे -तस्सणं तेओ नामधिज्जा एवमाहिज्जतिंगुत्तेणजहा सिद्धथो वा सिज्जंसई वा जसंसेइव। समणस्स भग विओ महावीरस्स माया वासिट्ठगुत्तेणं तीसे ताओ नाम धिज्जा। एवमाहिज्जतिं तं जहा तिसल्ला। इवा विदेहदिन्नाइ वा पीइकारिणी वा (कल्पसूत्र)
७०. कुशलनिदश मासिक दिसम्बर १९८६ पृ. ३८
७१. कुशल निर्देश मासिक दिसंबर १९८६ पृ. ६८
७२. कुशलनिर्देश दिसंबर १९८६ पृ. २९
७३. श्रमण भगवान महावीर (परिशिष्ट) का जन्मस्थान क्षत्रियकुंडग्राम (जमुइ) डा. श्यामानन्दप्रसाद
१. भरतसिंह उपाध्याय कृत बुद्धकालीन भारतीय भूगोल।
२. Select Inscription of Bihar P. 6, 35, 3
३. मुनिदर्शन विजय जी (त्रिपुटी) कृत क्षत्रियकुंड
४. डा. भगवानदास केसरी -सिकंदरा का लेख
५. डा. रामरघुवीरसिंह कृत मुंगेरके प्राचीन-जैनतीर्थ पृ. १६
6. Bihar District Gangeteers Munger (1960) P. 514
७. डा. रामरघुवीरसिंह-मुंगेर के प्राचीन-जैनतीर्थ पृ. १७
८. वही पृ. १८
१. भगवतो माया चेडगस्स भगिणि, भोजई चडगस्स धूया (आ. चू.)
२. तिसलाई वा विदेहदिन्नाई वा पियकारिणी वा (आचारांग सूत्र)
३. टीकाकार की व्याख्या— विदेहदिन्ना त्रिशला यंस्या अपत्य विदेहदिन्न
४. जेट्ठा कुंडगामे वद्धमाण सामिणे। जेट्ठस्स नंदीवद्धणस दिन्ना (आ. टीका)
५. निग्गंठ णायपुत्त श्रमणभगवान महावीर और मांसाहार परिहार (हीरालाल दुगड़)
६. कुलारिया छहविहा पं. व. १. उग्गा २. भोगा ३. राइन्न ४. इक्खागं ५. णाया, ६. कारव्वा
६. स्थानांग सूत्र ४९७
७. इतश्च वसुधावध्वा मौली मणिक्य सन्निभा वैशालीति नगर्यस्त्य गरीयसी।।१८४।। अखडंल इवा खंड शासना पृथ्वीपति चेटी कृतश्च भूपालस्तत्रं चटकाख्यभूत।। १८५।।
८. डिक्शनरी आफ पाली श्रमरनेक्स भाग २ पृ. ९४१
९. तएणं से कणिए राया तेतीसाए दंती सहस्सहिं तेतीसाए आस सहस्सेहिं तेतीसाए रह सहस्सहिं, तेतीसाए मानुस्स कोडिहिं सिद्धि संपुविटइ ध्विढिए जाव आवेणं सुभेहिंदेसिहिं सुभेहि अवरावासहिं वत्तेभाए वसमणि अंगजणवयस्स मज्झे मज्झे जेणेव विदेहे जणवए वसाली तेणेव पट्टारेत्य गमणाका
१०. पंचानां सिन्धु षष्टानांस नदीनां अंतरश्रितः वाहिकानाम देशजाः (महाभारत में बाहिक का अर्थ पंजाबवासी किया है)
११. मध्यऐशिया और पंजाब में जैनधर्म (हीरालाल दुगड़) पृ. १०६-७